महाभारत की विषयसूची ॥

विषय	पृष्ठ
को पकड़ने के लिए पाण्डवों से अलग होकर लड़े कौरवों का पराजय, पाण्डवों की चढाई, अर्जुन का द्रुपद को जीते पकड़ना, जीतेहुए द्रुपद को उस का आधा उसे दे कर द्रोण का उस को मित्र कहना	१२०
युधिष्ठिर को युवराज बनाना, भीम और अर्जुन के दिग्विजय, उस से धृतराष्ट्र की चिन्ता	१२८
धृतराष्ट्र की अपने मन्त्री कणिक के साथ मन्त्रणा, कणिक नीति	१३१
दुर्योधन की जलन, दुर्योधन और धृतराष्ट्र की मन्त्रणा	१३५
पाण्डवों को वारणावत में भेजने की मन्त्रणा,	१३८
पाण्डवों को वारणावत जाने की तय्यारी, दुर्योधन के उपदेश से पुरोचन का वारणावत लाखघर बनवाना	१४२
पाण्डवों का वारणावत को प्रस्थान, म्लेच्छ भाषा में युधिष्ठिर को विदुर का उपदेश	१४५
पाण्डवों का वारणावत में प्रवेश, १० दिन पीछे लाख घर में प्रवेश, युधिष्ठिर भीम की मन्त्रणा, सुरंग बनवाने का निश्चय	१५१
विदुर के भेजे विश्वासी पुरुष से सुरंग बनवाना	१५५
लाख घर का दाह, और पाण्डवों का सुरंगद्वारा बच निकलना	१५७
विदुर से भेजी नौकाद्वारा, पाण्डवों का रातोंरात गंगा से पार उतरना	१६०
पाण्डवों का वन में प्रवेश, हस्तिनापुर में पाण्डवों के दाह से शोक	१६२
वन में थके मांदे और तृषार्त भाइयों और माता के लिए भीम का जल लाने जाना, और जल ला कर भूमि पर लेटे हुओं को देख भीम का विलाप, और सोए हुओं का न जगा कर उन की रक्षा के लिए स्वयं जागना	१६४
उन को सोए देख हिडिम्ब राक्षस का अपनी बहिन हिडिम्बा को उन को मार के लाने के लिए भेजना, हिडिम्बा का भीम पर आसक्त होना, भीम हिडिम्बा संवाद	१६७
पाण्डवों के प्रति भेजी हिडिम्बा के देर लगाने से हिडिम्ब का	

विषय — पृष्ठ

२ सभापर्व

३—वनपर्व ।

५ उद्योग पर्व ।

विषय पृष्ठ

विषय

भीष्मपर्व से लेकर स्वर्गारोहण पर्व तक का
सूचीपत्र दूसरे भाग के साथ है।

ओ३म्

आर्षग्रन्थावलि।

संक्षिप्त—

महाभारत

आदि पर्व

(पं० राजाराम प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर कृत भाषा टीका संयुक्त)

टीका बड़ी सरल और श्लोक वार है और विचार के योग्य
विषयों पर सविस्तर विचार लिखे गए हैं।

प्रथमवार २०००] [मूल्य १।=)

बाम्बे यन्त्रालय, लाहौर॥

निरुक्त का सरल हिन्दी भाष्य ।

—:-०-:—

वेद का विषय, और वेदमन्त्रों के अर्थ जानने के लिये निरुक्त बहुत बडा काम देता है, और ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ है जिस का वेद भाष्य कर्ता सभी आचार्यों ने प्रमाण माना है अब तक इस वेदांग का कोई हिन्दी उलथा नहीं हुआ था, जिस से सर्वसाधारण इस से लाभ नहीं उठा सकते थे। अब यह सहर्ष सूचना दी जाती है, कि इस का सरल हिन्दी भाष्य श्रीमान् पं० राजाराम जी (सम्पादक आर्ष ग्रन्थावली) ने ऐसे ढंग में लिख कर छपवा दिया है; कि ग्रन्थ बडा आसान और बहुत बडा लाभदायक बन गया है। ढंग यह है (१) मूल निरुक्त में विराम चिन्ह और परिच्छेद दिये हैं (२) निघण्टु पाठ भी साथ दिया है (३) हिन्दी भाष्य बडा सरल लिखा है, और टिप्पणी देकर हर एक बात को खोल दिया है (४) शब्दों की सिद्धि व्याकरण से दिखलाई है (५) निरुक्त में आए मन्त्रों के हवाले दिये हैं (६) तीन प्रकार के सूची पत्र बनाए हैं, निरुक्त में आए आचार्यों और पुस्तकों का नाम सूची, निरुक्त में आए वेद मन्त्रों की वेद क्रम से सूची, निरुक्त और निघण्टु में आए शब्दों की सूची और मूल्य भी सस्ता केवल ४) रु० है।

पता—मैनेजर
आर्षग्रन्थावलि-लाहौर ।

भूमिका

चन्द्रवंशी महाप्रतापी भरत के वंशज भारत कहलाते हैं,

महा भारत नाम का हेतु

इस बड़े वंश के वर्णन में जो ग्रन्थ रचा गया है, उस का नाम भारत वा महाभारत है।

महा भारत का मुख्य विषय तो वीर पाण्डवों का उत्थान,

महा भारत का विषय

कौरव पाण्डवों का संग्राम, पाण्डवों की राज्य-प्राप्ति और राज्यशासन का वर्णन करना है। पर इस का कवि एक वेदपारग महात्मा धर्मसंस्थापक मुनि है, इस लिये वह साथ ही साथ, अवसर पाकर, धर्म, नीति, राज्यशासन, और तत्त्वज्ञान का भी, ऐसा सरस और उच्च वर्णन कर देता है, कि पढ़ने वाला अपने हृदय में एक नया प्रकाश अनुभव करने लगता है, उस का हृदय विशाल हो जाता है, और वह कुछ और का और ही बन जाता है। आज सारे भूमण्डल के विद्वानों का परम आदरणीय गीता इस महाभारत का ही एक अंशविशेष है। जिस उद्देश्य से प्रसंगवश यह महत्त्व-पूर्ण उपदेश दिये गए हैं, उसी उद्देश्य से राजऋषियों और ब्रह्म-ऋषियों के प्रसंगागत अनेक उपाख्यान भी लिखे गए हैं, जो मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। आर्यजाति का प्राचीनजीवन और उस के महत्त्वपूर्ण उपदेश इस के अन्दर भरे पड़े हैं। अतएव इस का परिशीलन प्रत्येक मनुष्य के, विशेषतः आर्य जाति के लिये, बहुत बड़ा लाभकारी है॥

महाभारत के कर्ता श्री वेदव्यास हैं। जिन्हों ने महा भारत युद्ध स्वयं आंखों देखा था। युद्ध के अठारह वर्ष पीछे, जब धृतराष्ट्र का परलोकगमन हो गया, उस के पीछे श्री वेदव्यास ने लगातार तीन वर्ष पूरे परिश्रम से महाभारत ग्रन्थ रचा॥

महा भारत का कर्ता और इस के बनने का समय

महामुनि का लिखा अपने समय का इतिहास सर्वथा विश्वसनीय होना चाहिए। और मुझे विश्वास है, कि ऐसा ही है। सत्य और सादगी को प्यार करने वाली आर्यजाति झूठ और बनावट पर नहीं रीझती थी। पर महाभारत से पहले जैसा कि आर्यजाति राज्यबल, धर्मबल और विद्याबल में आगे ही आगे बढ़ती चली जा रही थी, इस भ्रातृयुद्ध के पीछे वैसी न रही, उलटा आगे बढ़ने के स्थान पीछे हटने लगी, उन्नति का स्थान अवनति ने ले लिया। आर्यजाति में अपने अन्दर प्रमाद आगया, बाहर से राज्य पर आक्रमण हुए, और अन्दर से धर्म पर आक्रमण हुआ। इन आक्रमणों में भी इस जाति में ऐसे ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते रहे, जिन्हों ने इन आक्रमणों को पूरी तरह रोका, बल्कि प्रत्याक्रमण भी किया, तथापि इस सारी की सारी जाति ने, एक साथ मिलकर, अपने खोए हुए बल को फिर लौटा लाने की चेष्टा, तब से अबतक कोई नहीं की। इस लिये समष्टितया फिर इस ने अपना पुराना गौरव अभी तक स्थिर नहीं किया।

महाभारत में मिलावट और उसके कारण

इस घटती के समय में सब से बढ़ कर हानि जाति के बुद्धि बल की हुई, ब्रह्मचर्य और विद्याऽध्ययन का नियम बहुत

ही ढीला पड़ गया, जब सर्वसाधारण विद्याहीन हो गए, तो जाति का बुद्धिबल घट गया।

अब इतिहास के पढ़ने सुनने वालों में यह भेद हुआ करता है, कि बुद्धिमान् को तो सच्चे इतिहास में रस आता है, पर अल्पबुद्धि कल्पित अद्भुत घटनाओं के वर्णन में रस पाता है। अतएव बच्चों को बनावटी कहानियां ही पसन्द आती हैं, और उन बड़ों को भी, जो बच्चों से कुछ ही अधिक बुद्धि रखते हैं, उपन्यास पसन्द आते हैं, न कि सच्चे इतिहास। इस नैसर्गिक रुचि के अनुसार बुद्धिबल घटने के साथ आर्यों ने सत्य का रस भी खो दिया, और अद्भुत घटनाओं को पसन्द करने लगे। ऐसे समय में बनावटी अद्भुत कथाएं कहने वाले कवि प्रशंसा पाने लगे। उसी समय इन प्राचीन सच्ची घटनाओं में भी, अल्प-बुद्धि श्रोताओं की रुचि के अनुसार, रसिक बनाने के लिये अद्भुत घटनाओं का प्रक्षेप होने लगा।

महाभारत का इतिहास भी इन (प्रक्षेपों) मिलावटों से नहीं बचा। इस का स्फुट प्रमाण इस से बढ़कर और क्या होगा, कि महाभारत आदि पर्व द्वितीय अध्याय में जो हर एक पर्व की अध्याय संख्या और श्लोकसंख्या दी है, अब उस से अधिक पाए जाते हैं, उस में आदि पर्व के २२७ अध्याय कहे हैं, पर अब २३४ हैं। सभापर्व के ७८ अध्याय कहे हैं पर अब ८१ हैं इत्यादि। यह स्मरण रहे, कि यह द्वितीय अध्याय, जिस में हर एक पर्व के अध्याय और श्लोक गिना दिये हैं, यह भी व्यासकृत नहीं, किन्तु महाभारत में मिलावट होती देख, आगे को उस के रोकने के लिये, पीछे किसी ने रचा है। तो भी यह कितने शोक की बात है, कि इस अध्याय

के रहते हुए भी मनचलों ने, और भी मिलावट, कर ही डाली। यह प्रतीत होता है कि आलोचना करने वालों के न रहने से मनमाना लिखते चले गए होंगे, यह विश्वास करके, कि हम अपने ग्रन्थों में जितनी अधिक अद्भुत बातें मिलावेंगे, उतने ही हमारे प्रशंसक अधिक होंगे। पर अब भी इस मिलावट के अन्दर पहला सच्चा इतिहास छिपा हुआ है, और कहीं २ रूपक अलंकार के परदे में छिपा हुआ है, अल्प बुद्धि लोगों को प्रसन्न करने के लिये बहुतसी नई घटनाएं नामों के सहारे पर भी की गई हैं। हम अपने आशय को स्पष्ट करने के लिये यहां संक्षेप से उदाहरण दिखलाते हैं—

आदि पर्व अध्याय १२८, १२९ में लिखा है, कि कौरव और पाण्डव जलक्रीड़ा के लिये गंगा तट पर गए, वहां दुर्योधन ने, भीम को, भोजन में विष मिला कर खिलाया, उस विष के वेग से वह गंगातट पर बेसुध सो गया, तब दुर्योधन ने उसे गंगा में फैंक दिया, वह जल के नीचे नागलोक में चला गया, वहां नागों ने उसे काट खाया, इस से उस का विष उतर गया, और उसको सुध आगई, वह नागों को मारने लगा, नाग भाग कर अपने राजा के पास गए, नागराज ने आकर उसे पहचान लिया, कि यह तो मेरे दोहते का दोहता भीमसेन है, तब उसने उसे रस पिलाया, आठवें दिन उस को शुद्ध स्नान करा, विष नाशक ओषधियों के साथ भोजन खिला, अपने घर भेजा इत्यादि यहां एक सावधान ऐतिहासिक के सामने यह बड़ी कठिनाई है, कि न तो वह पानी के नीचे पाताल में, न पानी के अन्दर, कोई ऐसा लोक मान सकता है, जहां नागों की बस्तियें हों, और न ही वह पानी के अन्दर आठ दिन किसी का जीता रहना मान सकता है।

और यदि वह नागों को डसने वाले सर्प मानता है, तो न उन की भीम से रिश्तेदारी मान सकता है,न भीमसे बातें करना आदि मान सकता है, और यदि कोई मनुष्यजाति मानता है,तो फिर उन का भीम को डसना आदि नहीं मान सकता। यह सच है, कि यहां मिलावट ने सच्चे इतिहास को अन्धेरे में डाल दिया है। सच्चा इतिहास इतना है, कि विष चढ़ने से भीम बेसुध हो लेटा हुआ था, कि वहां नागराज आया, उस ने भीम को पहचान लिया, कि यह हमारे दोहते का दोहता है। उस ने उसे उठवा लिया, अपने घर ले आया, इलाज किया, और आठवें दिन आरोग्यस्नान करा कर घर भेजा। अब यह नाग कौन थे, और नागराज कौन था? नाग तो नागवंशी क्षत्रिय थे,उनका सरदार नागराज। इस सरदार का दोहता था यदुवंशी शूर सेन। आगे शूरसेन का दोहता भीमसेन था ही, क्योंकि कुन्ती शूरसेन की कन्या थी। नागवंश को तक्षवंश भी कहते थे। उन के राजों महाराजों का उपनाम तक्ष,तक्षक वा वासुकि होता था, इन्हीं नामों से वह प्रसिद्ध होते थे, जैसा कि मिथिला के राजे अपने उपनाम जनक से ही प्रसिद्ध होते थे। नागवंशी भारत खण्ड में भी बहुत जगह बसते थे, पर इन का स्वतन्त्र राज्य अफगानस्थान और उस से परे दूर तक था, उन की राजधानी तक्षखण्ड (आज कल प्रसिद्ध ताशकन्द) थी। और तक्षशिला (रावलपिण्डी के पास) इन के राज्य की हद थी। पर उन की बस्तियां भारत में भी कई जगह थीं, उन के सरदार भी तक्ष वा वासुकि कहलाते थे। भारत से जब नागवंशियों का सम्बध न रहा, और यहां अविद्या छागई, तब इन के वर्णन अद्भुत करने के लिये कवियों

ने इन को सांपों के रूप में बदल दिया, और सांप यतः बिलों में रहते हैं, इस लिये पृथिवी के अन्दर नागलोक की कल्पना की। और उस में पहुंचने के लिये गंगा में डुबकी लगा कर वा बिलों को फाड़ कर नीचे जाने का मार्ग कल्पना किया। और उन के और उन की कन्याओं के दिव्य मानुष्य रूप भी कल्पना किये। इस प्रकार यह एक उपन्यासों को भी मात करने वाली अद्भुत कहानियां बन गईं, जो कि अपने समय में अधिक पसन्द की गईं। पर इस मिलावट के अन्दर अब भी सच्चा इतिहास ज्यों का त्यों पाया जाता है, जिस को अपने स्थान पर लिखा गया है। यह है मिलावट का उदाहरण। दूसरा रूपक का उदाहरण महाभारत में यह कथा है, कि परिक्षित को तक्षक ने डसा था, उस का बदला लेने के लिये परिक्षित के पुत्र जनमेजय ने सर्पसत्र किया, जिस में उसने नागों को होमदिया, और वह तक्षक को भी होम देता, यदि बीच में पड़ कर आस्तीक ऋषि उस को रोक न देता, जो कि वासुकि का दोहता था। यह वृत्तान्त ठीक ऐसे रूप में वर्णन किया है, जैसे एक यज्ञ में हवनकुण्ड के अन्दर आकर ही सर्प जल रहे हों। इस रूपक के परदे में नागवंशियों का परीक्षित को मारना, और फिर जनमेजय का अपने पिता का बदला लेने के लिये उन पर चढ़ाई करना, तक्षशिला को जीतना* और नागों को युद्ध में मारते हुए आगे बढ़ते जाना और अन्ततः आस्तीक ऋषि का बीच में पड़ कर सुलाह कराना यह इतिहास छिपा है॥

* देखो "तक्ष शिलां प्रत्य भितस्थे, तंच देशं वशे स्थापयमास' (महाभा० आदि ३।२०) जनमेजय ने तक्ष शिला पर चढाई की और उस देश को अपने बस में कर लिया॥

तीसरा, नामों से इतिहास निकालने का उदाहरण, जैसे महाभारत आदि पर्व प्रथम अध्याय की समाप्ति में लिखा है।

एकतश्चतुरो वेदा भारतं चैतदेकतः । १।१।२७१
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम् ॥ २७२
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारत मुच्यते । २७४

पूर्वकाल में देवताओं ने मिल कर तकड़ी के एक पलड़े में चारों वेद, और दूसरे में महाभारत को रक्खा। (उस तोल में) यह बड़ा और भारवाला होने से महाभारत कहलाता है॥ अर्थात् तब से इस को लोक में महाभारत कहने लगे हैं॥ यह भी एक साधारण बुद्धि वालों के लिये मनोरंजक बात तो है, पर यह कोई इतिवृत्त नहीं। न कभी देवताओं ने वेदों और महाभारत को तकड़ी पर तोला, और न ही भार अधिक होने से इस का नाम महाभारत है। इसी प्रकार गरुड सुपर्ण आदि बहुत से शब्दों के सहारे कई अद्भुत कथाएं रची गई हैं। यद्यपि कभी २ ऐसा भी होता है, कि नाम किसी घटना का स्मारक होता है, जब कि घटना के होने पर वह उस के स्मरण के लिये रक्खा जाता है। पर नाम के पीछे जो नाम के सहारे पर घटनाओं की कल्पना की गई, उन में और असली घटनाओं में भेद करने के लिये बड़ी सावधानी की आवश्यकता है॥

महाभारत में मिलावट के कारण और प्रकार ऊपर बतला दिये हैं, अब आर्यजाति को इस की तह में घुस कर एक सच्चा इतिहास निकालने की आवश्यकता है, जो कि इस के अन्दर स्पष्ट वर्तमान है, पर अभी तक इस ओर किसी

सच्चे इतिहास की खोज

ने ध्यान नहीं दिया, महाभारत के हिन्दी उर्दू अंगरेजी में उल्थे भी हुए हैं, महाभारत नाम के स्वतन्त्रग्रन्थ भी लिखे गए हैं,परया तो उन्हें ऐसा सूझा ही नहीं, या कर ही नहीं सके, उन में से किसी ने इस ओर तनिक भी काम नहीं किया। हां कइयों ने काट छांट भी की है, पर इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण उन की मनमानी काट छांट उलटा उपहास का कारण हुई है। सच्चे इतिहास पर उस से कोई प्रकाश नहीं पड़ा *॥

कुछ काल पहले बनावटी बातों का स्वाद पाए हुए लोगों को सच्ची बातें रोचक नहीं होती थीं; इस लिये इस की मांग भी नहीं हुई। पर ईश्वर की कृपा से अब फिर हमारी जाति के लोगों को अपने प्राचीन सच्चे इतिहास के जानने की इच्छा बड़े जोर से उत्पन्न हुई है। और अब सच्चा इतिहास लिखने की सामग्री भी बहुत कुछ इकट्ठी हो गई है।

अतएव मैंने अब यह एक निराला,पर आवश्यक काम आरम्भ किया है। इसमें कुछ अनावश्यक भाग छोड दिया है,किन्तु महाभारत का मुख्य इतिहास इस में सारा है, धर्म, नीति और तत्त्व-ज्ञान के उपदेश सभी हैं, उत्तम २ श्लोकों पर यह+ चिन्ह दिये हैं। प्रासंगिक ऐतिहासिक कथाएं भी यथा स्थान रखी गई है, कई ऐतिहासिक बातें पुराणों से लेकर भी पादटीकाओं में दी गई हैं, इससे पढ़ने वालों का ऐतिहासिक ज्ञान और भी विस्तृत होगा।

* मूल पुराणों में भी बहुतसा उपयोगी ऐतिहासिक विषय था, जो पिछली मिलावटों से अन्धेरे में डालदिया गया है, तथापि अनुसन्धान से ऐतिहासिक विषय बहुत कुछ मिल सकता है। मैंने इतिहासांश में उन से सहायता ली है, और जहां भेद देखा है, वहां अभी विष्णु पुराण को विशेषता दी है॥

[महाभारत में असल और प्रक्षेप का निर्णय]

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे मैंने यह सिद्ध किया है, कि इस वर्तमान महाभारत में असली भारत भी है, और क्षेपक भी है। अब यह निखेरना है, कि असली भारत कितना है, और क्षेपक कितना है। इस विचार में सब से पहले यह एक मोटी युक्ति जान लेनी चाहिये, कि भारत ग्रन्थ रच कर व्यास जी ने पहले अपने पुत्र शुक और योग्य शिष्य वैशम्पायन, सुमुन्तु, जैमिनि और पैलको पढ़ाया था। फिर जब अर्जुन के प्रपोते जनमेजय ने सर्पसत्र (युद्ध में नागोंका ध्वंस)किया, उस समय व्यासरचित भारत वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया था। भारत को सुनते समय जनमेजय बीच २ में कई बातें पूछते थे, जिन के उत्तर वैशम्पायन देते रहे, वर्तमान महाभारत में, वह बातें जो जनमेजय ने पूछीं, और उनके वह उत्तर, जो वैशम्पायन ने दिये, वह सब भी पाए जाते हैं। अब यह स्पष्ट है; कि यह प्रश्नोत्तर असल ग्रन्थ में न थे, पीछे से इस में जोड़े गए हैं, वरञ्च असल ग्रन्थ के रचनाकाल में तो जनमेजय का जन्म भी न हुआ था। फिर जब वैशम्पायन ने जनमेजय को महाभारत सुनाया था. वहां लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा (सौति) भी थे, वह इस युद्धवृत्तान्त को सुन कर, कुरुक्षेत्र की रणभूमि को देखते हुए नैमिषारण्य में गए, वहां शौनक आदि ऋषियों के निवेदन करने पर उग्रश्रवा ने उनको वह सब सुनाया, जो उसने वैशम्पायन से सुना था। यहां भी शौनक ने कई नई बातें पूछीं, उनके उत्तर उग्रश्रवा ने दिये, वह प्रश्नोत्तर भी वर्तमान

महाभारत में पाये जाते हैं, बल्कि उग्रश्रवा की यह उपर्युक्त कथा भी पाई जाती है। अब यह स्पष्ट है, कि यह प्रश्नोत्तर और यह कथा व्यासरचित भारत का भाग नहीं हैं, पीछे किसी ने इस में जोड़ दिये हैं। इस दृष्टि से आदिपर्व के पहले ६० अध्याय तो स्पष्ट प्रक्षिप्त ठहरते हैं, क्योंकि वहां तक शौनक और उग्रश्रवा के अपने अलग ही प्रश्नोत्तर हैं, जनमेजय और वैशम्पायन के प्रश्नोत्तर आरम्भ ही नहीं हुए। और यह भाग है भी अत्युक्तियों और रूपकों से भरा हुआ। हां इस में एक अनुक्रमणिका अध्याय कुछ प्रक्षिप्त छोड़ कर असली होसकता है। अ० ६० से आगे भी व्यास की उत्पत्ति और भारत को रचने आदि की कथाएं प्रायः पीछे मिश्रित हुई हैं, अतएव उनमें ऐतिहासिक दोष भी हैं, अध्याय ९३ में युधिष्ठिर के पूर्व पुरुषों की वंशावलि दी है, फिर अध्याय ९४ में भी वंशावलि दी है। एक तो दो वार वंशावलि देना ही पुनरुक्ति है, दूसरा यह वंशावलियां परस्पर विरुद्ध भी हैं। परस्पर विरुद्ध कथन, और वह भी परस्पर अतिनिकट, किसी भी योग्य कवि की कृति में नहीं होसकता। और इधर वंशावलियों में लिखा है, कि राजा हस्ती ने हस्तिनापुर बसाया था, जो भरत से कुछ पीढ़ी पीछे हुआ है, उधर अध्याय ७८ में भरत के भी पिता दुष्यन्त की राजधानी हस्तिनापुर बतलाई है, इत्यादि बातें इनके प्रक्षेप को स्पष्ट करती हैं, इससे यह भी स्पष्ट होता है, कि वर्तमान महाभारत में क्षेपक भाग भी बहुत बड़ा है॥

अब यह देखना है कि असली भारत कितना है, इसका उत्तर वर्तमान महा भारत में विद्यमान है, जैसाकि:—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् । १ । १ ।१०२
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।
ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः । १०३ ।
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम् ।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम् । १०४
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यो प्रददौ विभुः। १०५

व्यास ने पहले २४००० (श्लोकों) की भारत संहिता बनाई । १०२ । जो उपाख्यानों के बिना थी, इसी को बुद्धिमान् भारत कहते हैं, तिस पीछे ऋषिने १५० (श्लोक में) फिर संक्षेप किया । १०३ । जो पर्वों समेत सारे वृत्तान्तों का अनुक्रमणिकाऽध्याय है, यह (भारत) व्यास ने पहले अपने पुत्र शुक को पढ़ाया, । १०४ । फिर दूसरे योग्य शिष्यों को दिया । १०५ । सो पहला चौवीस हजार भारत है, जो व्यास ने रचा, और अपने पुत्र तथा शिष्यों को पढ़ाया, चौवीस हजार से अधिक सारा ग्रन्थ क्षेपक है ।

प्रश्न हो सकता है, कि यह ठीक है, कि यहां २४ हजार श्लोक कहे हैं, पर यहां ही अन्यत्र एक लक्ष श्लोक भी कहे हैं? इस का उत्तर यह है, कि जब ऊपर के प्रमाणों से यह स्पष्ट है, कि २४ हजार श्लोक व्यासने रचकर पुत्र और शिष्यों को पढ़ाए, तो इस के विरुद्ध कैसे माना जाए। सो जब महाभारत में प्रक्षेपक मिल२ कर ग्रन्थ बहुत बड़ा होगया, तब एक लक्ष श्लोकों वाली बात पीछे बनाई गई है । और जिस ढंगपर वह बात कही है, उसी से स्पष्ट होजाता

है, कि वह पिछली बनावट है, जैसा कि "षष्टिं शतसहस्राणि चकारा न्यांससंहिताम् ।.१० । त्रिंशच्छतसहस्रंच देवलोके प्रतिष्ठितम् । पित्र्येपञ्चदशप्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश । १०६ । एकंशतसहस्रंतु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् । १०७ । अर्थ–फिर उसने साठलक्ष श्लोकों की ओर संहिता (२४००० श्लोकों वालीसे अलग एक और संहिता) बनाई । १०५ । उसमें से ३० लक्ष देवलोक में पढ़ा जाता है, १५ लक्ष पितृलोक में, १४ लक्ष गन्धर्व लोक में, शेष एक लक्ष ही मनुष्यलोक में पढ़ा जाता है, ।१०८। सो यह एक लक्ष वाली बात जिस रूप में कहीगई है, विश्वसनीय नहीं हो सकती । फिरयहां एक और संहिता बनाई लिखा है, न कि चार संहिताएं । यदि उसी एक की बांट चार लोकों में हुई, तो सब को अधूरा ग्रन्थ मिला, और हमें तो इतना अधूरा, कि ६० वां भाग ही पासके, तथापि ग्रन्थ त्रुटित नहीं, असली कथा भी सारी है, और प्रासंगिक उपाख्यान भी थोड़े नहीं । यहां "और संहिता" कहने से इन श्लोकों मेंभी २४ हजार वाली संहिता का अस्तित्व स्वीकार किया हुआ है, पर २४ सहस्र वाले श्लोक में ६० लक्ष वाली का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया, और उसी २४ सहस्र वाली संहिता को रच कर ही पुत्र और शिष्यों को उसका पढाना लिखा है, अतएव २४ हजार श्लोक ही असली ठहरते हैं ॥

किस पर्वमें कितने श्लोक हैं, यहपर्व संग्रहाध्याय (आदिप० अ० २ में) लिखा है। तदनुसार १८ पर्वों की श्लोकसंख्या यह होती है, आदि पर्व ८८८४+सभा पर्व २५११+वन ११६६४+विराट् २०५०+उद्योगपर्व ६६९८+भीष्मपर्व ५८८४+द्रोणपर्व ८९०९+

कर्णपर्व ४९६४+शल्यपर्व ३२२०+सौप्तिकपर्व ८७०+स्त्रीपर्व ७७५+शान्तिपर्व १४७३२+अनुशासनपर्व ८०००+आश्वमेधिक पर्व ३३२०+आश्रमवासिकपर्व१५०६+मौसलपर्व ३२०+महाप्रा स्थानिकपर्व ३२०+स्वर्गारोहणपर्व २०९=८४८३६ यह संख्या अठारह पर्वों की है, इससे एक लक्ष श्लोक पूरे नहीं हुए, इसके लिये पर्व संग्रहकार ने लिखा है, "अष्टादशैवमुक्तानि पर्वा ण्येतान्य शेषतः ।७८। खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यंचम कीर्तितम् । दश श्लोक सहस्राणि विंशच्छ्लोक शतातानिच ७९ खिलेषुह- रिवंशे च समाख्यातानि महर्षिणा । ८० । अर्थ—इस प्रकार१८ पर्व विस्तार पूर्वक कहे हैं । ७८ । खिलों (परिशिष्टों) में हरिवंश और भविष्य कहा गया है । महर्षि ने हरिवंश में १२ हजार श्लोक रचे हैं ॥ ७९–८० ॥ सो १८ पर्वों की श्लोक संख्या ८४८३६+हरिवंश १२००० =९६८३६ श्लोक हुए। यह स्मरण रहे, कि पर्व संग्रहाध्याय में इससे अन्यत्र हरिवंश की कहीं चर्चा नहीं । हरिवंश को मिला कर भी पूरा एकलक्ष नहींहुआ। यद्यपि इसमें वहभी सारे श्लोक हैं, जो उग्रश्रवा ने शौनकआदि को कहे, तथा जनमेजय और वैशम्पायन में जो प्रश्नो- त्तर हुए। इससे स्पष्ट है, कि महाभारत की वृद्धि को देखकर एक लक्ष श्लोक वाली बात पीछे डाली गई है । पर्व संग्रहाध्याय में जो संख्या दी गई है, वह भी पीछे की है। इसी पर्व संग्रहाध्याय में एक बार पहिले पर्वों के विषय वर्णन किये हैं, उस में पर्वों की अध्यायसंख्या और श्लोकसंख्या नहीं दी, इस के पीछे फिर पर्वों के विषय विस्तार पूर्वक कहने आरम्भ करदिये हैं, तब उस में यह अध्यायसंख्या और श्लोकसंख्या दी है।

इससे भी स्पष्ट है, कि महाभारत में प्रक्षेप होते देखकर आगे को प्रक्षेप रोकने के लिये किसी ने अपने समय में यह संख्या नियत करदी है। यह बात, कि पर्वसंग्रहाध्याय महाभारत के बनाने वाले ने नहीं बनाया, इससे स्पष्ट हो जाती है, कि महाभारत में ही लिखा है, कि वैशंपायन ने जनमेजय को महाभारत सुनाया और उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों को सुनाया, पर यह अध्याय जनमेजय वैशंपायन के संवाद से बहुत पहले उग्रश्रवा की ही उक्ति है, और स्वयं पर्वसंग्रहकारने भी इसको उग्रश्रवा की ही उक्ति बताया है। महाभारत अध्याय १ श्लोक ५२ में यह भी लिखा है-"मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे। तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते"=कई विद्वान् भारत को'मनु' के प्रकरण से,कई आस्तीक के प्रकरण से और कई उपरिचर के प्रकरण से ठीक पढते हैं। यह उपरिचर का वृत्तान्त ६३ वें अध्याय से आरम्भ होता है। सो यदि बहुत पुराने समय में ही (जिस का प्रकरण वर्त्तमान भारत में ही है) पहले ६२ अध्याय तक भारत में नहीं गिने जाते थे, तो इस दूसरे अध्याय की कौन कहे। पर अब तो वर्तमान महा भारत में इस पर्व संग्रह की संख्या से भी भेद हो गया है। इस में हरिवंशके १२००० श्लोक कहे है, पर अब १६३७४ श्लोक हैं। यहां ही पूर्व लिख आए है, कि १५० श्लोक की अनुक्रमणिका व्यास ने बनाई, पर अब अनुक्रमणिका अध्याय में २७५ श्लोक हैं। इत्यादि स्पष्ट प्रमाणों की विद्यमानता में यह बात निःसन्देह मानी जासकती है कि असल महाभारत २४ हजार ही है, उसमें प्रक्षेप होते २ इतना बढा है। कि असल

महाभारत इस प्रक्षेप के अन्दर, खाने में सुवर्णधातु की तरह मिला हुआ पड़ा है,जो निकल सकता है,पर विना परिश्रम नहीं। *

इस इतिहास के नाम और उन से परिणाम

महाभारत (१।६२।२०) में लिखा है "जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्योविजिगीषुणा,=विजय चाहने वाले (राजा)को यह जय नामी इतिहास सुनना चाहिए॥ फिर स्वर्गारोहणपर्व (५।४६)में है 'जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता" मोक्षर्थी को जय नामी यह इतिहास सुनना चाहिये। भारत के आरम्भ में जो श्लोक दिया है और कथा वाचने वाले जिसे पढ़ कर कथा आरम्भ करते हैं, उसके अन्त में कहा है 'ततो जयमुदीरयेत्'=फिर 'जय' उचारे। इन प्रमाणों से प्रतीत होता है,कि इस इतिहासका आदि नाम जय है, सो व्यासरचित भारत का नाम 'जय' था। इससे यह भी संभव प्रतीत होता

*(प्रश्न) महाभारत [१। १। ८१] में यह भी तो कहा है, कि 'अष्टौ श्लोकसहस्रा ण्यष्टौ श्लोक शतानि च। अहं वेद्मिशुको वेत्ति संजयोवेत्ति वा न वा=८८००श्लोकमें जानता हूं और शुकजानता है संजय कदाचित् जानता है वा नहीं। इस प्रमाण से ८८०० श्लोक ही क्यों न असली माने जाएं(उत्तर)इसमें महाभारत की श्लोक संख्या नहीं कही, अपितु महाभारत केअन्दर कूट श्लोकों की संख्या कही है, जैसा कि इससे अगले श्लोकमें कहाहै'तच्छ्लोक कूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढ़ं मुने भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढ़त्वात् प्रश्रितस्यच=हेमुने वह कूट श्लोक अब भी इस ग्रन्थ में सुदृढ़ है, जो शब्द और अर्थ से गूढ़ होने के कारण खोले नहीं जासकते॥ इस लिये यह वचन गूढ श्लोकों की संख्याका बोधक है, नकि सारे श्लोकों की संख्या का।इससे२४,००० के साथ विरोध नहीं आता। पर है यह भी अत्युक्ति। गूढ श्लोक हैं अवश्य, पर इतनी बड़ी संख्या नहीं।

है, कि पाण्डवों की विजय प्राप्ति तक का इतिहास उसमें था। फिर आदि पर्व अध्याय ६३ में यह भी मिलता है, कि 'वेदान ध्यापयमास महाभारतपञ्चमान् । सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ ८९ ॥ प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायन मेवच । संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥९०॥ (व्यासने) (चार) वेद और पांचवां महाभरत, सुमन्तु जैमिनि, पैल और अपने पुत्र शुक को पढ़ा या, तथा वैशम्पान को, उन्हों ने फिर अपनी २ अलग २ भारत की संहिताएं प्रकाशित कीं। इस से ज्ञात होता है, कि व्यासरचित भारतसंहिता में और नए इतिहास और उपदेश बढ़ाकर उनके शिष्यों ने अपनी २ अलग२ भारत संहिताएं प्रकाशित कीं। आश्वलायनगृह्य सूत्र में लिखा है समन्तु–जैमिनि–वैशम्पायन–पैल-सूत्र भारत–महाभारत धर्मा-चार्याः, (व्यास के शिष्य) समन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, और पैल, सूत्र, भारत, महाभारत और धर्म के आचार्य हैं। इस से सुमन्तु सूत्रकार, जैमिनि भारतकार, वैशम्पायन, महाभारतकार, और पैल धर्मसूत्रकार ठहरते हैं। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं, कि भारत के दो ग्रन्थ अलग २ हैं, एक भारत दूसरा महा-भारत। भारत जैमिनि प्रकाशित, महाभारत वैशम्पायन प्रका-शित। सो व्यासरचित जो जय इतिहास था, उन में अपनी ओर से और नए इतिहास और उपदेश जोड़ कर जैमिनि ने भारत और वैशम्पायन ने महाभारत प्रकाशित किया। सो यह महाभारत वैशम्पान प्रकाशित भारतसंहिता है, जो राजा जनमेजय को सुनाई गई, और पीछे भी कुछ बढ़ी। अतएव इस में २४००० व्यास

रचित और कुछ वैशम्पायन रचित भाग है, और कुछ पीछे प्रक्षिप्त हुआ है। सो जितना भाग व्यासरचित है, उस में निःसंदेह सच्चा इतिहास है, और जो वैशम्पायन रचित है, उस में भी सच्चे इतिहास की ही सम्भावना है, पर उस से पिछली मिलावट अद्भुत घटनाओं की है, जिनमें बहुधा रूपक के परदे में कई सच्चे इतिहास भी हैं। हमें उस इतिहास को भी शोधन करना चाहिये, इस लिये यहां किसी अन्य चर्चा के विना केवल अनावश्यक भाग छोड़ सारा ग्रन्थ छापा जाता है।

महाभारत युद्ध कब हुआ

महाभारत युद्ध कब हुआ ? इस के उत्तर में अभी विद्वानों की एकवाक्यता नहीं हुई, और जब तक कोई विनिगमक प्रमाण न मिले, तब तक सब अलग २ अपना २ अनुमान लगाते ही रहेंगे, अतएव यह उचित प्रतीत होता है, कि हम अपने पाठकों को सारे मत दिखलादें।

(१) पहला पक्ष यह है, कि महाभारत युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ, युद्ध के पीछे कलियुग प्रवृत्त हुआ, इसमें प्रमाण यह है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि। प्रतिपन्नं कलियुगं (विष्णुपुराण, अंश ४ अ २४ श्लो ४०)

जिस दिन कृष्ण स्वर्ग को गए, उसी दिन कलियुग आया ।४०। इस से पूर्व श्लोक ३९ में भी ऐसा ही लिखा है। भागवत स्कन्ध १२ अ २ श्लोक २९ में भी श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के पीछे ही कलि की प्रवृत्ति कही है "विष्णोर्भगवतो भानुःकृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः। तदाऽऽविशत् कलिर्लोके पापे यद् रमते जनः" ॥ सो कलियुग वर्ष आज १९७१ विक्रमी वा १९१४ ई० में

५०१२ है, इस से कुछ थोड़ा सा पूर्व ही युद्ध का समय होना चाहिये।

(२) दूसरा पक्ष यह है, कि इस से पूर्व नहीं, यही समय युद्ध का है, जैसा कि महाभारत गदा पर्व में भीमदुर्योधन के युद्ध के पश्चात् क्रुद्ध हुए बलराम को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं 'प्राप्तं कलियुगं विद्धि' कलियुग को प्राप्त हुआ जान।

इस पक्ष के पोषक और प्रमाण—'आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ। षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च" (बृहत्संहिता १३।३) जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथिवी का शासन कर रहे थे, उस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्रों में थे और उस राजा के २५२६ वर्ष थे, जब शककाल आरम्भ हुआ॥

यहां का शक शब्द विवादास्पद है, परन्तु उपर्युक्त पक्ष में प्रमाण देने वालों का यह आशय है, कि यहां शककाल से अभिप्राय शाक्यसिंह गौतम बुद्ध के संवत् से है, और गौतम बुद्ध संवत् ईस्वी से ६२३ वर्ष पूर्व हुए और ८० वर्ष जीते रहे थे, उनका संवत् उनके ५० वें वर्ष चला अर्थात् ६२३ से ४९ निकाल ५७४ वर्ष संवत् ईस्वी से पूर्व गौतम संवत् चला, सो युधिष्ठिर से बुद्ध तक २५२६+बुद्ध संवत से ईस्वी संवत तक ५७४+ईस्वी संवत १९१४=५०१४ वर्ष हुए। यही कलियुग का समय है॥

अकबर के समय में भी युधिष्ठिर का यही समय निश्चित हुआ था, जैसाकि आईने अकबरी पृष्ठ २६९ छापा कलकत्ता १८६७ ईस्वी की छपी में लिखा है, 'कलियुग के लगते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुआ था, विक्रम संवत के आरम्भ

तक युधिष्ठर को हुए ३०४४ वर्ष व्यतीत होचुके थे,सो ३०४४ विक्रम संवत् १९७१=२०१५ वर्ष हुए।

यूनानी राजदूत मैगस्थनीज जो चन्द्रगुप्त के दर्बार में रहा था, उसके लेख तथा अलक्षेन्द्र के साथ आए दूसरे यूनानी लेखकों के लेखों के आधार पर यूनानी ऐतिहासिकों ने भारतीय राजाओं के विषय में लिखा है॥

दायोनीसस के समय सन्द्राकोत्तस (चन्द्र गुप्त) तक भारतीय १५३ राजों और ६०४२ वर्षों की गणना करते थे, पर इस समय के भीतर तीन वार प्रजातन्त्रशासन भी स्थापित होचुका था। भारतीय हमें यह भी बतलाते हैं, कि दायोनीसस हरक्लिप से १५ पीढ़ी पूर्व होचुका था भारत के शूरसेनी लोगों में जिनके अधीन मथुरा और क्लीसोबोरा दो बड़े नगर हैं—उक्त हरक्लिप विशेष संमान के साथ स्मरण किया जाता है"

यहां हरक्लिप, हरिकृष्ण=कृष्ण महाराज हैं, जिनका शूरसेनी लोगों के साथ सम्बन्ध है, जो मथुरा के अधिपति कहे हैं शूरसेन श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के पिता थे।

उक्त लेख में दायोनीसस से चन्द्रगुप्त तक ६०४२ वर्ष और १५३ राजे, तीन वार के प्रजातन्त्र राज्य समेत गिने हैं। और यह कहा है दायोनीसस कृष्ण से १५पीढ़ी पहले हुआ था। सो १५३—१५ = १३८ राजे श्री कृष्ण से चन्द्रगुप्त तक हुए। अब इन में से हर एक राजा का शासन काल २० वर्ष भी माना जाए,तो १३८ +२०=२७६० वर्ष हुए कृष्ण से चन्द्रगुप्त तक, आगे चन्द्रगुप्त ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व विद्यमान थे, सो २७६०+३१२= ३०७२ वर्ष ईसा से पूर्व होते हैं। ३०७२+ईस्वी सं १९१४=

४९८६ वर्ष हुए। सो यूनानियों के लेखानुसार युद्ध को हुए ४९८६ वर्ष हुए, भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार ५०१५ वर्ष। इन दोनों समय में केवल २९ वर्षों का भेद है, इसका कारण यह है, कि १३८ राजाओं का शासन काल जो २० वर्ष की मध्यमा से २७६० वर्ष निकाला है, वह काल जैसा २० की मध्यमा मान कर लिया है, वैसे २० वर्ष अढाई महीने (कुछ अधिक भी) हो सकती है *

तीसरा पक्ष—राजतरंगिणी में कल्हण ने लिखा है, कि युधिष्ठिर का शासन कलियुग के ६५३ वर्ष बीतने पर आरम्भ होता है, इस पक्ष का निर्भर भी इसी प्रमाण पर है, "आसन् मघासु मुनयः शासति राज्यं युधिष्ठिरे नृपतौ। षड्द्विक पञ्चद्वियुतः शक कालस्तस्य राज्ञश्च" राजा युधिष्ठिर के शासन काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्रों में थे, और २५२६ उस राजा का समय है, जो कि शक काल (शालिवाहन का संवत्) है। सो शक से पूर्व युधि-

---

* इस प्रमाण में यह त्रुटि है, कि यही २० वर्ष की मध्यमा जो १३८ राजाओं को दी है, वह पहिले १५ राजाओं में लगाएं, तो उनका शासन काल केवल ३०० बनता है, यदि अधिक से अधिक ३० वर्ष भी मानलें; तो ४५० बनता है, बीच में जो प्रजातन्त्र राज्य रहा वह स्पष्ट नहीं कहा, कि कृष्ण से पहले वा पीछे, पहले भी हो सकता है, और पीछे भी हो सकता है, वा कोई पहले और कोई पीछे हो सकता है, पर यदि पहले ही मानें, तथापि एक प्रजातन्त्र राज्य का समय ३०० और दूसरे का १२० दिया है, तीसरे का दिया नहीं, यदि अधिक से अधिक उसका भी ३०० मानलें, तो ४५०+३००+१२०+३००=११७० वर्ष होते हैं। इन में २७८९ जोड़ने से ३९५९ होते हैं ६०४२ पूरे नहीं होते॥

ष्ठिर संवत् २५२६+शक काल १८३५=४३६१ वर्ष युधिष्ठिर को हुए। यह गत कलि वर्ष ५०१४ में से घटाएं, तो ६५३ हुए। दैवज्ञ बान्धवकार हरपतिठक्कुर ने भी लिखा है (शाकोनवाद्रीन्दु कृशानुयुक्तः कलेर्भवत्यब्दगणो व्यतीतः=कलियुग के ३१७९ वर्ष बीतने पर शक संवत् आरम्भ होता है, शक संवत् तक युधिष्ठिर काल २५२६ होता है। तो ३१७९-२५२६= ६५३ हुए॥

(४) चौथा पक्ष—ऊपरके प्रमाणमें यह लिखा है, कि युधिष्ठिर के समय सप्तर्षि मघानक्षत्रों में थे, और सप्तर्षि हर एक नक्षत्र में १०० वर्ष रहते हैं। जैसा कि विष्णुपुराण में लिखा है— "सप्तर्षीणां च यौ पूर्वौ दृश्यते उदितौ दिवि। तयोस्तुमध्यनक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि। तेनसप्तर्षयो युक्ता स्तिष्ठन्त्यब्दशतंनृणाम् (४।२४। ३३-३४) अर्थ—सप्तर्षियों में से पहले दो तारे जो आकाश में उदय हुए दीखते हैं, उन के समानान्तर पर बीच में जो नक्षत्र दीखता है, उस से युक्त हो कर सप्तर्षि सौ वर्ष रहते हैं। भागवतस्कन्ध १२ अध्याय २ में भी ऐसा ही लिखा है। हर एक युग का आरम्भ अश्विनी नक्षत्र से होता है, और मघा नक्षत्र अश्विनी से दसवें हैं, सो कलि के ९०० वर्ष बीतने पर सप्तर्षि मघा में प्रविष्ट हुए, इसलिये कलि वर्ष ९०० बीतचुकने के पीछे युधिष्ठिर का समय आरम्भ होता है *॥

* १,२,३,५ पक्षों के मत में श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के अनन्तर कलिकी प्रवृत्ति कहने वाले वचनों का यह अभिप्राय है, कि कलि का प्रभाव स्वर्गारोहण के पीछे हुआ, यद्यपि कलि पहले ही प्रवृत्त हो चुका हुआथा, जैसा कि विष्णुपुराण में ही है "यावत् स पाद-

(५) पांचवां पक्ष—ते तु पारिक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम।
तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः (विष्णु ४।२४।३४)

अर्थ—वह (सप्तर्षि) परिक्षित के समय में मघा नक्षत्रों में थे, तब कलि के १२०० वर्ष बीत चुके थे। परिक्षित युधिष्ठिर का उत्तराधिकारी था, इसलिये कलि वर्षों के १२वें शतक में युधिष्ठिर हुए*

(६) छटा पक्ष—कुछ अधिक १४०० वर्ष ईस्वी संवत् से पूर्व युधिष्ठिर हुए। प्रमाण यह है—

(१) यावत् परिक्षितोजन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्षं सहस्रंतुज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम् (विष्णु ४।२४।३२

परिक्षित के जन्म से नन्द के अभिषेक तक १०१५ जानने चाहिये॥ नन्दों का राज्य १०० वर्ष रहा, जैसा कि इसी अध्याय में लिखा है 'महापद्मः तत्पुत्राश्च एकंवर्षशतमवनिपतयो भाविष्यन्ति। नवैव तान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति।६। तेषामभावे मौर्याश्चपृथिवीं भोक्ष्यन्ति, कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्ये भिषेक्ष्यति अर्थ--महापद्म (पहला नन्द) और उस के पुत्र १०० वर्ष राज्य करेंगे, उन नन्दों को चाणक्य ब्राह्मण उखा-

---

पद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम्। तावत् पृथिवीपरिष्वंगे समर्थो नाभवत् कलिः-अर्थ जबतक वह [श्रीकृष्ण] अपने चरण कमलों से इस भूमि को स्पर्श करते रहे, तबतक कलि पृथिवी का आलिंगन करने के समर्थ नहीं हुआ। किञ्च, मास मीमांसा में ब्रह्म पुराण से यह उद्धृत किया है 'अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशतितमे जातः कृष्णोऽसौ देवकी सुतः" अर्थ—तब अठाईसवें कलि युग में भादों की कृष्णाअष्टमी को देवकी पुत्र श्रीकृष्ण जन्में॥

* इस पक्ष में युग की प्रवृत्ति अश्विनी से नहीं हो सकती।

देगा, उन के नाश के पीछे मौर्य (राजे) पृथिवी को भोगेंगे, चाणक्य ही चन्द्रगुप्त को राज्य में अभिषेक देगा ॥ चन्द्रगुप्त ने ३१५ पूर्व ईस्वी राज्य पाया था। सो सिद्ध हुआ १०१५+१००+ ३१५=१४३० वर्ष ईस्वी सं० से पूर्व युधिष्ठिर थे ॥

(२) विष्णु और भागवत पुराण में यह भी लिखा है, कि जब सप्तर्षि पूर्वाषाढ़ा में पहुंच जाएंगे, तब नन्दों का राज्य होगा, मघा से पूर्वाषाढ़ा दसवां नक्षत्र है, और सप्तर्षि १०० वर्ष एक नक्षत्र में रहते हैं, इस से युधिष्ठिर से नन्दराज्य तक हजार वर्ष ही ठहरता है ॥

(३) मगध के इतिहासानुकूल युधिष्ठिर से बुद्धदेव तक ३५ राजाओं ने राज्य किया, उन में से प्रत्येक के राज्य की २१ मध्यमा मान कर ३५×२१=७३५+६६७ बुद्ध की जन्मतिथि =१४०२ वर्ष ईसाब्द से पूर्व युधिष्ठिर काल सिद्ध होता है *।

यह मतभेद हैं, इन से न्यून समय मानने वाले भी हैं, पर अब वर्तमान ऐतिहासिकों में उन का मतपोषक कोई नहीं रहा।

---

* विष्णुपुराण ४।२३-२४ के अनुसार मगध के राजा जरासन्ध जो [युधिष्ठिर का समकालीन था] से लेकर २२ बार्हद्रथ राजे १००० वर्ष, ५ प्रद्योतराजे १०० वर्ष, १० शैशुनाग राजे ३६२, नौनन्द १०० वर्ष राज्य करते रहे इस प्रकार चन्द्रगुप्त तक ४८ राजे और १५६२ वर्ष होते हैं, (सम्पादक)

पाण्डुग्रह भयेठ सुवन, मलिमय राजभुवन, शिक्षा प्रदान दान दियो अर्व खर्व में ।
पाण्डव-कुरुसुजन-द्वेष, पाण्डुज-वारण-प्रवेश, जतुनिकेत महँ निवेश, कौरव भए गर्व में ।
जारयो जतु दई आग, पाण्डुज के बड़े भाग, सुरंग मग गए भाग, भ्रमण दिशा सर्व में ।
द्रौपदि लहन, राज-गहन, हरण है सुभद्रा को अर्जुन वन-गमन खाण्डव-दहन आदि पर्व में

पूर्व पीठिका *

अध्याय १ [घ० १] प्रस्तावना†

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जय मुदीरयेत् ॥

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे॥१॥ सुखासीनानभ्यगच्छद् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् । तमाश्रम मनुप्राप्तं परिवव्रुस्तपस्विनः ॥२॥ अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृताञ्जलिः । अपृच्छत स तपोवृद्धिं सद्भिश्चैवाभिपूजितः॥३॥ अथतेपूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु । निर्दिष्टमासनं भेजे

---

* पूर्व पीठिका में भारत और दूसरे ग्रंथों के आधार पर अत्रि से लेकर पाण्डु राजा तक का वर्णन है ।

† प्रस्तावना महाभारत के अन्तर्गत नहीं, न ही व्यासकृत है, किन्तु महाभारत की उत्पत्ति और प्रचार आदि का एक अलग इतिहास है, जो पीछे किसी ने रचा है । वही यहां भारत के आदि में अलग लिखा रहते २ काल क्रम से ग्रन्थ का भाग ही बन गया है ॥

विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ४ ॥ सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्त मुपलक्ष्य च । अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित् प्रस्तावयन् कथाः ॥ ५ ॥ कुत आगम्यते सौते क्वचायं विहृतस्त्वया कालः । कमल-पत्राक्ष शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ ६ ॥

अर्थ–लोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवा सूतपुत्र पौराणिक, नैमिषारण्य में, कुलपति शौनक के बारह बरस के सत्र(लम्बे यज्ञ)में१ आनन्द से बैठे हुए तीक्ष्ण व्रतों वाले ब्रह्मऋषियों के पास पहुंचा, आश्रम में आए उस को चारों ओर से तपस्वियों ने घेर लिया ॥ २ ॥ उन साधुओं से संमान पाकर उस ने दोनों हाथ जोड़ कर सब मुनियों को प्रणाम किया, और (उन के) तप की वृद्धि पूछी ॥ ३ ॥ फिर जब वह सभी तपस्वी आसनों पर बैठ गए, तो बतलाए आसन पर वह लोमहर्षण का पुत्र नम्रता से बैठ गया ॥ ४ ॥ तिस पीछे एक ऋषि ने उसे विश्राम पा चुका और आनन्द पूर्वक बैठा जान कर कथाओं का प्रसंग चलाने के निमित्त यह पूछा ॥ ५ ॥ कहां से आ रहे हो हे सूतपुत्र, और हे कमलपत्र तुल्य नेत्रों वाले ! यह समय तूने कहां बिताया है, यह मुझे बतलाने कृपा कीजिये ॥६॥

सौतिरुवाच—जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः । कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः ॥ ७ ॥ कथिताश्चापि विधिवद्या वैशम्पायनेन वै । श्रुत्वाऽहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः ॥ ८ ॥ गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत् पुरा । कुरूणां पाण्डवानां च सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ ९ ॥ दिदृक्षुरागतस्तस्मात् समीपं भवतामिह ॥ १० ॥

अर्थ–सूतपुत्र बोला–महात्मा राजऋषि जनमेजय के सर्पसत्रमें

कृष्णद्वैपायन से उपदेश की हुई भांति २ की पवित्र कथाएं, ॥७॥ जो कि (वहां) वैशम्पायन ने ज्यों की त्यों कही हैं, उन विचित्र अर्थों वाली महाभारत की कथाओं को सुन कर मैं उस देश में गया, जहां पहले कौरवों पाण्डवों और अन्य सभी राजाओं का युद्ध हुआ था, वहां से अब आप के दर्शनों के लिये यहां आया हूं ॥ ८, ९, १० ॥

ऋषय ऊचुः—द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा । तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः ॥ ११ ॥ संहितां श्रोतु मिच्छामः पुण्यां पाप भयापहाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऋषि बोले, परमर्षि व्यास ने जो पुराण कहा है, उस विचित्र पदों वाले और विचित्र पर्वों वाले श्रेष्ठ इतिहास की पवित्र संहिता हम सुनना चाहते हैं, जो पाप के भय को मेटने वाली है ॥ १२ ॥

सौतिरुवाच—आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ १३ ॥ प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुत कर्मणः ॥ १४ ॥

अर्थ–सूतपुत्र बोला, वह सनातन पुरुष विष्णु जिस का सब पर शासन है, जो सब से पुकारा जाता है, जो सब से स्तुति किया जाता है, इन्द्रियों का नियन्ता है, चराचर का गुरु (ज्ञान दाता) है, उस को नमस्कार कर के अद्भुत कर्मों वाले व्यास का पवित्र मत कहूंगा ॥ १४ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् । इतिहास मिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥ १५ ॥ ततः सस्मार हेरंवं व्यासः सत्यवतीसुतः । तत्राजगाम विघ्नेशो वेदव्यासो यतः

स्थितः ॥ १६ ॥ पूजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदाऽनघ । लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ॥ १७ ॥ मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥ १८ ॥ श्रुत्वैतत् प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम् । लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम् ॥ १९ ॥ व्यासोऽप्युवाच तं देव मबुद्ध्वा मालिख क्वचित् । ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः ॥ २० ॥ ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात् । भेत्तुं न शक्यते ऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ॥ २१ ॥ सर्वज्ञोपि गणेशो यत् क्षणमास्ते विचारयन् । तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान् बहूनपि॥२२॥ मातुर्नियोगाद् धर्मात्मा गांगेयस्यच धीमतः । क्षेत्रे विचित्र वीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा ॥ २३ ॥ त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान् । उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च२४ जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ २५ ॥ तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् । अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः ॥ २६ ॥ इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्र मध्यापयच्छुकम् । ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः ॥ २७ ॥ त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः । महाभारत माख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥

अर्थ—सत्यवती के पुत्र(व्यास)ने तप और ब्रह्मचर्य से सनातन वेद का फैलाव करके यह पवित्र इतिहास रचा ॥१५॥*तब उस सत्यवती सुत व्यास ने गणेश जी का स्मरण किया, तो गणेश जी वहां आए, जहां वेद व्यास स्थित थे ॥ १६ ॥ संमान

* यह कथा ऐतिहासिक है वा नहीं, इस में मतभेद हो सकता है, और मनोरञ्जक भी है, इस लिये रखदी है ॥

पाकर जब वह बैठगए, तो व्यास बोले, हे गणेश हे निष्पाप! तू इस भारत का लेखक बन ॥ १७ ॥ जिसको मैं बोलता जाऊंगा जो मैंने मन से कल्पना कर लिया हुआ है ॥ १८ ॥ यह सुन गणेश जी बोले, यदि लिखते हुए मेरी लेखनी एक क्षण भी न ठहरे, तब मैं लेखक हूंगा ॥१९॥ व्यास ने भी उस देवता को कहा, तो विना समझे कहीं मत लिखना, तिसपर हां कह कर गणेश उसका लेखक बना ॥ २० ॥ तब मुनि ने कौतुक से (बीच २) ग्रन्थ में पक्की गांठें लगाईं, जो शब्द और अर्थ के गूढ़ होने से (आसानी से) खोली नहीं जासक्ती हैं ॥ २१ ॥ सर्वज्ञ (सारे शास्त्रों का जानेन वाला) भी गणेश (गूढ़ाशय को) विचारता हुआ जूंही कि एक क्षण ठहरता, उतने में व्यास और बहुत से श्लोक बना डालता ॥ २२ ॥ शक्तिमान् वेद व्यास ने पूर्वकाल में माता की और बुद्धिमान् भीष्म की आज्ञा से विचित्र-वीर्य के क्षेत्र (पत्नी) में तीन अग्नियों के तुल्य तीन कौरवों को जन्म दिया। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न करके फिर तप के लिये आश्रम को चला गया, वह (तीनों) उत्पन्न हुए, बढ़े, और परमगति को भी प्राप्त होगए, तब उस महाऋषि ने इस मानुषलोक में यह भारत कहा॥२३,२४,२५,२६॥यह पहले व्यास ने अपनेपुत्र शुक को पढ़ाया, ति र पीछे और योग्यशिष्यों को प्रदान किया (पढ़ाया) ॥२७॥ कृष्णद्वैपायन मुनि ने तीनवर्ष लगातार लगे रह कर इस अद्भुत इतिहास महाभारत को बनाया है ॥२८॥

* अ० २ (व० ६८-७१) राजा दुष्यन्त की मृगया।

वैशम्पायन उवाच—पौरवानां वंशकरो दुष्यन्तो नाम वीर्य-

* भरत, जिस के नाम पर भारतवंश है, उसकी जन्म कथा इस प्रकरण

वान् । चतुर्भागं भुवः कृत्स्नं यो भुङ्क्ते मनुजेश्वरः॥ १ ॥नासी चौर भयं तात न क्षुधाभय मण्वपि । नासीद् व्याधिभयं चापि तस्मिन् जनपदेश्वरे ॥ २ ॥ स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतबल-वाहनः । निर्ययौ परमप्रीत्या वनं मृगजिघांसया ॥ ३ ॥ स वनस्यान्त मासाद्य महच्छून्यं समासदत् । तच्चाप्यतीत्यनृपति र्जगामान्यद् महद् वनम् ॥ ४ ॥ तत्र प्रदेशांश्च बहून् कुसुमोत्कर मण्डितान् । लतागृहपरिक्षिप्तान् मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥ ५ ॥ संपश्यन् सुमहातेजा बभूव मुदितस्तदा ॥ ६ ॥ प्रेक्षमाणो वनं तच्च सुमहद्धृष्टविहंगमम् । आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥ ७ ॥ नदीं चाश्रमसंश्लिष्टां पुण्यतोयां ददर्श सः ॥ ८ ॥

अर्थ—वैशम्पायन—(जनमेजय से) बोले—पौरवों * का वंश बढ़ाने वाला दुष्यन्त नाम शक्तिमान् (राजा हुआ)। जो मनुष्यों का स्वामी भूमि के सारे चारों भागों का भोगने वाला हुआ है ।१। जब वह देश पर शासन कर रहा था, तब हे प्यारे ! प्रजाओं को कभी चोरों का, अकाल का, वा रोग का, एक अणुमात्र भय नहीं हुआ ।२। वह महाबाहु एक समय बहुत सेना और वाहन (रथ, घोड़े) साथ लिये, बड़ी प्रीति से, शिकार के निमित्त वन को गया ।३। वह एक वनके अन्त तक चला गया, और उस से आगे एक बड़ी उजाड़ में पहुंचा, उसे भी लंघकर फिर एक

में है, मनोरञ्जक और ऐतिहासिक होनेसे आदि के प्रक्षिप्त भाग में से यह कथा देकर आगे बहुत से ग्रन्थों की सहायता से चन्द्रवंशी सारे राजाओं की संक्षिप्त इतिहास देकर फिर असल भारत का आरम्भ करेंगे ॥ * चन्द्रवंशी क्षत्रियों में ययाति के पुत्र यदु और पूरु के नाम पर यादव और पौरव दो शाखाएं हुईं ॥

और बड़े वन में गया । ४ । वहां उस महा तेजस्वी ने बहुत से प्रदेश, फूलों के गुच्छों से शोभित, लतागृहों (बेलों की छतों) से ढके हुए, मन की प्रीति बढ़ाने वाले, देखे, और देख कर बड़ा प्रसन्न भया ।५।,६। पक्षी जिस में आनन्द मना रहे हैं, ऐसे वन को देखते हुए उसने मन को भाता हुआ एक रमणीय आश्रम देखा।७।और आश्रम से मिली हुई पवित्र जल वाली नदी देखी ॥

सामात्यो राजलिंगानि सोऽपनीय नराधिपः । पुरोहितसहायश्च जगामाश्रम मुत्तमम् ॥ ९ ॥ ऋचो बहृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः । शुश्राव मनुजव्याघ्रो विततेष्विह कर्मसु ॥ १० ॥ यज्ञ विद्यांगविद्भिश्च यजुर्विद्भिश्च शोभितम् । मधुरैः सामगीतैश्च ऋषिभिर्नियत व्रतैः ॥ ११ ॥ अथर्ववेदप्रवरा पूगयाज्ञियसामगाः । संहितामीरयन्तिस्म पदक्रमयुतां तु ते ॥ १२ ॥ तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियतान् संशितव्रतान् । जपहोमपरान्विप्रान् ददर्श परवीरहा ॥ १३ ॥ स काश्यपतपोगुप्तमाश्रमप्रवरं शुभम् । नातृप्यत प्रेक्षमाणो वै तपोवन गुणैर्युतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—(उसे देखकर) राजा राजचिन्ह उतार कर, पुरोहित और मन्त्रियों को संग लिये, आश्रम की ओर गया। ९ । यहां उस पुरुषवर ने, प्रवृत्त हुए यज्ञों में उत्तम ऋग्वेदियों से पदक्रम सहित उच्चारण की जाती हुईं ऋचाएं सुनीं ।१०। यज्ञविद्या के सारे अंगों को जानने वाले यजुर्वेदी, और दृढ नियमों वाले (सामवेदी) ऋग् और साम के मधुर गीतों से (आश्रम की) शोभा बढ़ा रहे हैं ।११। अथर्ववेद के पूरा २ जानने वाले और पूगयज्ञिय साम के गाने वाले पदक्रमसमेत अपनी २ संहिता को उचार रहे हैं ।१२। वह शत्रु वीरों का मारने वाला वहां तीक्ष्ण

व्रतों वाले अपने आप को वश में किये हुए उत्तम ब्राह्मणों को जप होम में लगा हुआ देखता भया ।१३। काश्यप (कश्यपगोत्री कण्व ऋषि) के तप से रक्षा किये हुए, तपोवन के गुणों से युक्त, इस सुहावने आश्रमवर को देखते हुए उसको तृप्ति नहीं होती थी ॥ १४ ॥

अ० ३ (व० ७१, ७२) शकुन्तला दुष्यन्त का संवाद

ततोऽगच्छन्महा बाहुरे को ऽमात्यान् विसृज्य तान् ॥ नापश्यच्चाश्रमे तस्मिं स्तंमुनिं संशितव्रतम् ॥ १ ॥ सो ऽपश्यमान स्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तथाऽऽश्रमम् । उवाच कइहेत्युच्चैर्वनं सन्नादयन्निव ॥ २ ॥श्रुत्वाऽथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिव रूपिणी । निश्चक्रामाश्रमात् तस्मात् तापसीवेषधारिणी ॥ ३ ॥ सा तं दृष्ट्वैव राजानं दुष्यन्त मसितेक्षणा । स्वागतं त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥ ४ ॥ यथावदर्चयित्वा ऽथ पृष्ट्वाचानामयं तदा । उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति ॥ ५ ॥ अपश्यमान स्तमृषिं तथा चोक्तस्तयाच सः । तां दृष्ट्वाच वरारोहां श्रीमतीं चारुहासिनीम् ॥ ६ ॥ विभ्राजमानां वपुषा तपसाच दमेन च । रूपयौवन सम्पन्ना मित्युवाच महीपतिः ॥ ७ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तब वह महाबाहु, मन्त्रियों को वहीं छोड़ अकेला गया । पर आश्रम में उसने तीक्ष्ण व्रतवाले उस ऋषि (कण्व) को नहीं देखा ॥१॥ उस ऋषि को न देखकर और आश्रम को शून्य देखकर, ऊंचे स्वर से मानों उस वन को गुंजाते हुए उसने कहा 'यहां कौन है' ॥ २ ॥ उस के उस शब्द को सुनकर तपस्विनी का वेषधारे हुए एक कन्या उस आश्रम से बाहर निकली,

जो मानों साक्षात् लक्ष्मी थी ॥ ३ ॥ वह काली आंखों वाली राजा दुष्यन्त को देखते ही झट बड़े आदर के साथ बोली 'स्वागतं ते' ॥ ४ ॥ यथाविधि (पाद्य अर्घ्य आसन दान आदि से) पूजकर और कुशल पूछकर हंसती हुई बोली 'क्या सेवा की जाए' ॥ ५ ॥ वह भूपति उस ऋषि (कण्व) को न देखता हुआ, और उस (कन्या) से इस प्रकार कहा हुआ, उस सुन्दर कमर वाली, शोभा वाली, सुन्दर हंसने वाली, शरीर से, तप से और सभ्यता से चमकती हुई, रूप और यौवन से सम्पन्न को देखकर यह बोला ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे सुन्दर कमर वाली तू कौन है ! किस की है, और किस लिये इस वन में आई है ।

कन्योवाच—कण्वस्या हं भगवतो दुष्यन्त दुहिता मता ॥ ८ ॥ दुष्यन्तउवाच–ऊर्ध्वरेता महाभागे भगवांल्लोकपूजितः । चलेद्धि वृत्ताद् धर्मोऽपि न चलेत् संशितव्रतः ॥ ९ ॥ कथं त्वं तस्य दुहिता संभूता वरवर्णिनी । संशयो मे महानत्र तन्मे छेत्तु मिहार्हसि ॥ १० ॥ कन्योवाच–विश्वामित्रं तप्यमानं मेनका भीरु राश्रमे । अभिवाद्य ततः सा तं प्राक्रीडद् ऋषिसन्निधौ ॥ ११॥ तस्या रूपगुणान् दृष्ट्वा सतु विप्रर्षभस्तदा। चकार भावं संसर्गाद् तया कामवशं गतः ॥१२ ॥ तौ तत्र सुचिरं कालमुभौ व्याहरतां तदा । जनयामास समुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम् ॥ १३ ॥एतदाचष्ट पृष्टः सन् मम जन्म महर्षये । कण्वंहि पितरं मन्ये पितरंस्त्वमजानती ॥ १४ ॥

(कन्याबोली) हे दुष्यन्त भगवान् कण्व की मैं कन्या मानी हुई हूं॥८॥

(दुष्यन्त बोला) हे महा भाग लोकमान्य (कण्व) भगवान् ऐसा ऊर्ध्वरेता (पूर्ण ब्रह्मचारी) है, कि साक्षात्

धर्म भी अपने आचरण से हिल जाए, पर वह तीक्ष्ण व्रतोंवाला कभी न हिले ॥ ९ ॥ तब हे सुन्दरि! कैसे तू उसके (घर) कन्या उत्पन्न हुई, इस में मुझे यह भारी संशय है, सो मेरा (संशय) दूर करने की कृपा कीजिये ॥१०॥ (शकुन्तला बोली–) विश्वामित्र तप कर रहे थे, तो मेनका डरती २ उनके आश्रम में आई और प्रणाम करके ऋषि के निकट क्रीडा करती भई ॥ ११ ॥ तब वह विप्रवर उसके रूप और गुणों को देखकर कामके वश में पड़ा हुआ, इस संसर्ग के कारण, उसके साथ मन लगाता भया ॥१२॥ तब वह दोनों बहुत चिरकाल आनन्द से वहां रहे, सो उस मुनि ने मेनका से शकुन्तला को उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ यह मेरे पिता मेरे पिता ने एक ऋषि को बतलाई थी। सो मैं अपने पिता को न जानती हुई अब कण्व को पिता मानती हूं ॥

अ० ४ (व० ७३) शकुन्तला और दुष्यन्त का गान्धर्व विवाह।

दुष्यन्त उवाच–सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे। भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥ गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुन्दरि। विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥२॥ शकुन्तलोवाच-फलाहारो गतो राजन् पिता मे इत आश्रमात्। मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥ ३ ॥ दुष्यन्तउवाच-इच्छामि त्वां वरारोहे भजमाना मनिन्दिते। त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥ ४ ॥ आत्मनोबन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः। आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥५॥ सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी। गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितु मर्हसि ॥६॥ शकुन्तलोवाच-यदि धर्मपथ स्त्वेष यदि चात्मा प्रभु र्मम। प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ॥ ७ ॥ मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः। युवराजो महाराज

सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ८ ॥ यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे संगम स्त्वया। एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन्॥९॥ एवमुक्त्वा स राजर्षिस्तामनिन्दित गामिनीम् । जग्राह विधिवत् पाणावुवास च तया सह ॥ १०॥ विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः। प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरंगिणीम्।११। मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु कण्वो ऽप्याश्रममागमत् । शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥ १२ ॥ विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानो महातपाः। उवाच भगवान् प्रीतः दिव्यज्ञानेन चक्षुषा ॥ १३ ॥ त्वया ऽद्य भद्रे रहसि मामनादृत्य यः कृतः। पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः ॥ १४ ॥ क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते। सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥ १५ ॥ धर्मात्मा च महात्मा च दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः। अभ्यगच्छः पतिं यस्त्वं भजमानं शकुन्तले ॥ १६ ॥

दुष्यबोला-हेकल्याणि तू निःसंदेह राजपुत्री है,जैसा कि तू बतालाती है सो हे सुश्रोणि! तू मेरी पत्नी बन,कहो तेरे लिये क्या करूं॥१॥ हे सुन्दरि हे भीरु गान्धर्व विवाह से तू मुझे प्राप्त हो, हे रम्भोरु विवाहों में गान्धर्व श्रेष्ठ कहाता है ॥२॥ शकुन्तुला बोली-हेराजन् मेरा पिता आश्रम से फल लेने गया है, सो थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिये, वह आप को मेरा दान करेगा ॥३॥ दुष्यन्त बोला-हे सुन्दर कमर वाली! हे अनिन्दिते! मैं चाहता हूं तू मुझे सेवन करे मुझे अपने लिये ठहराहुआ जान,क्योंकि मेरा मन तुझ में चला गया है ॥४॥ आप ही अपना बन्धु होता है, आप ही अपना आश्रय होता है, सो तू स्वयं धर्मानुसार अपना दान करने का हक रखती है ॥५॥ सो तू हे वर वर्णिनि ! चाहती हुई मुझ चाहने वाले की गान्धर्व विवाह से भार्य्या बनने योग्य है॥६॥शकुन्तला बोली-हां यदि

यह धर्ममार्ग है, और यदि देने में मेरा अपना आत्मा मालिक है, तो हे पौरवश्रेष्ठ ! मेरी शर्त सुन लीजिये ॥ ७ ॥ मुझ में से जो पुत्र हो, वह तेरे पीछे हे महाराज युवराज हो, यह मैं आप को सत्य करती हूं ॥ ८ ॥ हे दुष्यन्त यदि यह ठीक है, तो मेरा संगम आप के साथ हो । राजा ने झट उसे उत्तर दिया" एवमस्तु" ॥ ९ ॥ यह कह कर उस राजऋषि ने उस सोहनी चाल वाली का (स्वीकार करने की)विधि अनुसार हाथ पकड़ा और उसके साथ सह वास किया ॥१०॥ और उसे विश्वास दे कर चला गया-बार २ कहता हुआ, कि तेरे लिये चार अंगों वाली (रथ, हाथी घोड़े पैदल) सेना भेजूंगा ॥ ११ ॥ उसे गए थोड़ा समय बीता था, कि कण्व भी आश्रम में आ पहुंचा, शकुन्तला मारे लज्जा के उसके पास न जासकी ॥ १२ ॥ दिव्यदृष्टि वह महातपस्वी कण्व दिव्यज्ञान वाली आंख से (वैसा) जान कर उससे प्रसन्न होकर बोला ॥१३॥ तूने आज हे कल्याणि ! जो मुझे पूछे बिना पुरुष के साथ संयोग किया है,वह धर्म का बाधक नहीं है ॥ १४ ॥ क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह श्रेष्ठ कहा है, जो कि सकामा का सकाम के साथ एकान्त में बिना मन्त्रों के स्मृति में कहा है ॥ १५ ॥ पुरुषश्रेष्ठ दुष्यन्त धर्मात्मा है और महात्मा है जिस को तूने हे शकुन्तले ! प्यार करते हुए को पति स्वीकार किया है ॥ १६ ॥

महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः । य इमां सागरापांगीं कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ १७ ॥ परं चाभिप्रयातस्य चक्रं तस्य महात्मनः । भविष्यत्यप्रतिहतं सततं चक्रवर्तिनः ॥ १८ ॥–शकुन्तलोवाच–मया पतिर्वृतो राजा दुष्यन्तः पुरुषो-

त्तमः। तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ कण्व उवाच-प्रसन्न एव तस्याहं त्वत्कृते वरवर्णिनि। गृहाण च वरं मत्त स्त्वं शुभे यदभीप्सितम् ॥ २० ॥ ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चा स्खलनं तथा। शकुन्तला पौरवाणां दुष्यन्त हितकाम्यया ॥२१॥

अर्थ–लोक में महात्मा और महाबली तेरा पुत्र होगा, जो समुद्र पर्यन्त इस सारी पृथिवी को पालेगा ॥१७॥ शत्रु पर चढ़े हुए उस चक्रवर्ती महात्मा का चक्र सदा अप्रतिहत (विना रोक) रहेगा ॥ १८ ॥ शकुन्तला बोली-मैंने पति वर लिया है पुरुषोत्तम राजा दुष्यन्त। सो मन्त्रियों के सहित उस पर आप प्रसन्नता करने योग्य हैं ॥ १९ ॥ कण्व बोले-हे वरवर्णिनि तेरे लिये उस पर मैं प्रसन्न ही हूं, और हे शुभे मुझ से वर मांग, जो अभीष्ट हो ॥ २० ॥ तब शकुन्तला ने दुष्यन्त के हित की कामना से वर मांगा, कि पौरव वंश धर्मात्मा हो, और राज्य से न फिसले ॥ २१ ॥

अ०५(व०७४) शकुन्तला से भरत का जन्म और भरत का यौवराज्य

प्रतिज्ञाय तु दुष्यन्ते प्रतियाते शकुन्तलाम् । गर्भं सुषाव वामोरूः कुमारममितौजसम् ॥ १ ॥ जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः। विधिवत् कारयामास वर्धमानस्य धीमतः ॥२॥ कुमारो देवगर्भाभः स तत्राशु व्यवर्धत॥ ३ ॥ सिंहव्याघ्रान् वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा। आरोहन् दमयंश्चैव क्रीडंश्च परि धावति ।४। ततोऽस्य नाम चक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः । अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वं हि दमयत्यसौ ॥५॥ तं कुमारमृषिर्दृष्ट्वा कर्म चास्या-तिमानुषम् ।समयो यौवराज्याये त्यब्रवीच्च शकुन्तलाम्. तस्य तद् बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाच ह।शकुन्तला मिमां शीघ्रं सहपुत्रा मितो गृहात् ॥ ६, ७ ॥ भर्तुःप्रापयत गारं सर्वलक्षणपूजिताम्

॥८॥ तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः।शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम् ॥९॥ अभिसृत्य च राजानं विदिता च प्रवेशिता पूजयित्वा यथान्याय मब्रवीच्च शकुन्तला ॥१०॥ अयं पुत्रस्त्वया राजन् यौवराज्येऽभिषिच्यताम् । यथासमय मेतस्मिन् वर्तस्व पुरुषोत्तम ॥ ११ ॥

अर्थ–शकुन्तला से प्रतिज्ञा करके जब दुष्यन्त चला गया, तो उस वामोरू ने अनामिने पराक्रम वाले छोटे से कुमार को जन्म दिया ॥१॥ (दिनों दिन) बढ़ते हुए उस बुद्धिमान् के जातकर्म आदि संस्कार विधि अनुसार पुण्यात्मा कण्व कराता भया ॥ २ ॥ देवसुत के तुल्य वह कुमार वहां जल्दी बढ़ा ॥३॥ बाघ, सूअर भैंसे और हाथियों पर चढ जाता, उनको दबा लेता और उनके साथ खेलता हुआ चारों ओर दौड़ता फिरता ॥४॥ तब कण्वाश्रम वासियों ने उसका नाम 'सर्वदमन' रक्खा, क्योंकि वह सबको वश में कर लेता था ॥ ५ ॥ ऋषि ने कुमार को और उसके अति मानुष कर्म को देख कर शकुन्तला से कहा कि अब यह युवराज बनने के योग्य हो गया है॥ ६ ॥ उसके बल को जान कर कण्व ने शिष्यों से कहा, कि शकुन्तला जो सारे अच्छे लक्षणों के हेतु आदरणीय है, उसको पुत्र समेत जल्दी इस घर से पति के घर पहुंचाओ, क्योंकि स्त्रियों का बान्धवों में चिर रहना ठीक नहीं होता है ॥७,८॥ 'तथास्तु' कह कर वह सब महापराक्रमी, पुत्रसमेत शकुन्तला को आगे कर, इन्द्रप्रस्थ को चल पड़े ॥ ९ ॥ राजा के पास पहुंच कर अपना पता देने पर (राज सभा में) प्रवेश कराई हुई शकुन्तला यथाविधि पूजकर कहने लगी ॥१०॥ हे राजन् ! यह आप का पुत्र है, इसको

युवराज बनाइये, हे पुरुषपुङ्गव अपनी प्रतिज्ञानुसार इसके विषय में बर्ताव करें ॥ ११ ॥

सोऽपिश्रुत्वैव तद्वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि । अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥ १२ ॥ धर्मकामार्थ सम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह । गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वा पीच्छसितत्कुरु ॥१३॥ सैवमुक्ता वरारोहा व्रीडितेव तपस्विनी निःसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला ॥ १४ ॥ संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणोष्ठ संपुटा । कटाक्षै निर्दहन्तीव तिर्यग्राजानमक्षत ॥ १५ ॥ सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा दुःखामर्षसमन्विता भर्तारमभिसम्प्रेक्ष्य क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे । न जानामीति निःशंकं यथाऽन्यः प्राकृतोजनः ॥ १७ ॥+अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च । कल्याणं वद साक्ष्येण माऽत्मानमवमन्यथाः ॥ १८ ॥+योऽन्यथा सन्त मात्मान मन्यथा प्रतिपद्यते । किं तेन न कृतं पापं चौरेणाऽत्मापहारिणा ॥ १९ ॥+एको ह मस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् । यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥२०॥+योऽयमन्यात्मनाऽऽत्मना मन्यथा प्रतिपद्यते । न तस्य देवाः श्रेयांसो यस्यात्मापि न कारणम् ॥ २१ ॥ स्वयं प्राप्तेति मामेवं माऽवमंस्थाः पतिव्रताम् । अर्चार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥ २२ ॥ दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधि भिश्चातुरा नराः । ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ताः सलिलेष्विव ॥ २३ ॥ अण्डानि बिभ्रति स्वानि नभिन्दन्ति पिपीलिकाः । न भरेथाः कथंनुत्वंधर्मज्ञः सन्स्वमात्मजम् ॥ २४ ॥ स्वदंगेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात्पुरुषोऽपरः । सरसीवामलेऽत्मानं

द्वितीयं पश्य वै सुतम् ॥२४॥+कामंत्वया परित्यक्ता गमिष्यामि-स्वमाश्रमम् । इमंतु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मनः ॥ २५ ॥

अर्थ—उसके इस वाक्य को सुनते ही राजा स्मरण करता हुआ भी कहने लगा, 'मुझे कोई स्मरण नहीं है' किस की तू है हे दुष्ट तापसि ॥ ११ ॥ मैं तेरे साथ अपना धर्म सम्बन्ध, अर्थ सम्बन्ध वा काम सम्बन्ध कोई स्मरण नहीं करता हूं, चाहे चलीजा, चाहे खड़ी रहो, जो तेरी इच्छा हो कर ॥ १२ ॥ जब उस सुन्दरी को ऐसे कहा गया, तो वह वेचारी दुःख से वेहोश सी हुई स्थूणा की तरह निश्चल खड़ी रही ॥ १३ ॥ जोश और क्रोध से उस के नेत्र लाल हो गए, होंट फर्कने लगे, और कटाक्षों से मानों दग्ध करती हुई राजा को तिरछा देखती भई ॥ १४ ॥ वह थोड़ी देर सोच कर, दुःख और क्रोध से भरी हुई, भर्ता की ओर देख कर क्रुद्ध हुई यह वचन बोली ॥ १५ ॥ जानते हुए भी हे महाराज ? किस तरह आप किसी प्राकृत पुरुष की तरह निःशंक हो कर कहरेहे हैं, कि मैं नहीं जानता हूं ॥ १६ ॥ इस में सच और झूठ को तेरा हृदय जानता है, (अपने हृदय की) साक्ष्य से अपने कल्याण की वात कहो, मत अपने आत्मा का अपमान कर ॥ १७ ॥ जो और होते हुए अपने आत्मा को अन्यथा प्रकट करता है, उसने कौनसा पाप नहीं किया, जिस चोर ने अपने आत्मा को चुरालिया ॥ १८ ॥ मैं अकेला हूं, तू जो ऐसा मानता है, क्या तू सनातनमुनि(अन्तर्यामी)अपने हृदय में स्थित नहीं देखता है, जो कि पाप कर्म का जानने वाला है, उसके निकट तू पाप कर्म कर रहा है ॥ १९ ॥ जो आप अपना अपमान करके अपने आप को उलटा प्रकट करता है, देवता

उसकी भलाई नहीं करते हैं, जिन का आत्मा भी (भलाई का) कारण नहीं ॥ २० ॥ अपने आप आई है, इसलिये मुझ पतिव्रता का मत अपमान कर. अपने आप आई पूजा के योग्य पत्नी को तू नहीं पूजता है ॥ २१ ॥ मन के दुःखों से और रोगों से दग्ध होते हुए भी मनुष्य अपनी पत्नियों में आनन्दित होते हैं, जैसे घाम से दुःखी हुए पानियों में ॥ २२ ॥ चींटियें भी अपने अण्डों को पालती हैं, फोड़ती नहीं । तू वेदवेत्ता हो कर कैसे अपने पुत्र को नहीं पालेगा ॥ २३ ॥ तेरे अंगों से यह उत्पन्न हुआ है, पुरुष से दूसरा पुरुष. निर्मल सरोवर में प्रतिबिम्ब की तरह इस पुत्र को अपना ही प्रतिबिम्ब देख ले ॥ २४ ॥ तुझ से त्यागी हुई मैं खुशी से अपने आश्रम को चली जाउंगी । पर इस बाल अपने आत्मज को, तू त्यागने योग्य नहीं है ॥२५ ॥

दुष्यन्त उवाच—नपुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शाकुन्तले। अतिकायश्चते पुत्रो बालोऽति बलवानयम्॥२६॥कथमल्पेन कालेन शालस्तम्भ इवोद्गतः ॥ २७ ॥ सर्वमेतत् परोक्षं मे यत्त्वं वदसि-तापसि । नाहंत्वामभि जानामि यथेष्टं गम्यतांत्वया ॥ २८ ॥

अर्थ–(दुष्यन्त बोला)–तुझ में उत्पन्न हुए पुत्र का मुझे कोई स्मरण नहीं है हे शकुन्तले ! और अतिबलवान् यह बाल जो तेरा पुत्र है, यह अतिकाय (बडे कद का) है, ॥ २६ ॥ कैसे थोड़े से समय में शाल के वृक्ष की न्याईं ऊंचा चलागया ॥ २७॥ हे तापसि ! यह सब मुझे बे मालूम है, जो तू कहती है, मैं तुझे नहीं जानता हूं, जहां इच्छा हो, चलीजा ॥ २८ ॥

शाकुन्तलोवाच–आत्मानं सत्यधर्मौ च पालयन् पृथिवीपते। नरेन्द्रसिंह कपटं न वोढुं त्वमिहार्हसि ॥२९॥ वरं कूपशताद् वापी वरं

वापीशतात्क्रतुः । वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यंपुत्र शताद्वरम्॥३०॥ +नास्तिसत्यसमोधर्मो न सत्याद् विद्यतेपरम् । नहि तीव्रतरं किञ्चि-दनृतादिह विद्यते ॥ ३१ ॥ अनृतेचेत् प्रसंगस्ते श्रद्दधासि न चेत् स्वयम् । आत्मना हन्त गच्छामि त्वादृशेनास्ति संगतम् ॥ ३२ ॥ एतावदुक्त्वा राजानं प्रातिष्ठत शकुन्तला । अथान्तरिक्षाद् दुष्यन्तं वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ भरस्वपुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् । त्वंचास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला॥ ३४ ॥

अर्थ—शकुन्तला बोली—हे भूपते!राजसिंह! सचाई की, धर्म की, तथा अपनी,रक्षा करते हुए तुझे कपट का बोझ नहीं उठाना चाहिये ॥ २९ ॥ सौ कुँए से बावड़ी अच्छी है, सौ बावड़ी से यज्ञ अच्छा है, सौ यज्ञ से पुत्र अच्छा है, सचाई सौ पुत्र से अच्छी है ॥ ३० ॥ सत्य के बराबर कोई धर्म नहीं, सत्य से परे कुछ नहीं है,और झूठ से बढ़कर यहां तीव्रतर कुछ नहीं है॥३१॥ यदि तेरा लगाव झूठ में है, और स्वयं विश्वास नहीं करता है, तो शोक ! मैं आप ही चली जाती हूं, तेरे जैसे से (मेरा) मेल नहीं मिलता है ॥ ३२ ॥ इतना कह कर शकुन्तला चल पड़ी, तब आकाश से दुष्यन्त को अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) बोली॥३३॥हे दुष्यन्तपालन कर अपने पुत्र का,तू ही इस गर्भ का स्थापन करने वाला है, शकुन्तला सत्य कहती है ॥ ३४ ॥

तच्छ्रुत्वा पौरवोराजा संप्रहृष्टोऽब्रवीदिदम् । शृण्वन्त्वेतद्भवन्तो-ऽस्य देवदूतस्य भाषितम् ॥ ३५ ॥ अहंचाप्येवमेवैनं जानामिस्वय मात्मजम् । यद्यहं वचनादेव गृह्णीयामिम मात्मजम् ॥ ३६ ॥ भवे-द्धिशंक्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम् ॥३७॥ तं विशोध्यतदा राजा देवदूतेन भारत । हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम्॥३८॥

तां चैव भार्यां दुष्यन्तः पूजयामास धर्मतः । अब्रवीच्चैव तां राजा सांत्वपूर्वमिदंवचः ॥ ३९ ॥ कृतो लोकपरोक्षोऽयं सम्बन्धोऽयं त्वया सह । तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुध्यर्थं विचारितम् ॥ ४० ॥ मन्यते चैव लोकस्ते स्त्रीभावान्मयि संगतम् । पुत्रश्चायं वृतो राज्ये मया तस्माद् विचारितम्॥४१ ॥तामेवमुक्त्वा राजर्षिर्दुष्यन्तो महिषीं प्रियाम् । वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास भारत ॥ ४२ ॥

अर्थ—यह सुनकर प्रसन्न हुआ पौरव राजा (पुरोहित और मन्त्रियों से) यह बोला, इस देवदूत का कथन आप सुनें॥ ३५ ॥ मैं भी ठीक इसको अपना पुत्र जानता हूं, पर यदि मैं इस के कहने मात्र से इस पुत्र को ग्रहण करलेता, तो यह लोगों का शंकनीय रहता, कि यह शुद्ध नहीं होगा ॥ ३६ ॥ सो हे भारत (=जनमेजय) इस प्रकार तब राजा देवदूत से उसको शुद्ध करा के प्रसन्न और प्रमुदित हुआ इस पुत्र को ग्रहण करता भया*॥३८॥ और उस पत्नी का मर्यादाऽनुसार दुष्यन्त ने आदर किया, और उसे तसल्ली देता हुआ यह वचन बोला ॥ ३९ ॥ तेरे साथ यह सम्बन्ध मैंने लोकों से परोक्ष किया था, इसलिये हे देवि तेरी शुद्धि के लिये मैंने ऐसा सोचा था ॥ ४० ॥ लोक स्त्रियों की

* यह देवदूतवाला वर्णन आलंकारिक है, तत्त्वार्थ यह है, कि शकुन्तला के इन सरल और प्रबल वचनों को सुनकर सभ्यों के हृदय भी उस की सत्यता की साक्ष्य देने लगे, और वह बाल स्पष्ट दुष्यन्त की सच्चा प्रतिबिम्ब दीखता था, इस से सब के हृदय यह कह रहे थे, कि यह सच्ची है, जब औरों ने भी अपने हृदय का साक्ष्य कह दिया, तो राजा ने उस को, स्वीकार किया, मन्त्री पुरोहित आदि की संमति इस लिये आवश्यक थी, कि उस को युवराज बनाना था, सो यहां हृदय देवदूत है, और हृदय की साक्षिता आकाश वाणी है ॥

चञ्चलता के कारण मेरे साथ तेरा संगम मानते (नकि पति पत्नी भाव से), और पुत्र यह राज्य में चुनाहुआ है, इसलिये मैंने यह विचारा ॥ ४१ ॥ उस प्यारी पटरानी को ऐसा कह कर राजर्षि दुष्यन्त हे भारत ! वस्त्रों से और अन्न पान से उस (शकुन्तला) का आदर करता भया ॥ ४२ ॥

दुष्यन्तस्तु तदा राजा पुत्रं शाकुन्तलंतदा । भरतं नामतःकृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४३ ॥ तस्यतत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः ॥ ४४ ॥ स विजित्य महीपालांश्चकार वशवर्तिनः । चचारचसतांधर्मं प्रापचानुत्तमंयशः ॥४५॥ स राजाचक्रवर्त्यासीत सार्वभौमः प्रतापवान् । याजयामास तं कण्वोविधिवद् भूरिदक्षिणम् ॥ ४६ ॥ भरताद् भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् । अपरे येच पूर्वे वै भारताइतिविश्रुताः ॥४७॥

अर्थ—तब राजा दुष्यन्त शाकुन्तल पुत्र को भरत नाम देकर यौवराज्य में अभिषेक करता भया ॥४३॥ उस महात्मा (जगत् विख्यात का चक्र (आज्ञा) प्रवृत्त हुआ ॥४४॥ उसने राजाओं को जीत कर अपने वस में किया । सत्पुरुषों की मर्यादा पर चलता रहा, और अत्युत्तम यश पाया ॥४५॥ वह राजा सारी पृथिवी का प्रतापवान् चक्रवर्ती राजा हुआ, कण्व ने उसको बहुत बड़ी दक्षिणावाला यज्ञ विधि अनुसार कराया ॥ ४६ ॥ भरत से भरतों का यश फैला, जिस से यह वंश भारत कहलाया, फिर अगले पिछले जो राजे हुए, सब भारत नाम से विख्यात हैं ॥४७॥

चन्द्रवंशी राजे अत्रि से पाण्डुतक

बहुत पुराने समय में आर्यावर्त में दो राजवंश राज्य करते थे, सूर्य वंश और चन्द्र वंश। इन दोनों वंशों में बड़े २ प्रतापी, बुद्धिमान् धार्मिक राजे हुए हैं। जिन्हों ने बड़े २ काम किये हैं, उन की जीवन कथाएं बड़ी रोचक और लाभदायक हैं यहां हम चन्द्रवंशियों का भारत युद्ध से पहले का भी संक्षिप्त इतिहास भाषा में दे देते हैं। जो भारत में नहीं है।

चन्द्रवंशी राजाओं का आदि पुरुष अत्रि ऋषि हुआ है, अत्रि से लेकर जनमेजय तक उन की वंशावलि इस प्रकार है (१) अत्रि (२) चन्द्र (३) बुध (४) पुरुरवा (५) आयु (६) नहुष (७) ययाति (८) पूरु (९) जनमेजय, १म (१०) प्राचिन्वान् (११) प्रवीर (१२) मनस्यु (१३) अभयद (१४) सुद्युम्न (१५) बहुगव (१६) संयाति (१७) अहंयाति (१८) रौद्राश्व (१९) ऋचेयु (२०) रन्तिनार (२१) तंसु (२२) अनिल (२३) दुष्यन्त (२४) भरत (२५) वितथ (२६) भवन्मन्यु (२७) बृहत्क्षेत्र (२८) सुहोत्र (२९) हस्ती (३०) अजमीढ (३१) ऋक्ष, १म (३२) संवरण (३३) कुरु (३४) जन्हु (३५) सुरथ (३६) विदूरथ (३७) सार्वभौम (३८) जयसेन (३९) अरावी (४०) अयुतायु (४१) अक्रोधन (४२) देवातिथि (४३) ऋक्ष, २य (४४) भीमसेन (४५) दिलीप (४६) प्रतीप (४७) शान्तनु (४८) विचित्रवीर्य (४९) पाण्डु (५०) युधिष्ठिर (५१) अभिमन्यु (५२) परिक्षित (५३) जनमेजय, २य।

युधिष्ठिर से पूर्व के राजाओं का समय अज्ञात है। युधिष्ठिर के

समय में भी मतभेद होरहा है। जो पूर्व दिखला दिया है।

इन राजाओं के जीवन सादे होते थे, और धर्ममर्यादा पर चलते थे, इस लिये यह प्रायः दीर्घजीवी होते थे। देखो महाभारत युद्ध में जहां भीष्म के छोटे भाई विचित्रवीर्य के प्रपोते लड़े थे, वहां भीष्म स्वयं उस लड़ाई में कौरवों का सेनापति होकर लड़ा था, उस अवस्था में भी वह किसी युवकवीर से घट नहीं था। बड़ी वीरता से लड़ता था, सब उस से डरते थे, बुढ़ापे के कोई चिन्ह उस में नहीं पाए जाते थे।

इन में से अत्रि ऋषि (सं० १), जो इस वंश का मूल पुरुष है, बड़ा बुद्धिमान् विद्यावान् और धार्मिक था, पर था निरा धर्मगुरु, वह राजा तो नहीं था, ब्राह्मण था। पर जहां राजा की आज्ञाएं डर से मानी जाती हैं, वहां उन की आज्ञाएं प्रेम से मानी जाती थीं, उसकी आज्ञाएं इस प्रकार की होती थीं परमात्मा से प्रेम करो, बड़ों की सेवा और मान करो, छोटों की ओर अपना कर्तव्य पालन करो, सब की भलाई में रहो, सत्य बोलो, और धर्ममर्यादाओं पर स्थिर रहो, इत्यादि। ऋषि के पुण्योपदेश और पवित्र आचरण पर लोग मोहित थे, और उस के कहने पर चलते थे॥

अत्रि का पुत्र चन्द्र (सं० २) हुआ, यह पितृवत् विद्वान् और धार्मिक भी था, पर साथ ही बड़ा वीर योद्धा भी हुआ, धर्मगुरु होने से लोग वशवर्ती थे ही, सो इसने उनका दण्डशासन भी अपने हाथ लिया, और राजा कहलाया। इसी गौरव से इस के नाम से इस का वंश चला। अर्थात् चन्द्र वंश।

चन्द्र का पुत्र बुध (सं० ३) हुआ, सूर्य वंशी मनु ने अपनी कन्या इला बुध को विवाह दी, और प्रतिष्ठान नगर उसे

यौतक (दहेज़) में दिया । यह नगर प्रयाग के निकट गंगायमुना के संगम पर था ।

बुध का पुत्र इला से पुरुरवा (सं० ४) हुआ । इस ने प्रतिष्ठान को अपनी राजधानी बनाया । यह चन्द्रवंशियों की पहली राजधानी है, राजा सुहोत्र (सं० २८) तक प्रतिष्ठान ही उन की राजधानी रही है ।

पुरुरवा का प्रपोता ययाति (सं० ७) बहुत बड़ा प्रतापी राजा हुआ । उस की दो पत्नियां थीं, एक राजा वृषपर्वा के पुरोहित शुक्र की कन्या देवयानी, दूसरी राजा वृषपर्वा की अपनी कन्या शर्मिष्ठा । देवयानी से इस के दो पुत्र हुए, यदु और तुर्वसु । और शर्मिष्ठा से तीन हुए-द्रुह्यु, अनु और पूरु । इन पांचों में यदु सबसे बड़ा और पूरु सबसे छोटा था । पर पिता ययाति अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु पर ही प्रसन्न था, अतएव उसने राजसिंहासन पूरुको दिया, और अपने राज्य का दाक्षिणी प्रान्त यदु को दिया । यदुने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापन किया, इसके नाम पर इसके वंशज यादव कहलाए, और पूरुके नाम पर उसके वंशज पौरव प्रसिद्ध हुए ॥ यादव वंश में भी बड़े २ प्रतापी राजे हुए, हमारे परम पूजनीय श्रीकृष्ण महाराज भी इसी वंश में जन्मे थे * ।

---

* यदु से लेकर श्रीकृष्ण तक यादवों की वंशावलि इस प्रकार है (१) यदु (२) क्रोष्टु (३) वृजिनीवान् (४) स्वाहि (५) रुषद्गु (वा) रुषद्रु (६) चित्ररथ (७) शशविन्दु (८) पृथुश्रवा (९) तमा (१०) उशना (११) सितेषु (वा) सितायु) (१२) रुक्मकवच (१३) परावृत (१४) ज्यामघ (१५) विदर्भ (१६) क्रथ (१७)

पूरु की सन्तान परम्परा में राजा दुष्यन्त बड़ा प्रतापी हुआ वह एकबार शिकार खेलता हुआ, कण्वके आश्रम में जा निकला। कण्वऋषि आश्रम में नहीं थे, पर वहां एक कन्या शकुन्तला थी, उसने राजा का अतिथिसत्कार किया। शकुन्तला बड़ी रूपवती और बुद्धिमती थी। राजाने उससे पूछा, कि तू किसकी कन्या है तब उसने बतलाया, कि मैं ऋषि विश्वामित्र की कन्या हूं, पर मेरा पालन पोषण कण्व ऋषिने किया है, इसलिये मैं कण्वको ही अपना पिता मानती हूं, और वह भी मुझे अपनी पुत्री मानते हैं। यह सुनकर कुछ बात चीतके पीछे दुष्यन्त ने पूछा, कि तू राजपुत्री है, तुझे किसी राजपुत्र से ही विवाह करना उचित होगा, क्या तू चाहती है, कि मैं तुझे अपनी सहधर्मचारिणी बनाऊं। शकुन्तला ने उत्तर दिया, मुझे जगद्विख्यात चन्द्रवंशी वीर धार्मिक राजा को अपना पति वरना स्वीकार है, पर यदि आप यह प्रतिज्ञा करें, कि मेरी कुक्षि से जो आपका पुत्र हो, उसको आप अपना युवराज बनाएं। दुष्यन्त ने उसकी यह बात मानली, और गान्धर्व विधिसे शकुन्तला का पाणिग्रहण किया।

कुन्ति (१८) वृष्णि (१९) निर्वृति (२०) दशार्ह (२१) व्योमा (२२) जीमूत (२३) विकृति (२४) भीमरथ (२५) नवरथ (२६) दशरथ (२७) शकुनि (२८) करम्भि (२९) देवरात (३०) देवक्षत्र (३१) मधु (३२] अनवरथ [३३] पुरुहोत्र [३४] अंश [३५] सत्वत [३६] अन्धक [३७] भजमान [३८] विदूरथ [३९] शूर [४०] शमी [४१] प्रतिक्षत्र [४२] स्वयम्भोज [४३] हृदिक [४४] कृतवर्मा [४५] देवमीढुष [४६] शूर [४७) वसुदेव [४८] कृष्ण, बलराम ॥

अब दुष्यन्त अपने घर चला आया, और शकुन्तला वहीं आश्रम में रही, वहीं इसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ, और वहीं पला, यह बालक स्वभावतः बड़ा निडर और साहसी था। छोटी आयु में ही वन्यपशुओं को निडर होकर पकड़ कर बांधलेता, और उन पर चढ़जाता था, इसके इस अद्भुत बलको देखकर आश्रमवासियोंने इसका नाम सर्वदमन रखदिया। सर्वदमन जब युवराज होने के योग्य हुआ, तो कण्वऋषि ने पुत्र समेत शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजदिया। दुष्यन्तने उसका नाम भरत रक्खा, और उस को अपना युवराज बनाया।

दुष्यन्त के पीछे भरत (सं० २४) राजा हुआ, यह, जैसा बचपन में ही होनहार प्रतीत होता था, बहुत बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसने दूसरे कई राजाओं को अपने अधीन किया, और चक्रवर्ती भरत के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष और इसके वंशका नाम भारतवंश हुआ। इस बड़े वंश का वर्णन श्रीवेदव्यास ने जिस ग्रन्थ में लिखा है, उसीका पहला नाम जय, और अब भारत वा महाभारत है॥

भरत के कोई पुत्र नहीं था, उसने भरद्वाज नामी एक ब्राह्मण कुमार को गोद लिया, और उसका नाम वितथ रक्खा। भरत के पीछे वितथ (सं० २५) राजा हुआ।

वितथ से चौथी पीढ़ी राजा हस्ती (सं० २९) हुआ, इसने गंगाके किनारे अपने नाम पर एक नया नगर हस्तिनापुर बसाया, और उसको अपनी राजधानी नियत किया, तबसे हस्तिनापुर चन्द्रवंशियों की राजधानी हुआ।

हस्ती का प्रपोता संवरण हुआ, उसके समय में एकबार भया-

नक अकाल पड़ा, और रोग भी फैलगए, अवसर देख पांचाल-राजने हस्तिनापुर पर चढ़ाई की, एक ओर भयानक दैवी विपत्ति दूसरी ओर प्रबल शत्रुओं से युद्ध, बहुत लड़ा भिड़ा, पर अन्ततः संवरणको हस्तिनापुर छोड़ना पड़ा, हस्तिनापुर को छोड़कर वह अपने साथियों समेत सिन्ध में चलागया, वहां उसने सिन्धु के किनारे एक पर्वतके समीप गढ़ बनाया। वहीं उसने अपना बल धीरे २ बहुत बढ़ालिया, और अपने पुरोहित की सहायता से सारे भरतों को इकट्ठाकर हस्तिनापुर धावा किया, और उसे फिर वापिस लेलिया। संवरण का पुत्र कुरु (सं० १३) हुआ, इसने प्रजा का सुखऐश्वर्य बहुत बढ़ाया, एक बहुत बड़ा उपजाउ भूभाग जो बंजर पड़ा था, उसको कृषि योग्य बनाया, जो उसीके नामपर कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। इसके वंशज इसके नाम पर कौरव कहलाए।

कौरव वंशमें जो राजा प्रतीप (सं० ४६) हुआ है, उसके तीन पुत्र थे—देवापि, शान्तनु, और बाह्लीक। बड़ा देवापि ब्राह्मण बनगया, और शन्तनु राजसिंहासन पर बैठा। शन्तनु का गंगा से एक पुत्र हुआ, जो भीष्म नामसे प्रसिद्ध हुआ, पर उसका असली नाम देवव्रत था।

देवव्रत को जन्म देकर उसका पालन पोषण करने के पीछे गंगा शान्तनु से सदा के लिये वियुक्त होगई

कुछ वर्षपीछे एक दिन की बात है, कि राजा शन्तनु यमुना के किनारे २ घूमता हुआ एक घाट पर पहुंचा, जहां उसने एक रूपवती कन्या को नौका चलाते हुए देखा। राजाने उससे उसका नाम और वंश पूछा, तो उसने बतलाया, कि सत्यवती

मेरा नाम है, मैं चेदि के राजा वसु की कन्या हूं*, मुझे पिताने यहां के दाशराज (मलाहों के राजा) की गोदमें दिया है, दाशराज मेरा धर्मपिता है, सो मैं इस प्रकार इस दाशराज की कन्या हूं, अपने पिता की आज्ञासे धर्मार्थ नाव चलाती हूं।

शन्तनु उसे रूप यौवन गुण शील और वंशमे अपने योग्य जान, उसको वरने के लिये दाशराज के पास गए, और अपने मन की बात उसे कही। जिसपर यह बात चीत हुई।

दाशराज—महाराज! आप प्राचीन राजवंश में से है, और स्वयं राजा हैं। आपका वंश जगद्विख्यात है, और आप स्वयं प्रसिद्ध धर्मात्मा हैं, तब इससे बढकर मेरा और क्या भाग्य होसकता है, कि मेरी कन्या आपकी सहधर्मचारिणी हो। सो मैं देनेको तय्यार हूं, परन्तु आपसे एक प्रण लेकर—

शन्तनु—दाशराज! मैं प्रण पहले नहीं करसकता, तुम अपने मनकी बात कह दो, यदि अन्याय्य न होगी, तो मान-ली जाएगी।

दाशराज—आप यह वचन दें, कि सत्यवतीसे जो पुत्र होगा, उसको आपके पीछे आपका राज्य मिलेगा, और किसीको नहीं।

*चेदि (बुंदेलखण्ड) का राजा वसु चन्द्रवंशकी एक उपशाखा में से था। वंशावलि में संख्या ३४ पर जो जन्हु राजा आया है, उसका एक भाई सुधनु था। १ सुधनु का २ सुहोत्र, उसका ३ च्यवन, उसका ४ कृतक, उसका ५ वसु था। वसु को कोलाहल पर्वतके भील राजा ने अपनी कन्या ब्याह दी थी, जिसका प्रसिद्ध नाम गिरिजा वा आद्रिका (पहाड़न) था, उससे राजा वसु की यह सत्यवती कन्या थी, वसुकी कन्या होनेसे सत्यवती को वासवी और कृष्णजाति की माताके सम्बन्ध से काली भी कहते थे।

शन्तनु धर्मज्ञ राजा है, जब वह हरएक के स्वत्व का रक्षक है,तो यह कैसे संभव है, कि वह अपने सुखसाधन के निमित्त प्रिय पुत्रको उसके स्वत्व से वञ्चित करदे। उधर दाशराज पर दबाव डालना भी न्यायसंगत नहीं। सो यद्यपि वह सत्यवती पर मनसे आसक्त होचुका था, तथापि निरुपाय हो वापिस लौट आया। वापिस आकर भी शन्तनु के मनकी आसक्ति घटी नहीं, किन्तु साथ यह चिन्ता और बढ़गई,कि सम्बन्ध का स्वयं प्रस्ताव करके मैंने व्यर्थ अपने आप को हलका बनालिया है। पिताको चिन्तातुर देख देवव्रत से रहा न गया, उसने हाथ जोड़कर पूछा, पिताजी आप चिन्ताग्रस्त प्रतीत होते हैं, आपको क्या चिन्ता है?पिताने संकोच से यों उत्तर दिया,वत्स तुम्हीं मेरे इकले पुत्र हो, और तुम सदा शस्त्र उठाए साहस के कामों में लगेहो, यदि तुम पर कोई विपत्ति आए, तो फिर इस वंशका क्या हो, यही मेरी चिन्ता का कारण है॥

देवव्रत विनय(अदब)से आगे कुछ न पूछसका,किन्तु पिता जिस मन्त्रीसे अपनी कोई बात छिपा नहीं रखते थे,उसके पास आया और पूछा। मन्त्री जी! महाराज क्यों चिन्तातुर हैं, मुझे स्पष्ट बतलाने की कृपा करें। मन्त्री ने उसको सारी बात ज्यों की त्यों सुनादी।

बात सुनते ही देवव्रत की चिन्ता मिटगई, क्योंकि उसने जान लिया, कि मैं पिताकी चिन्ता मिटासकूंगा। इसलिये वह उस मन्त्री और दूसरे कई एक सामन्तों को साथ ले दाशराजके पास पहुंचा।और स्वयं उससे पिताके अर्थ सत्यवती का सम्बन्ध मांगा। दाशराजने उत्तर दिया। राजकुल दीपक! कौन इस श्लाघ्य स-

म्बन्ध से इन्कार कर सकता है। सत्यवती का पिता (वसु) भी इस सम्बन्ध को श्लाघ्य समझता है, जो गुणों में आपके सदृश आर्य राजा है, किन्तु हे राजपुत्र! डर यह है, कि सत्यवती के जो पुत्र हो, उसमें और आप में सौतेले भाई होने के कारण यदि वैर होजाए, तो फिर सत्यवती के पुत्र का कुशल नहीं, जिसके आप वैरी होंगे, उसको कौन बचा सकता है।

देवव्रत दाशराज का अभिप्राय समझगए, उन्होंने अपने स्वार्थ की कुछ परवाह न की, पिताके सुख के लिये अपना सुख छोड़ने को झट तय्यार होगए, और सब सामन्तों के सुनते हुए हाथ उठाकर उच्च स्वर से कहा—

इदं मे व्रत मादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर। (१।१००।८६)
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ८७।

हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ! मेरे इस सत्यव्रत को ग्रहण कर जो इस में से पुत्र उत्पन्न होगा, वह हमारा (सब भरतों का) राजा होगा॥ यह सुनकर दाशराज बहुत प्रसन्न हुआ, और फिर बोला—राजपुत्र! आपके मुखसे निकला वचन अटल है, यह सब जानते हैं, इन राजाओं के मध्य में जो आपने प्रतिज्ञा की है, वह आपके ही योग्य है, और वह पूर्ण होगी, इसमें कोई संशय नहीं, पर आप की जो सन्तान होगी, उससे भी तो वैसा ही डर है, वह राज्यपर अपना स्वत्व मानेंगे, इससे वैर बढ़ेगा, और विनाश होगा॥

तब देवव्रत ने पिता के हितको सर्वोपरि समझ, फिर हाथ खड़ा करके सबके सामने यह प्रतिज्ञा वचन कहे—

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम।

शृण्वतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥१।१००।९४॥
राज्यं तावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः ।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ॥ ९५ ॥
अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ॥ ९६ ॥

हे दाशराज! हे नृपोत्तम! मेरी यह प्रतिज्ञा समझ जो इन सब राजाओं के सुनते हुए पिता के अर्थ कहता हूं ॥९४॥

हे नरपतियो! राज्य तो मैंने पहले ही छोड़ दिया है, सन्तान के निमित्त भी अब यह निश्चय करता हूं ॥ ९५ ॥

आज से लेकर हे दाशराज! मेरा ब्रह्मचर्य होगा ॥९६॥

इसप्रकार देवव्रत ने पिताके सुखके लिये,अपना सारा सुख त्याग दिया,उसने पितृ भक्ति की चरमसीमा दिखलादी,राज्य भी छोड़ दिया, और सारी आयु अविवाहित रहने का प्रण भी किया, ऐसा भीषण व्रत करने के कारण लोगों ने उसे भीष्म कहा, उस दिनसे देवव्रत भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुए।

इतना उदार भाव देख सबने धन्य २ कहा। दाशराजकी भी इच्छा पूर्ण हुई, उसने सत्यवती को भीष्मके सिपुर्द कर दिया, भीष्म उसे पिताके पास ले आए, और पिता का दुःख दूर कर कृतार्थ हुए।

अब यथाविधि सत्यवती का विवाह हुआ, उससे शान्तनु के दो पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। अभी यह पूरे युवा नहीं होने पाए थे, कि राजा शान्तनु परलोक सिधारगए। तब भीष्मने सत्यवती की अनुमति में चित्रांगद को राजा बनाया।

चित्रांगद बड़ा वीर था, और बड़ा अभिमानी भी था, उसने बड़े २ वीर मानियों को द्वन्द्वयुद्ध का आह्वान दिया।

कुरुक्षेत्र में सरस्वती के तीर पर गन्धर्वराज चित्रांगद से उस का द्वन्द्वयुद्ध हुआ। शस्त्रास्त्र में निपुण दोनों वीरों का रोमहर्षण संग्राम हुआ, जिसमें अन्ततः कुरु चित्रांगद गन्धर्व चित्रांगद के हाथमें मारागया। उस समय विचित्रवीर्य अभी बालक था, पर उसी को भीष्म ने राजा बनाया। विचित्रवीर्य भीष्म की सम्मति पर चलता था, और भीष्म उसका सब प्रकार रक्षक था।

जब विचित्रवीर्य युवा हुआ, तो भीष्मने उसके विवाह का विचार किया। थोड़े दिनों पीछे उसको समाचार मिला, कि काशी के राजा की तीनों कन्याओं—अम्बा, अम्बिका, और अम्बालिका का स्वयंवर है।भीष्म भी माता की आज्ञाले काशी पहुंचे।

स्वयम्वर के दिन देश देशान्तरों से सभी राजकुमार अपने २ नियत स्थानों पर बैठगए। भीष्म भी उनमें जा विराजे। जयमाला लिये तीनों कन्याएं राजसमाज में प्रविष्ट हुईं। जब वह भीष्म के आगे से लंघगईं, तब कुछ राजकुमारों ने भीष्म को लक्ष्य करके मन्द उपहास किया कि'ब्रह्मचारी अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ कर भी ब्रह्मचारी ही रहगया' यह उत्तेजना देनेवाले शब्द भीष्म ने सुन लिये, वह उठ खड़ा हुआ, और ललकारकर बोला, मैं इस उपहास का उत्तर इनको सामने छीन लेजाने से देता हूं, इतना कहते ही उनको रथ पर चढ़ा रथको हवा करदिया। यह देख राजसमाज सारा क्षुब्ध हो उठा, सबने भूषण उतार फैंके, और कवच पहन रथों पर सवार हो भीष्मके पीछे धाये।और महारथी शाल्वराज उसके पास जा पहुंचा, और युद्ध का आह्वान दिया। भीष्म लौट पड़ा, दोनों में शस्त्र अस्त्रोंसे बड़ा अद्भुत युद्ध हुआ,

पर भीष्म ने उसके सारथि और घोड़ों को मारकर उसे पकड़ कर जीता छोड़ दिया। तब भीष्म फिर आगे बढ़ा, और कुशलता पूर्वक हस्तिनापुर पहुंचगया।

माता की आज्ञा से तीनों के साथ विचित्रवीर्य के विवाह की तय्यारी की। यह देख जेठी कन्या अम्बा लज्जा से सिर नीचा किये भीष्म के पास आई, और बोली।

वीरवर मैं अपने मन से शाल्वराज को अपना पति वर चुकी हूं, शाल्वराज भी मुझे वर चुके हैं, और इसमें मेरे पिता की भी अनुमति थी, स्वयंवर में भी मैंने उसी को वरना था, यह जान हे धर्मज्ञ जिसमे धर्महानि न हो, वैसा काम कीजिये। यह सुन भीष्मने वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ विचार करके अम्बा को शाल्वराज के पास चली जाने की आज्ञा दे दी, और अम्बिका अम्बालिका से शास्त्र रीति अनुसार विचित्रवीर्य का विवाह कराया

इन दोनों परम सुन्दरी पत्नियों को पाकर विचित्रवीर्य सुखों में बहुत अधिक पड़गया, इसी तरह सात वर्ष बीत गए, तब उसको क्षयी रोग ने आ दबाया, और बहुतेरा यत्न करने पर भी उसी रोग से उसका देहावसान होगया।

चित्रांगद तो विन विवाहे मरा, अब विचित्रवीर्य निःसन्तान मरा, इससे सत्यवती को बहुत दुःख हुआ, और भीष्म भी चिन्ता में डूबे रहते। तब एक दिन सत्यवती ने भीष्म को बुलाकर उसके सुहृदों के सामने यह कहना आरम्भ किया—

पुत्र! मैं जो आज्ञा देतीहूं, वह तुम्हें अवश्य माननी चाहिये। सुनो तुम्हारा छोटा भाई—तुम्हारा प्यारा भाई, निःसन्तान मरा है, अब जिस प्रकार तुम्हारे पिता का वंश निर्वंश न हो, और

राज्य बिना वारिस के न रहे, वैसा करो, मेरे नियोग (आज्ञा) से अपने भाई की दोनों पत्नियों में पुत्र उत्पन्न कर और राजसिंहासन पर बैठ, सुहृदों ने भी इस वचन की पुष्टि की। यह सारी बातें सुन कर भीष्मने उत्तर दिया—

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः। यद्वाप्यधिक मेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन (१।१०३।१५) त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्चरसमात्मनः। ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत ॥ १६ ॥ प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्णताम् ॥ १७ ॥ नत्व हं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथञ्चन ॥ १८ ॥

मैं सारी त्रिलोकी को, देवताओं के राज्य को,वा इन दोनों से भी अधिक त्याग सकता हूं, पर सत्य को किसी तरह नहीं त्याग सकता ॥ १५ ॥ पृथिवी गन्ध को त्याग दे, जल अपने रसको त्याग दे, तेजरूप को त्याग दे, वायु स्पर्श गुण को त्याग दे ॥ १६ ॥ सूर्य प्रभा को त्याग दे, अग्नि गर्मी को त्यागदे, पर मैं सत्यके त्यागने का कभी विचार भी नहीं करसकताहूं १७।१८

यह उत्तर सुन कर किसीको बोलने का स्थान न रहा,तथापि सत्यवती ने एकबार फिर कहने का साहस किया."पुत्र ! मैं तेरी धर्मनिष्ठा को जानती हूं, किन्तु आपद् धर्म को देखकर करने योग्य कर"।

भीष्म बोले, हे रानी! वचन से फिसलना पाप है,यह मुझसे न होगा, किन्तु क्षत्रियों का जो आपद्धर्म है, वह मैं कहता हूं, आपद्धर्म के जानने वाले पुरोहितों के साथ इसका निश्चय करके वैसा कर, इससे शान्तनु का वंश नष्ट न होगा—

सुनो, जब परशुराम ने हैहयों को मारडाला, तो उनकी

विधवाओं ने नियोगद्वारा ब्राह्मणों से सन्तान उत्पन्न किये, और इसप्रकार फिर हैहयवंश फैला। किञ्च, उतथ्य ऋषि का, जो ममता से पुत्र हुआ है-दीर्घतमा, उसके अपनी पत्नी में से गौतम आदि पुत्र हुए हैं। फिर सन्तानहीन राजा बालि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा में नियोगधर्म द्वारा उससे सन्तानोत्पादन की प्रार्थनाकी, उसने स्वीकार किया, तब नियोग धर्म से सुदेष्णा में से राजाके पांच पुत्र हुए—अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र, और सुह्म। जो विख्यात वीर पुरुष हुए हैं, जिनके नाम पर अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म देश विख्यात हुए। और उसी सुदेष्णा की दासी जो शूद्राथी, उसमें से नियोग द्वारा कक्षीवान् आदि ऋषि हुए, जो दीर्घतमा के अपने पुत्र कहलाए, और ब्राह्मण हुए। इस प्रकार आगे क्षत्रियों में ब्राह्मणों से वंशवृद्धि हुई है, जब भाई के लिये भाई आपद्धर्म का पालने वाला नहीं रहा।सो मेरे प्रण के विरुद्ध होनेसे मेरे लिये ऐसा करना अयोग्य जान आप किसी गुणवान् ब्राह्मण को निमन्त्रित करें।

भीष्म से यह सुन सत्यवती कुछ फिसलती वाणी से बोली, पुत्र! तुम हमारे कुल में धर्मरूप हो, तुम हमारे कुल की गति हो, तुमसे कोई बात छिपाने योग्य नहीं है, जो बात तुम से आजतक छिपी थी, वह तुमसे कहतीहूं, सुनो। मैं यमुना में धर्मार्थ अपने पिता की नाव चलाया करती थी। एक दिन वहां पराशर ऋषि आये, मैं उनको पार उतारने गई, वह मुझपर प्रसन्न हुए, और मुझे अंगीकार किया, उनसे मेरे एक पुत्र हुआ।यद्यपि यह समागम मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ, पर मैं उनके तेजके सामने सहमसी गई, और यही विनति करसकी, कि मैं कन्या हूं, तिसपर उन्होंने

मुझे कहा, कि इस पुत्र को जनकर भी तू कन्या ही रहेगी *। वह मेरा पुत्र प्रसिद्ध धार्मिक तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण वेदव्यास है। वह विचित्रवीर्य का भाई ही है, और गुणवान् ब्राह्मण भी है। सो यदि तुम्हारी अनुमति हो, तो उसको हम दोनों नियुक्त करें, वह हमारा नियोग मानकर भाई के वंशको चलाएगा।

भीष्म ने यह प्रस्ताव पसन्द किया, और सत्यवती ने व्यास को स्मरण किया। व्यास जी आए, भीष्मने यथाविधि उनका पूजन किया। सत्यवती कुशल पूछकर यों बोली। पुत्र तेरा भाई विचित्रवीर्य निःसन्तान मरा है, और भीष्म आयु भर ब्रह्मचारी रहने का प्रण करचुका हुआ है, अब इस राजवंश के बना रहने का केवल यही एक उपाय है, कि तू अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये सन्तान उत्पन्न करे, इसलिये हम दोनों तुझे भाई के लिये सन्तानोत्पादन में नियुक्त करते हैं। व्यास ने माता की आज्ञा मानली, किन्तु तपस्वी तेजस्वी के डरावने रूप और तेजको अम्बिका और अम्बालिका न सहार सकीं, इस लिये अम्बिका ने तो व्यास के सम्मुख अपने नेत्र बंद कर लिये, और अम्बालिका देख कर पीली होगई, इस दोषसे अम्बिका के जन्मसे अंधा धृतराष्ट्र हुआ, और अम्बालिका के पाण्डु वर्ण (पीले रंग का) पुत्र उत्पन्न हुआ, इसी से उसका नाम पाण्डु रक्खा गया। दोनों में कमी देख सत्यवती ने फिर एक बार अम्बिका को नियुक्त किया, पर उसने उनके उस पहले रूप को ध्यान

* सूर्य और पराशर ने कुन्ति और सत्यवती में से उनकी इच्छा के न होते हुए सन्तान उत्पन्न की, इसलिये उन का कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ (१।१०५।१३ पर नीलकण्ठ)

कर अपने वस्त्र भूषण पहना कर अपनी दासी को भेजादिया। दासी उनके तेज को सहार सकी, उस के धर्मात्मा विदुर उत्पन्न हुआ।

भीष्म ने तीनों का पुत्रों की न्याई लालन पालन किया, शास्त्र रीति से समय २ पर उनके संस्कार किये, वेद वेदांग, धर्म, नीति और शस्त्र अस्त्र में उनको शिक्षा दिलाई। धृतराष्ट्र बल में सब से बढ़कर था, पाण्डु ने शस्त्राशस्त्र विद्या में नाम पाया, विदुर धर्म और नीति के विचारों में सब से बढकर निकले। इतनी देर भीष्म राज्य को संभाले रहा, पर वह सिंहासन पर नहीं बैठा, राज्यशासन सत्यवती के हाथ में रहा। अब इन तीनों में से यद्यपि धृतराष्ट्र बड़े थे, पर वह अन्धे होने से राज्याधिकारी न थे, और विदुर दासीपुत्र था,इसलिये पाण्डु सिंहासन पर बैठा।

अब भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई। उसने ब्राह्मणों से सुना, कि गन्धारदेश के राजा सुबल की एक कन्या है जो पूर्ण युवति, परम सुन्दरी, और बड़ी सुशीला है। यह सुन भीष्म ने उस कन्या के साथ धृतराष्ट्र का विवाह करना विचार, सुबल के पास दूत भेज दिये।

धृतराष्ट्र अन्धे थे, इससे सुबल को कुछ झिजक तो हुई, पर लोक-विख्यात कुरुवंश से सम्बन्ध उसको बहुत प्रिय था, और उसकी रानी की भी पूरी सम्मति थी, इसलिये स्वीकार कर लिया। कन्या ने जब सुना, कि उसका विवाह एक अन्धे राज-कुमार से होने वाला है, तो उसने यह प्रण किया, कि मैं अपने पति से अच्छी दशा में नहीं रहूंगी, इसलिये उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांधली, जो फिर सारी आयु कभी नहीं खोली।

सुबल का पुत्र शकुनि था। सुबल की आज्ञा से वह बहिन को साथ लेकर हस्तिनापुर आया, वहां धृतराष्ट्र के साथ अपनी बहिन का विवाह किया, और जो दहेज़ के लिये धन घोड़े आदि लाया था, वह भीष्म को दिये। कार्य पूरा करके जब वह वापिस जाने लगा, तो भीष्म ने भी उसकी बड़ी अच्छी तरह प्रतिपूजा की। गन्धारदेश के नाम से यह रानी गान्धारी प्रसिद्ध हुई। गन्धारी बड़ी सुशीला थी, वह कुरुवृद्धों का सदा मान रखती, और घरके सब छोटों बड़ों को अपने सद् व्यवहार से सदा प्रसन्न रखती थी।

उसके कुछ काल पीछे भीष्म को कुन्ति के स्वयंवर का समाचार मिला। कुन्ति भी बड़ी सुन्दरी और सुशीला थी। यह यदुवंशी शूर (शूरसेन) की जेठी कन्या थी। शूर की बुआ का पुत्र (फुफेरा भाई) कुन्तिभोज था, उसके कोई सन्तान न थी, इससे शूर ने उससे प्रतिज्ञा की थी, कि मैं अपनी पहली सन्तान तुझे दूंगा, इस प्रतिज्ञा के अनुसार उसने यह कन्या कुन्तिभोज को दी, इस प्रकार कुन्तिभोज की यह गोद ली हुई इकलोती बेटी थी, सो पिता कुन्तिभोज के नाम से यह कुन्ति नाम से प्रसिद्ध हुई, इसका असली नाम पृथा था। कुन्ति भोज के घरमें ही इसका स्वयंवर हुआ। इस स्वयंवर में भीष्म ने पाण्डु को भी भेजा, कुन्ति ने जयमाला पाण्डु के गले में डाली। तब कुन्तिभोज ने पाण्डु से यथाविधि उसका विवाह किया, और पाण्डु कुन्ति को ब्याहकर हस्तिनापुर लाया।

इसके पीछे भीष्म ने मद्रदेश के राजा शल्य की एक रूप-शीलवती बहिन की बात सुनी। उसके साथ पाण्डु का एक और विवाह करने की इच्छा से मन्त्रियों और ब्राह्मणों को साथ लिये बड़े ठाठबाठ के साथ मद्रदेश की यात्रा की, मद्रराज भीष्म के आने

का समाचार सुन आगे लेने के लिये गए, बड़े आदर मान के साथ नगर में लेआए। आतिथ्य सत्कार करने के पीछे मद्रराज ने आने का कारण पूछा, तो भीष्म ने बतलाया, कि पाण्डु के लिये हम आप से सम्बन्ध चाहते हैं, आपका और हमारा सम्बन्ध युक्त है, यह जान हे मद्रेश ! हमें स्वीकार कीजिये।

मद्रेश ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया, किन्तु मद्रों में कन्या का शुल्क(मूल्य)अवश्य लिया जाता था,इस अपने कुलाचार को भी न त्यागने का इशारा उसने देदिया। तिस पर भीष्म ने बहुत से हाथी घोड़े और रत्न उसे दिये। और माद्री को लेकर हस्तिनापुर आए, और यथा विधि पाण्डु से उसका विवाह किया।

इस विवाह के पीछे एक महीना घर में सुखभोगकर राजापाण्डु भीष्म आदि वृद्धों से सम्मति ले, विजय यात्रा के लिये तय्यार हुआ। बहुत से हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना साथ ले, वृद्धों और ब्राह्मणों के आशीर्वचन सुनता हुआ, हस्तिनापुर से बाहर निकला। यह यात्रा उद्दण्ड जातियों वा उद्दण्ड राजों को दमन करने के लिये थी। सब से पहले उसने दशार्णों को जीता,जो चोर डाकुओं का घर बन रहा था,फिर मगध के राजा दीर्घ कोराजगृह में जा मारा, जो उस समय ऊंचा आया हुआ था और आसपास के राजाओंसेदर्पवश यूंही छेड़छाड़ किये रखताथा। वहां से बड़ा कोश और हाथी घोड़े लेकर विदेहों को जा जीता, फिर काशि, सुह्म और पुण्ड्र, देशों में होता हुआ, और उन राजाओं से पूजित हुआ, बहुत सा धन लेकर हस्तिनापुर आया। जो राजे पहले कुरुओं के सामन्त थे, और फिर स्वतन्त्र हो बैठे थे, उनको फिर अधीन किया। वह सब भी उसके साथ हस्तिनापुर आए। इस

प्रकार पाण्डु ने कुरुओं के यश को बढ़ाया। इस यात्रा में (जीत वा भेंट से)हाथ आए अनेक प्रकार के रत्नों और बहुमूल्य वस्त्रोंसे उसने बड़ों का मान किया।अब भीष्म ने राजा देवक की पारसवी * कन्या की श्लाघा सुनी, देवक के पास गए, और पारसवी को लाकर उससे विदुर का विवाह किया।

पाण्डु कुछ समय राजधानी में रहकर राजकार्य करते रहे, फिर वह शिकार के बहाने से देशाटन के लिये निकले। कुन्ती और माद्री भी उसके साथ गईं॥

सैर करते वह हिमालय के दक्षिणपार्श्वमें जा पहुंचे। यह रमणीय स्थान उनके मनको बहुत भाया, यहां कभी वह रानियों के साथ रमणीय स्थानों की सैर करते, कभी शिकार खेलते—और कभी मुनियों के दर्शनों से लाभ उठाते थे। भीष्म के सुप्रबन्ध से उनके लिये खानेपीने पहनने के सब आवश्यक पदार्थ वहां पहुंचते रहते थे, इस प्रकार वह बहुत दिन वहां आनन्द से रहे। एक दिन शिकार खेलते समय धोखे से उन्हों ने एक नवयुवा ऋषिकुमार को बाण से मारडाला, वृत्तान्त जानने पर उनको बड़ा दुःख हुआ, और ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ, कि उसने निश्चय कर लिया, कि आज से मैं सारे ऐश्वर्य भोग त्यागकर मुनियों की न्याईं तपश्चर्या का जीवन बिताऊंगा। यह निश्चय कर वह रानियों के पास आया, और अपना अभिप्रायप्रकट करके कहा, कि जाओ! तुम अब हस्तिनापुर में रहो, और मैं अब वृक्षों की छाल पहन कर वनों में तपस्वी जीवन बिताऊंगा। उत्तर में रानियों ने कहा

*पारसवी, शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुई द्विज की कन्या। देवक देवकी पिता का उग्रसेन का भाई यदुवंशी राजा था॥

महाराज ! हम भी आप के साथ वृक्षों की छाल पहनेंगी, फलमूल खाएंगी, जिस अवस्था में आप रहेंगे, उसी अवस्था में रहकर आप की सेवा करेंगी, पर आप का साथ छोड़ हम कहीं नहीं जाएंगी। तब उसने अपने और रानियों के भूषण वस्त्र और अपना सारा कोश नौकरों चाकरों को बांट दिया और उनको यह संदेश देकर हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी, कि वृद्ध माता सत्यवती, माता कौशल्या, आर्य धृतराष्ट्र, और पितृ तुल्य भीष्म तथा विदुर से जाकर कहो, 'आज से हम विरागी हुए, अब हम हस्तिनापुर न लौटेंगे' ॥

उसके इस करुणापूर्ण वचन को सुनकर उन सब की आखों से अश्रुधाराएं बहने लगीं, बड़े दुःख के साथ वह महाराज पाण्डु से विदा हुए, और हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र आदि से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। एकाएक इस दुःखकथा को सुनकर सब का चित्त बड़ा व्याकुल हुआ, और धृतराष्ट्र के ऊपर तो दुःख का पहाड़ टूटपड़ा, हरदम इसी चिन्ता में डूबा रहता, और किसी बात में उसका मन नहीं लगता था, बहुत काल पीछे बड़ी कठिनता से उसने अपने आप को संभाला ॥

इधर पाण्डु दोनों रानियों समेत मुनिवेष धारण कर नागशत पर्वत की ओर गया। वह चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय को लांघ कर गन्धमादन पर गए, वहां बहुत काल तक रहे, फिर वहां से हंसकूट को लंघ कर इन्द्रद्युम्न सरोवर को देखकर शतशृंग पर्वत पर आए, शतशृंग पर रहने वाले ऋषियों का सत्संग उनको बहुत भाया, और वहां टिक कर उन्हों ने तपस्या करनी आरम्भ की। वहां ही कुन्ती से उनके तीन पुत्र हुए युधिष्ठिर

*भीमसेन और अर्जुन, तथा माद्री से जोड़े पुत्र हुए, नकुल और सहदेव।

पाण्डु के घर जिस दिन शतशृंग पर कुन्ती से भीमसेन का जन्म हुआ। उसी दिन धृतराष्ट्र का सब से पहिला पुत्र दुर्योधन हुआ, पर धृतराष्ट्र के सारे पुत्र पूरा सौ थे, और एक कन्या दुःशला नामी अलग थी। धृतराष्ट्र ने एक वैश्य कन्या भी व्याही थी, उस से भी युयुत्सुनामी एक पुत्र हुआ। वह पूर्वोक्त एक सौ एक बहिन भाइयों से अधिक था।

पाण्डु के पांचों पुत्र अभी छोटे ही थे, कि पाण्डु का देहान्त होगया,माद्री उस के साथ सती हो गई। तब उस वन में रहने वाले ऋषि कुन्ती और पांचों पाण्डवों को लेकर हस्तिनापुर आए।

पुर के बाहर ठहर कर ही उन्होंने धृतराष्ट्र और भीष्म को संदेश भेजा, कि महाराज पाण्डु के पांचों पुत्रों और महाराज की धर्मपत्नी कुन्ती को लेकर शतशृंगवासी ऋषि उपस्थित हुए हैं। समाचार सुनते हुए धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर और सत्यवती, अम्बा, अम्बालिका, और गान्धारी, तथा दूसरे कुरुवृद्ध और पौरजन सब बड़े हर्ष के साथ पाण्डु पुत्रों को आदर सत्कार पूर्वक लाने के लिये ऋषियों के पास गए। ऋषियों को प्रणाम करके सब के सब ऋषियों के चारों ओर बैठगए, तब उनमें से एक वृद्धतम ऋषि उठा, और उसने यह कहा। हे राजऋषियो! कुरुराज्य के दायाद (वारिस) महाराज पाण्डु जो यहां से शतशृंग पर चले गए थे, जहां पर उन्हों ने तपस्वीजीवन धार कर बड़ी

* युधिष्ठिर का जन्म, ज्येष्ठा नक्षत्र, दिन के आठवें मुहूर्त अभिजित शुक्ला पञ्चमी को दोपहर के समय हुआ। यह प्रायः आश्विनि शुक्लापञ्चमी को होता है।

आश्चर्य तपस्या की है, उन्हीं कुरुराज पाण्डु के दोनों रानियों में से यह पांच राजकुमार हैं, । यह युधिष्ठर, यह भीमसेन और यह अर्जुन कुन्तीपुत्र हैं, और यह नकुल, और सहदेव माद्रीपुत्र हैं । शोक है, कि महाराज पाण्डु का देहान्त होगया है। माद्री उनके साथ सती हो गई है। उन का देहान्त हुए आज सत्तरहवां दिन है। अब यह उनके राजकुमार और यह राजपत्नी जो उनके मरने से हमारे पास अमानत हुए हैं, यह उनकी अमानत हम आपके पास लेकर आएहैं,इससेअगली धर्ममर्यादा के लिये आप प्रमाण हैं,इतना कहकर ऋषि चुप होगया, इस दुःखमय वृत्तान्त को सुनकर सब के नेत्रों से आंसुओं की धाराएं वहने लगीं। आंसुओं से पूर्ण नेत्रों के साथ धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर ने पाण्डु पुत्रों को और सत्यवती,अम्बिका और अम्बालिका ने कुन्ती को स्वीकार किया । ऋषि वहां से ही लौट गए, और पाण्डव और कुन्ती राजप्रासाद में आकर रहने लगे । पाण्डु के मरने से सत्यवती का चित्त संसार से सर्वथा विरक्त होगया, और वह अपनी दोनों स्नुषाओं अम्बिका और अम्बालिका को साथ लेकर वन को चली गई, और वहीं तपश्चर्या में तीनों ने अपना शेषजीवन विताया॥*॥

---

* पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्रों की उत्पत्ति और पाण्डु का मृत्यु एक अद्भुत घटना के रूप में इस प्रकार लिखागया है-राजा पाण्डु जब शिकार खेलने हिमालय के वनों में चले गए,तो वहां एक दिन उन्हों ने दूर से एक हरिण हरिणी का जोड़ा संगत हुआ देखा। पाण्डु ने देखते ही एक वाण छोडा, जो हरिण को जाकर लगा, वाण ऐसा कारी लगा,कि वह तत्क्षण हाहा करता हुआ भूमि परगिर पड़ा। राजाने जाकर देखा,कि वह हरिण नहीं,एक ब्राह्मणकुमार है। यह देख राजा को वडा शोक हुआ। राजा को देखकर पीड़ा से

अध्याय ६ (व० १२८) दुर्योधन का भीम को विष देना

मूल—अथाप्तवन्तो वेदोक्तान् संस्कारान् पाण्डवास्तदा। संव्यवर्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥ १ ॥ धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम् । बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाऽभवन् ॥ २ ॥ जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्येपांसुविकर्षणे ।

व्याकुल हुआ ब्राह्मण कुमार बोला 'ऐसे उज्ज्वल कुल में उत्पन्न होकर हे राजन् ! तेरी मति धर्म से क्यों फिर गई' । राजा ने कहा 'मैंने तुझे हरिण के रूप में देखा है, न कि मानुषरूप में, हरिण का हम शिकार करते ही हैं, इस लिये मेरा अपराध नहीं' कुमार फिर बोला 'हे राजन् मैं किंदम नाम मुनि हूं, मैं कोई कामी नहीं, पर जैसे पशु पक्षियों को समय पर स्वभावतः काम उत्पन्न होता है, वैसे समय पर स्वभावतः उत्पन्न हुए कामका रोकना मैंने विरुद्ध जाना, और मानुषी मर्यादा से दिन के समागम को निन्दित जान, जो वन्यमृग स्वभाव पर चलते हैं, उनका अनुसरण कर मैंने मृगस्वरूप धारण किया, सो तूने मृग जान मुझे मारा है, अत एव मैं तुझे अपने लिए अपराधी नहीं ठहराता, और इसी लिये तुझे ब्रह्महत्या भी नहीं लगेगी, किन्तु यह तो बता, हे राजन् ! जिस हर्ष के काल में तूने मुझे मारा है, क्या ऐसे हर्ष के काल में मृग को मारना चाहिये ? सो इस रस-विशेष के ज्ञाता हो कर भी तूने मुझे रसास्वाद के अन्दर ही मार दिया है, इस लिये तूभी इस रसको पाकर पूरा भोगे विना ही मृत्यु को प्राप्त होगा' यह शाप देकर वह ब्राह्मणकुमार चुप होगया, और थोड़ी देर में मरगया । पाण्डु को उस के मरने का बड़ा दुःख और शोक हुआ, और संसार से विरक्त होकर रानियों से बोला 'मैं अब संसार के विषयों से विरक्त हूं, अब मैं मुनियों की न्याईं भिक्षावृत्ति से रहूंगा, और मानापमान हर्ष शोक निन्दा स्तुति को एक तुल्य समझताहुआ विचरूंगा, एक जो मेरी भुजा को वासी (तेसे) से छील रहा हो, और दूसरा जो दूसरी भुजा पर चन्दन का लेप कर रहा हो, उन दोनों में समदृष्टि रहूंगा, न मुझे अब जीने में राग और न मरने में द्वेष है, इस प्रकार मैं अब तपस्वी बन कर रहूंगा, तुम दोनों हस्तिनापुर में जाकर महलों में रहो' इस के उत्तर में रानियों

धार्तराष्ट्रान् भीमसेनः सर्वान् स परिमर्दति ॥ ३ ॥ न ते नियुद्धे नजवे न योग्यासु कदाचन । कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥ ४ ॥ एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः । अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥ ५ ॥

ने कहाकि जिस अवस्था में आप रहेंगे,उसीमेंहम आपके साथरहेंगी तब अपने नोकर चाकरों को सारा धन देकर पाण्डु ने हास्तिनापुर भेज दिया,और स्वयं तपश्चर्या में लग गया, कई स्थानों में घूमकर शतशृंग पर आटिका,और वहां बहुत दिन तप किया ।

अब एक अमावस्या के दिन सब ऋषि ब्रह्मा के दर्शन करने के लिये जाने को उद्यत हुए। पाण्डु ने भी साथ जाने की इच्छा प्रकट की। ऋषियों ने कहा, यहां से उत्तर की ओर पहाड़ की उन चोटियों के ऊपर से जाना है जो सदा वर्फ से ढकी रहती हैं, और जहां कोई मनुष्य तो क्या, पशुपक्षी भी नहीं रहते, और मार्ग भी बहुत विखड़ा है, यह राजपुत्रियें वहां नहीं जासकेंगी, सो आप यहां रहें। तब पाण्डु ने कहा, हे ऋषियो! पुत्रहीन गृहस्थ को स्वर्ग नहीं होता, यह शास्त्र का वचन है। मैं अभी पितृऋण से मुक्त नहीं हुआ। सो हे तपस्वियों! जैसे मैं अपने पिता के क्षेत्र में महर्षि से उत्पन्न हुआ हूं, वैसे ही इस मेरे क्षेत्र में कैसे सन्तानोत्पत्ति हो। ऋषियों ने कहा, हे राजन्! हम दिव्यदृष्टि से देखते हैं, तेरे घर देवतुल्य पुत्र होंगे। तिसपीछे पाण्डु ने एकान्त में कुन्ती से कहा, हे कल्याणि! तू जानती है, कि शाप के कारण मेरी उत्पादन शक्ति नष्ट है, और निःसंतान गृहस्थ को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। अतएव आपद् में देवर से पुत्र की इच्छा करते हैं। सो मैं स्वयं जननशक्ति से हीन हुआ तुझे प्रेरता हूं, कि अपने सदृश वा श्रेष्ठ से पुत्र लाभकर, सुन हे कुन्ति वीरपत्नी शारदण्डायिनी ने अपने पति की आज्ञा पाकर ब्राह्मण से दुर्जय आदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न किये थे, वैसे तूभी मेरी आज्ञा से तपस्वी ब्राह्मण से सन्तानोत्पादन का यत्न कर।

अर्थ—अब पाण्डवों के वेदोक्त संस्कार (उपनयन) हुए, और वह पिता के मन्दिर में (नाना) भोग भोगते हुए बढ़ने लगे ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ आनन्दित हुए आनन्दक्रीड़ा करते थे, और अपने तेज के कारण सारी बालक्रीड़ाओं में उन से बढ़ कर रहते थे ॥ २ ॥ दौड़ने में,लक्ष्य के छीनने में, भोज्य

कुन्ती ने उत्तर दिया, हे राजन् ! मेरा मन तेरे सिवाय किसी और पुरुष में नहीं है, आप के वंश की ही यह पुरानी कथा मैंने सुनी है, कि पुरु के वंश में राजा व्युषिताश्व बड़ा धार्मिक हुआ है, कक्षीवान् की कन्या भद्रा उसकी पत्नी थी । राजा यौवन में ही मरगया, उसकी पत्नी ने राजा के शव[मृतशरीर]के गले लगकर बहुत ही विलाप किया, तब उस शव से आवाज़ आई, हे भद्रे उठ, मैं तुझे पुत्रदूंगा, ऋतुस्नान के पीछे अष्टमी और चतुर्दशी को मेरी शय्या पर सोना । भद्रा ने वैसा किया, और उसके तीन शाल्व और चार मद्र पुत्र हुए, सो तूभी हे राजन् ! मेरे में से मानस (संकल्प से) पुत्र उत्पन्न कर ।

युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा, हे कुन्ति ठीक व्युषिताश्व ने ऐसा किया, क्योंकि वह देवतुल्य था, किन्तु यह शक्ति (मानस पुत्र उत्पन्न करने की) मुझ में नहीं । पर जो मैं कहता हूं, यह भी धर्म-विरुद्ध नहीं । सौदास की आज्ञा से उसकी पत्नी मदयन्ती ने वसिष्ठ से पुत्रलाभ किया, जो राजा अश्वक हुआ है । सो तूभी मेरी आज्ञा से हे वरारोहे तपस्वी ब्राह्मण से गुणवान् पुत्रों को लाभ कर ।

तब कुन्ती ने कहा, हे स्वामिन् ! मैं अपने पिता के घर अतिथि सेवा में नियुक्त थी, एक बार वहां दुर्वासा मुनि आए, मेरे किये आतिथ्य सत्कार से प्रसन्न हो उन्हों ने मुझे मन्त्र दिया, कि इस मन्त्र का जप करके तू जिस देवता को चाहेगी, अपने पास बुला सकेगी, और उससे पुत्र लाभ करेगी, सो पुत्रलाभ के लिये मैं देवता को बुलाती हूं, आप जिस देवता की आज्ञा दें, उसका

में, और मगरा उठाने में, भीमसेन धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को मात कर देता था ॥ ३ ॥ वह कुमार भीमसेन से स्पर्धा करते हुए न कभी बाहुयुद्ध में, न दौड़ में, न दूसरे अभ्यासों (गदा आदि के अभ्यासों) में बढ़ कर निकले ॥ ४ ॥ इस प्रकार धृतराष्ट्र के पुत्रों से भीम बालकपन से, न कि द्रोह बुद्धि से, स्पर्धा करता हुआ अत्यन्त अप्रिय बन गया ॥ ५ ॥

आव्हान करूं। राजा ने कहा, धर्म सब से श्रेष्ठ है, इसलिये धर्मको बुलाओ, कुन्ती ने मन्त्र जपकर धर्म का आव्हान किया, धर्म वहां आए, और कुन्ती को अभीष्ट पुत्र दिया, जिसके जन्म के समय आकाशवाणी हुई, कि 'यह धर्मधारियों में सब से श्रेष्ठ, सत्यवादी युधिष्ठिर नाम प्रसिद्ध होगा' तिस पीछे फिर पाण्डु ने कुन्ती को कहा, क्षत्रियों में बल की प्रशंसा है, इसलिये महाबली पुत्र के लिये वायु का आह्वान कर। तब कुन्ती ने वायु का आह्वान किया और उससे कुन्ती का पुत्र भीमसेन हुआ, जिसमें दस हजार हाथी का बल था। फिर पाण्डु ने कुन्ती से कहा, कि इन्द्र देवताओं में प्रधान है, और अप्रमेय बल उत्साह वाला है, उससे एक पुत्र प्राप्त कर, तब कुन्ती ने इन्द्र का आह्वान किया, और उससे अर्जुन हुआ जो बड़ा शूरवीर उत्साही धनुर्धारी हुआ। तिस पीछे पाण्डु ने कुन्ती से फिर और पुत्र के लिय कहा, तो उसने उत्तर दिया, आपद में चौथे पुत्र की आज्ञा नहीं है। अब और पुत्र उत्पन्न करना धर्म-विरुद्ध होगा।

कुछ दिन पीछे माद्री पाण्डु के पास आई और कहा, महाराज! सौभाग्य से आपकी सन्तान कुन्ती में से होगई है, यदि कुन्ती मेरे ऊपर अनुग्रह करे, तो मेरी गोद भी भरजाए। पाण्डु ने उत्तर दिया, हे माद्रि तेरे पुत्र का मुख देखने की मुझे भी उत्कण्ठा है, किन्तु तेरा अभिप्राय जाने बिना तुझे कह नहीं सका, सो अब मैं अवश्य कुन्ती को तेरे लिये कहूंगा। तब पाण्डु ने कुन्ती को कहा, कुन्ती ने स्वीकार कर कहा, कि मैं मन्त्र का जप करती हूं, माद्री उस देवता का ध्यान

मूल—ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्। भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभाव मदर्शयत ॥ ६ ॥ तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः। मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मति रजायत ॥ ७ ॥ अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः। मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या सन्निगृह्यताम् ॥ ८ ॥

करं, जिससे पुत्र चाहती है। तदनुसार माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया, और दोनों अश्वियों से माद्री के यमल (जोड़े) पुत्र उत्पन्न हुए, नकुल और सहदेव। यह भाई एक २ वरस एक दूसरे से छोटे थे।

धृतराष्ट्र के घर गान्धारी में से सौ पुत्र और एक कन्या इस प्रकार हुए। एक दिन वेद व्यास जी गांधारी के घर आए, उनको भूख और प्यास बहुत लग रही थी, गान्धारी ने उनकी बहुत अच्छी तरह सेवा की, तब व्यास ने प्रसन्न होकर उस को वरदान दिया। गान्धारी ने उससे सौ पुत्र का वर मांगा। व्यास जी 'तथास्तु' कह कर चले गए। कुछ दिन पीछे धृतराष्ट्र से गान्धारी को गर्भ रहा, पर नौ महीने के पीछे सन्तान उत्पन्न न हुई, होते २ दो वरस इसी तरह बीत गए, तब हस्तिनापुर में समाचार पहुंचा कि पाण्डु के घर पुत्र हुआ है, जिस का नाम युधिष्ठिर रखा है। कुन्ती के घर पुत्र हुआ सुनकर, और अपनी दो वर्ष से लगी आशा को भी निष्फल देखकर, गान्धारी क्रोध से अपने उदर पर मुक्कियां मारने लगी, तब मांस की एक बोटी उत्पन्न हुई, उस को वह फेंकने लगी ही थी, कि व्यास जी वहां आ उपस्थित हुए, और पूछा 'हे गान्धारि! क्या करना चाहती है। उसने सारी बात ज्योंकी त्यों कह सुनाई, और कहा, आपने मुझे सौ पुत्र का वर दिया था, उनके स्थान यह एक मांस का गोला उत्पन्न हुआ है। व्यास ने कहा 'गान्धारि जो कुछ मैंने कहा है, वह पूरा होगा, मैंने कभी हंसी में भी झूठ नहीं बोला है, सो यह भी झूठ नहीं होगा। घी से भरे सौ कुंडे तय्यार करो, और सुरक्षित स्थान में उन्हें रखो, इस गोले पर ठंडा पानी छिड़को।

अर्थ—तब भीमसेन का यह अति विख्यात बल जान कर प्रतापी दुर्योधन ने दुष्ट भावना दिखलाई ॥ २ ॥ धर्म से गिरे हुए बुराई ढूंढते हुए उस (दुर्योधन) की, अज्ञान से, और राज्य के

तब व्यास ने स्वयं उसकी सौ बोटियां करनी आरम्भ की, जो एक सौ एक हो गईं, । जिस के लिये गान्धारी ने प्रार्थना की, कि यह सौ पुत्र से अधिक एक कन्या भी हो, 'तथास्तु' कह कर और उन बोटियों को एक सौ एक कुंडों में डालकर, और एक वर्ष पीछे इनको निकालना "यह कहकर व्यास जी चले गए। उसके अनुसार उन सौ कुंडों में से सौ पुत्र हुए। अधिक एक कूंडे में से एक कन्या हुई, जिन में से दुर्योधन सब से बडा हुआ। जिस दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन का जन्म हुआ, उसी दिन भीमसेन उत्पन्न हुआ था।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के नाम यह हैं-(१) दुर्योधन (२) दुःशासन (३) दुःसह (४) दुःशल (५) जलसन्ध (६) सम (७) सह (८) विन्द (९) अनुविन्द (१०) दुर्धर्ष (११) सुबाहु (१२) दुष्प्रधर्षण (१३) दुर्मर्षण (१४) दुर्मुख (१५) दुष्कर्ण (१६) कर्ण (१७) विविंशति (१८) विकर्ण (१९) शल (२०) सत्व (२१) सुलोचन (२२) चित्र (२३) उपचित्र (२४) चित्राक्ष (२५) चारुचित्र (२६) शरासन (२७) दुर्मद (२८) दुर्विगाह (२९) विवित्सु (३०) विकटानन (३१) ऊर्णनाभ (३२) सुनाभ [३३] नन्द [३४] उपनंदक (३५] चित्रबाण (३६) चित्रवर्मा (३७) सुवर्मा (३८) दुर्विमोचन (३९) अयोबाहु (४०) महाबाहु (४१) चित्रांग (४२) चित्रकुण्डल (४३) भीमवेग (४४) भीमबल (४५) बलाकी (४६] बलवर्धन (४७) उग्रायुध (४८) सुषेण (४९) वृकोदर (५०) महोदर (५१) चित्रायुध (५२) निषङ्गी (५३) पाशी (५४) वृन्दारक (५५) दृढवर्मा (५६) दृढक्षत्र (५७) सोमकीर्ति (५८) अनूदर (५९) दृढसन्ध (६०) जरासन्ध (६१) सत्य सन्ध (६२) सद (६३) सुवाक् (६४) उग्रश्रवा (६५) उग्रसेन (६६) सेनानी (६७) दुष्पराजय (६८) अपराजित (६९) कुण्डशायी (७०) विशालाक्ष (७१) दुराधर (७२) दृढहस्त (७३) सुहस्त

लालच से यह पापबुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ कि बलवालों में बड़े हुए, पाडुपुत्रों में से मंझले कुन्ती के पुत्र इस भीम को कपट से दबाना चाहिये ॥ ९ ॥

---

(७३) वातवेग (७५) सुवर्चा (७६) आदित्यकेतु (७७) बह्वाशी (७८) नागदत्त (७९) अग्रयायी (८०) कवची (८१) क्रथन (८२) कुण्डी (८३) कुण्डधार (८४) धनुर्धर (८५) उग्र (८६) भीमरथ (८७) वीरबाहु (८८) अलोलुप (८९) अभय (९०) रौद्रकर्मा (९१) अनाधृष्य (९२) कुण्डभेदी (९३) विरावी (९४) चित्रकुण्डल (९५) प्रमाथी (९६) दीर्घरोम (९७) दीर्घ बाहु (९८) कनकध्वज (९९) विरजा (१००) (कन्या दुःशला जयद्रथ से ब्याही गई)

इस प्रकार अत्यबुद्धियों के जी बहलाने के लिये यह एक अद्भुत कहानी घड़ी गई है। इस में जितना इतिहास का अंश है, वह ऊपर मूल में लिख दिया है। पाण्डवों के विषय में तो यह दो संभावना हो सकती हैं, कि यदि यह मानलिया जाए, कि युधिष्ठिर सन्तानोत्पादन के योग्य नहीं था, तो यह पुत्र उसके क्षेत्रज (नियोगज) होने चाहियें, इस संभावना को दृढ़ करने वाली यह बातें हैं कि तपस्वियों ने उसको नियोगज सन्तान प्राप्त करने की प्रेरणा की, और पाण्डु ने स्वयं पुराने इतिहास प्रमाण देकर कुन्ती को नियोग के लिये प्रेरा और दूसरी संभावना यह हो सकती है, कि यहपांचों पाण्डु केऔरस पुत्र ही थे, किन्तु दुर्योधन के पक्ष वालों ने अपने स्वार्थ के लिये यह फैलाया होगा, कि यह पाण्डु के पुत्र ही नहीं हैं, इसकी झलक अनुक्रमणिकाऽध्याय में कहे इस श्लोक में स्पष्ट है 'आहुः के चित्र तस्यैतेतस्यैतइति चापरे। जब ऋषिपाण्डवों को हस्तिनापुर लाए, तो) कोई कहने लगे यह उसके (पाण्डु के पुत्र) नहीं, दूसरे कहने भए यह उसके हैं(१।११९)सो संभव है दुर्योधन के फैलाए इस अपवाद को मिटाने की चेष्टा से यह अद्भुत कल्पना हुई हो गान्धारी के सौ पुत्र, गान्धारी और उसकी दासियों को मिला कर सौ संभव हैं ॥

मूल—ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत। चैलकंबल-वेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ॥ ९ ॥ सर्वकामैः सुपूर्णानि पताकोच्छ्रयवन्तिच। तत्र संजनयमास नानागाराण्यनेकशः ॥ १० ॥ उदकक्रीडनं नाम कारयामास भारत। प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलं किञ्चिदुपेत्यह ॥ ११ ॥ भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यंलेह्यमथापिच। उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि ॥ १२ ॥

अर्थ—तब उसने हे भारत! जलक्रीड़ा के लिये वस्त्र और कंबलों के बड़े विचित्र मन्दिर बनवाए ॥ ९ ॥ जो सब आवश्यक वस्तुओं से भरे हुए और ऊंचे झंडों वाले थे, वहां अनेक भांति २ के कमरे बनवाए ॥ १० ॥ प्रमाणकोटी * में उस जगह कुछ स्थल मिला कर † जलक्रीडन (स्थान) बनवाया ॥ ११ ॥ और रसोइये के काम में प्रवीण पुरुषों ने वहां भक्ष्य, भोज्य, पेय, चोष्य, लेह्य ‡ सब तय्यार कर दिया ॥ १२ ॥

मूल—ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः। गंगां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम् ॥ १३ ॥ सहिताः भ्रातरः सर्वे जलक्रीडा मवाप्नुमः। एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥ ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः। निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह ॥ १५ ॥ उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महावनम्। विशन्तिस्म तदा वीराः सिंहा इव गिरेर्गुहाम् ॥ १६ ॥

---

* गंगातट पर स्थान विशेष † क्रीडागार आधा जल और आधा स्थल में बनवाया ‡ ठोस, नर्म (खाने की चीजें), पीने, चूसने और चाटने की वस्तुएं।

अर्थ—तब दुर्मति दुर्योधन पाण्डवों से बोला। चलो उद्यानवन * से शोभायमान गंगा पर चलें ॥ १३ ॥ सब भाई इकट्ठे मिलकर वहां जलक्रीडा करेंगे। 'तथास्तु' यह युधिष्ठिर ने उत्तर दिया ॥ १४ ॥ तब वह कौरव पाण्डवों समेत बड़े २ रथों पर और अच्छे २ स्थानों के उत्तम २ हाथियों पर चढ़ कर नगर से निकले ॥१५॥ एक बड़े वन को लंघ कर, उद्यानवन में पहुंच कर, वह वीर उस में प्रविष्ट हुए, जैसे कि शेर पर्वत की कन्दरा में प्रविष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

मूल—उद्यान मभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते। उपस्थानगृहैः शुभ्रैर्वलभीभिश्चोपशोभितम् ॥ १७ ॥ गवाक्षकै स्तथा जालैर्यन्त्रैः सांचारिकैरपि। संमार्जितं सौधकारैश्चित्रकारैश्च चित्रितम्॥१८॥ जलं तच्छुशुभे च्छन्नं फुल्लैर्जलरुहैस्तथा। उपच्छन्ना वसुमती तथा पुष्पैर्यथर्तुकैः ॥ १९ ॥ तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवा कौरवाश्चह। उपच्छन्नान् बहून् कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः २०

अर्थ—वह सभी भाई उद्यान (की शोभा) को देखते भए, जो उज्वल उपस्थानगृहों (दरबार आम) और वलभियों (ढालु छत्तों वाले घरों) से, तथा झरोकों, जालियों, सांचारिक (जहां कहीं ले जाए जाने वाले) फव्वारों से शोभित था, जो सौधकारों से पोता हुआ, चित्रकारों से चित्रा हुआ था ॥१७,१८॥ वहां जल फूले हुए कमलों से ढका हुआ और स्थल ऋतु के फूलों से ढका हुआ शोभा पा रहा था ॥१९॥ वहां इकट्ठे बैठ कर वह पाण्डव और कौरव अनेक प्रकार के बहुत से भोगों को भोगते भए ॥ २० ॥

---

* उद्यान=शाहीबाग, उद्यानवन=फलों फूलों वाले बन में शाही बाग।

मूल—अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथाक्रीडागताश्च ते। परस्पर स्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्यांस्ततस्ततः ॥ २१ ॥ ततो दुर्योधनः पाप स्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्। विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया ॥२२॥ स्वय मुत्थाय चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः। स वाचाऽमृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद् यथा॥ २३ ॥ स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्। प्रतीक्षितं स्म भीमेनतं वै दोषमजानता॥२४॥ ततो दुर्योधन स्तत्र हृदयेन हसन्निव। कृतकृत्य मिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः ॥ २५ ॥

अर्थ—अब उस उद्यानवर में वह क्रीड़ाओं में लगे हुए यहां वहां एक दूसरे के मुखों में खाने की वस्तुएं देते भए ॥ २१ ॥ तब पापी दुर्योधन ने भीमसेन के मारने की इच्छा से उसके खाने में कालकूट विष डलवाया ॥ २२ ॥ और आप उठ कर, अन्दर से छुरे जैसा और वाणी से अमृत तुल्य वह पापी, भाई की न्याईं और सुहृद् की न्याईं स्वयं भीम के (मुख में) बहुत भोजन डालता रहा, उस दोष को न जानते हुए भीमने उसका आदर किया ॥२३,२४॥ तब पुरुषाधम दुर्योधन हृदय से मानो हंसता हुआ अपने आपको कृतकृत्य मानता भया ॥ २५ ॥

मूल—ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत। पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः ॥ २६ ॥ क्रीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राःस्वलंकृताः। विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन्॥२७॥ खिन्नस्तु बलवान् भीमो व्यायम्याभ्यधिकं तदा। प्रमाण कोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत् स्थलम् ॥ २८ ॥ शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः। विषेण च परीतांगो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः ॥ २९ ॥

अर्थ—तब प्रसन्नचित्त हुए पाण्डु पुत्र और धृतराष्ट्र पुत्र इकट्ठे मिलकर जलक्रीडा करते भए॥ २६ ॥ क्रीडा की समाप्ति पर उज्वल वस्त्र भूषण पहन कर क्रीडाघरों में ही आराम करते भए ॥ २७ ॥ किन्तु बलवान् भीम अधिक व्यायाम कर थका हुआ, आराम चाहता हुआ, प्रमाणकोटी में एक स्थल पाकर सो गया ॥ २८ ॥ थका हुआ, मद से बेहोश हुआ, विष से युक्त शरीर वाला, पाण्डुनन्दन ठंडी पवन पाकर निश्चेष्ट (सो गया) ॥ २९ ॥

मूल—ततो वासुकिरभ्येत्य नागैरनुगतस्तदा । पश्यातिस्म महाबाहुं भीमं भीमपराक्रमम् ॥ ३० ॥ आर्यकेन च दृष्टः सः पृथायाः प्रार्यकेनच । तदा दौहित्रदौहित्रः परिष्वक्तःसुपीडितम् ३१ ततो भीम स्तदा नागैः कृतस्वस्त्ययनः शुचिः । प्राङ्मुखश्चो पविष्टश्च रसं पिबति पाण्डवः ॥३२॥ ततस्तु शयने दिव्ये नागदत्ते महाभुजः । अशेत भीमसेनस्तु यथासुख मरिन्दमः ॥ ३३ ॥

अर्थ—तब बहुत से नागों के साथ वासुकि (नागों का सरदार) वहां आया, और उसने बडे पराक्रम वाले महाबाहु भीम को देखा ॥३०॥ पृथा के प्रनाना आर्यक(नागराज) ने जब उसे देखा, तो उस दोहते के दोहते को घुटकर गले लगाया*॥३१॥ तब नागों ने शुद्ध हुए पाण्डुपुत्र भीम का स्वस्त्ययन किया, और वह पूर्वाभिमुख बैठकर (नागों से दिया विषहर) रस पीता

* नागजाति के सामन्तों का उपपद वासुकि और सम्राट् का उपपद तक्ष होता था। इसका नाम आर्यक था। आर्यक का दोहता था वसुदेव की शूर,जिसकी कन्या पृथा थी,इसलिये वह पृथा का प्रनाना (पिता का नाना) हुआ, और भीम उसके दोहते का दोहता हुआ।

भया ॥ १२ ॥ तब वह शत्रुओं का दमन करने वाला महाबाहु भीमसेन नागदन्त पर दिव्यशय्या पर लेट गया ॥ १३ ॥

अध्याय७ (व०१२९)भीम का स्वस्थ होकर घर आना

मूल—ततस्ते कौरवाः सर्वे विना भीमं च पाण्डवाः । वृत्त-क्रीडाविहारास्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम् ॥ १ ॥ रथैर्गजै स्तथा चाश्वैर्यानै श्चान्यै रनेकशः । ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यग्रत एव नः ॥ २ ॥ ततो दुर्योधनः पापस्तत्रापश्यन् वृकोदरम् । भ्रातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेशह ॥३॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन् पापमात्मनि । स्वेनानुमानेन परं साधुं समनुपश्यति ॥ ४ ॥ सोऽभ्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः । अभिवाद्याब्रवीत् कुन्तीमम्ब भीम इहागतः ॥ ५ ॥ क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे । उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः॥६

अर्थ—तब वह सारे कौरव और भीम के विना पाण्डव क्रीड़ा का बहलाव समाप्त करके रथ, हाथी, घोड़ों और दूसरे अनेक प्रकार के यानों से हस्तिनापुर को रवाना हुए, यह कहते हुए, कि भीमसेन हमारे आगे चला गया है ॥ १ ॥ २ ॥ दुर्योधन उनमें भीम को न देखता हुआ प्रसन्न हुआ भाइयों समेत नगर में प्रविष्ट हुआ ॥३॥ धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने अन्दर पाप न पाता हुआ अपने अनुमान से दूसरे को भी भला समझता है ॥ ४ ॥ सो भाइयों को प्यार करने वाला वह पृथापुत्र माता कुन्ती के पास आया, और अभिवादन करके बोला, माता जी यहां भीम आगया है । ॥ ५ ॥ वह कहां गया है हे शुभे उसको यहां नहीं देखता हूं । वहां तो मैं उद्यान और बन सभी ढूंढ आया हूं ॥ ६ ॥

मूल—इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता। हा हेति कृत्वा संभ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥ न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति। शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता। क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ क्व गतो भगवन् क्षत्तः! भीमसेनो न दृश्यते। उद्यानान्निर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह ॥ १० ॥ तत्रैकस्तु महाबाहु भीमो नाभ्येति मामिह। नच प्रसादयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः ॥ ११ ॥ क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धो ऽनपत्रपः। तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥ १२ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् धर्मराज से ऐसे कही कुन्ती घबराई हुई हाहा कर युधिष्ठिर से बोली ॥ ७ ॥ पुत्र मैंने भीम को नहीं देखा, वह मेरे पास नहीं आया, छोटे भाइयों को साथ लेकर जल्दी उस के ढूंढने का यत्न कर ॥ ८ ॥ बड़े पुत्र को यह कह कर फिर क्षत्ता (विदुर) को बुलवा कर जलते हुए हृदय से कुन्ती यह वचन बोली ॥ ९ ॥ पूज्य क्षत्तः! भीम सेन कहां चला गया, दीखता नहीं है, उद्यान से सारे भाई भाइयों सहित निकल आए हैं ॥ १० ॥ उन में अकेला महा-बाहु भीम मेरे पास नहीं आया है, दुर्योधन की आंख को वह सदा नहीं भाता था ॥ ११ ॥ और वह क्रूर, दुर्मति, क्षुद्र, राज्य का लालची और निर्लज्ज है, इस से मेरा चित्त व्याकुल है, और हृदय जल रहा है ॥ १२ ॥

मूल—विदुर उवाच-मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणंकुरु। आगमिष्यति ते पुत्रः प्रीतिं चोत्पादयिष्यति ॥ १३ ॥ एव-

मुक्त्वा ययौ विद्वान् विदुरः स्वं निवेशनम् । कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहासीना सुतैर्गृहे ॥ १४ ॥

अर्थ—विदुर बोला-ऐसा मत कहो हे कल्याणि ! दूसरों की रक्षा कर, तेरा पुत्र आजाएगा और खुशी उत्पन्न करेगा ॥ १३ ॥ यह कह कर विद्वान् विदुर अपने घर आया, और कुन्ती पुत्रों समेत चिन्ता मग्न हुई घर में बैठी ॥ १४ ॥

मूल—ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यबुध्यत पाण्डवः । तस्मिंस्तदा रसे जीर्णे सोऽप्रमेयबलो बली ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्तं पाण्डवं ते भुजंगमाः । सान्त्वयामासुरव्यग्रा वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १६ ॥ गच्छाद्य त्वं च स्वगृहं स्नातो दिव्यैरिमै र्जलैः । भ्रातरस्ते ऽनुतप्यन्ति त्वां विना कुरुपुंगव ॥ १७ ॥ ततः स्नातो महाबाहुः शुचिः शुक्लाम्बरस्रजः ॥ १८ ॥ ओष धीभिर्विषघ्नीभिः सुरभीभि र्विशेषतः । भुक्तवान् परमान्नं च नागैर्दत्तं महाबलः ॥ १९ ॥

अर्थ—उधर आठवें दिन उस रस के जीर्ण होने पर बली भीमसेन बड़ा बली होकर उठा ॥ १५ ॥ उस भीम को उठा हुआ देखकर उन नागों ने स्वस्थ हो उस को तसल्ली दी और यह वचन कहा ॥ १६ ॥ आज तू इन दिव्य जलों से स्नान कर के घर जा, हे कुरुश्रेष्ठ तेरे भाई तेरे लिये संतप्त हो रहे हैं ॥ १७ ॥ तब वह महाबाहु स्नान कर शुद्ध हुआ, श्वेत वस्त्र और माला पहन कर ॥ १८ ॥ वह महाबली विष-नाशक ओषधियों के साथ परम अन्न खाता भया, जो उसे नागों ने दिया ॥ १९ ॥

मूल—तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः । आजगाम

महाबाहु मातुरन्तिक मञ्जसा ॥ २० ॥ ततो ऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातर मेव च । कनीयसःसमाघ्राय शिरः स्वारिविमर्दनः२१ तैश्चापि संपरिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभः । अन्योऽन्यगतसौहार्दाद् दिष्टया दिष्टयेतिचाब्रुवन् । तत स्तत्सर्व माचष्ट दुर्योधन विचेष्टितम् ॥ २३ ॥

अर्थ—तव महावली महावाहु कुन्तीपुत्र भीम उठकर वहां से सीधा माता के पास आया ॥ २० ॥ माता को और बड़े भाई को अभिवादन करके, और छोटों का माथा चूम कर, वह शत्रुमर्दन, माता से और भाइयों से गले लगाया गया, परस्पर के सौहार्द से वह सब भाग्य से (मिले हैं) भाग्य से, ऐसा कहते भए ॥२२॥ और भीमने वह दुर्योधन की चेष्टा वतलाई ॥२३॥

मूल—ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत् । तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथञ्चन ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहु र्धर्मराजो युधिष्ठिरः । भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्त स्तदा ऽभवत ॥ २५ ॥ कुमारान् क्रीडमानांस्तान् दृष्ट्वा राजा ऽतिदुर्मदान् । गुरुं शिक्षार्थ मन्विष्य गौतमं तान् न्यवेदयत ॥२६॥ अधिजग्मुश्च कुरवो धनुर्वेदं कृपात्तु ते ॥ २७ ॥

अर्थ—तव राजा युधिष्ठर ने भीम को सप्रयोजन वचन कहा, चुप रहना, यह वात किसी प्रकार नहीं कहनी ॥ २४ ॥ ऐसा कह कर महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर (आगे के लिये) भाइयों समेत सावधान हो गया ॥ २५ ॥ राजा (धृतराष्ट्र) उन अतिदुर्मद कुमारों को खेलों में लगे देखकर शिक्षा के लिये ढूंढ कर गौतम गोत्री (कृपा चार्य) गुरु के सुपर्द किया ॥२६॥ सो

कृप*से वह कुरुवंशी धनुर्वेद सीखते भए ॥ २७ ॥

---

* हस्तिनापुर के निकट गंगा तट के वनों में गौतमगोत्र का एक शरद्वान् नाम ब्राह्मण रहता था, इस की रुचि शास्त्रास्त्रविद्या के सीखने में बड़ी प्रबल थी। जैसे और ब्रह्मचारी तपस्वी बन वेद के मर्मज्ञ हुए, वैसे यह ब्रह्मचारी तपस्वी बन धनुर्वेद का मर्मज्ञ हुआ। जानपदी देवकन्या से इसका एक पुत्र और एक पुत्री हुई, पुत्र का नाम कृप, और पुत्री का कृपी रक्खा। बालपन में यह दोनों बहिन भाई हाथ में धनुषबाण लिये निडर हो वन में पिता के आश्रम के निकट घूमते फिरते थे। एक बार राजा शन्तनु के एक शिकारी ने इन दोनों को देखा, और वह इन छोटे धनुर्धारी निडर बच्चों को राजा के पास ले आया, राजा ने इनके पिता की अनुमति से इन दोनों को अपने घर पाला। इन में से बालक कृप धनुर्विद्या में बड़ा निपुण हो गया, और कृपाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस से कौरव, पाण्डव, यादव, वृष्णि और कई और राजपुत्रों ने धनुर्वेद सीखा, कृपाचार्य ने अपनी बहिन कृपी का विवाह धनुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य द्रोण से किया।

अंगिरा ऋषि धनुर्वेद के आचार्य थे, उन की वंश परम्परा में यह शिक्षा बड़े से छोटे के पास बराबर चली आती थी। इसी वंश में द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए थे। द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज भी धनुर्वेद के आचार्य थे। उत्तरपञ्चालों के राजा पृषत से भरद्वाज की मैत्री थी, पृषत का पुत्र द्रुपद था, जो द्रोण का समवयस्क था। द्रोण और द्रुपद एक आश्रम में इकट्ठे खेले और पढ़े थे और दोनों सखा थे। पृषत के मरने पर द्रुपद सिंहासन पर बैठा। भरद्वाज का भी परलोकगमन हुआ। द्रोण उसी आश्रम में रहा, और वहीं कृपी से इस का विवाह हुआ द्रोण का कृपी से अश्वत्थामा पुत्र हुआ॥

द्रोण नें वेद वेदांग अपने पिता भरद्वाज से पढ़े, और धनुर्वेद भरद्वाज और भरद्वाज के शिष्य अग्निवेश से सीखा. महाभारत १।१३० में यह कथा भी है कि द्रोणाचार्य ने सुना, कि परशुराम इस समय ब्राह्मणों को अपना सारा धन दे रहे हैं, द्रोणाचार्य भी अपने शिष्यों समेत महेन्द्र पर्वत पर परशुराम के पास गए। अपना गोत्र

अ० ८ (व० १३१) द्रोणाचार्य का कुंएं से गेंद निकालना ।

मूल—ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् । अब्रवीत् पार्थिवं राजन् सखायं विद्धि मामिह ॥ १ ॥ इत्येवमुक्तः सख्या स प्रीतिपूर्वं जनेश्वरः । भारद्वाजेन पाञ्चाल्यो नामृष्यत वचोऽस्य तत् ॥ २ ॥ सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूः कषायी कृतलोचनः । ऐश्वर्यमदसम्पन्नो द्रोणं राजा ऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उस समय भरद्वाज का प्रतापी पुत्र (द्रोणाचार्य) द्रुपद के पास आकर राजा से बोला, हे राजन् ! मुझ यहां अपना सखा जान ॥१॥ इस प्रकार सखा द्रोण ने जब प्रेमपूर्वक पञ्चालों के राजा को ऐसे कहा, तो वह उस के इस वचन को न सहारता भया ॥ २ ॥ क्रोध और अमर्ष से भवें टेढ़ी कर, और नेत्र लाल करके, ऐश्वर्य के मद से युक्त वह राजा द्रोण से यह बोला ॥ ३ ॥

मूल—अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन् नातिसमञ्जसा । यन्मां ब्रवीषि प्रसभं सखा ते ऽहमिति द्विज ॥४॥ + न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा । न शूरस्य सखा क्लीवः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ५ ॥ + ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।

और नाम बतला कर कहा, कि आप ब्राह्मणों को धन दे रहे हैं, यह सुन मैं आप से बहुत बड़ा धन लेने आया हूं । परशुराम ने कहा हे तपोधन ! और धन तो मैंने सारा दे दिया है, अब मेरे पास मेरा शरीर और मेरे शस्त्र अस्त्र हैं, इन दोनों में से जो चाहो मांग लो । द्रोणाचार्य जो बड़ा धन मांगने आया था, उसका वचन उसको मिलगया । सो झट उसने कहा, भगवन् मुझे यही धन चाहिये, सारे शस्त्र अस्त्र उन के प्रयोग, संहार, रहस्य मुझे दीजिये, तब परशुराम ने समग्र धनुर्वेद उसे सिखाया ॥

तयोर्विवाहः सख्यं च नतु पुष्टविपुष्टयोः ॥ ६ ॥ † नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा । नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! यह तेरी बुद्धि संवरी हुई नहीं, ठीक नहीं, जो तू हे द्विज ! धक्के से मुझे सखा कहता है ॥ ४ ॥ न कंगाल धनाढ्य का सखा होता है, न अविद्वान् विद्वान् का । न कायर शूरवीर का सखा होता है, पुरानी हुई मैत्री अब क्या ढूंढी जाती है ॥ ५ ॥ जिन का धन बराबर है, जिन की विद्या बराबर है, उन्हीं का विवाह और मैत्री होती है, न कि पुष्ट और दुर्बल की ॥ ६ ॥ न मूर्ख वेदवक्ता का, न अरथी रथी का, न अराजा राजा का सखा होता है, पुरानी मैत्री अब क्या ढूंढी जाती है ॥ ७ ॥

मूल—द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान् । मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु मन्युना ऽभिपरिप्लुतः ॥ ८ ॥ स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चालं प्रति बुद्धिमान् । जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ ९ ॥ स नागपुरमागम्य गौतमस्य निवेशने । भारद्वाजो ऽवसत् तत्र प्रच्छन्नं द्विजसत्तमः ॥ १० ॥ ततो ऽस्य तनुजः पार्थान् कृपस्यानन्तरं प्रभुः । अस्त्राणि शिक्षयामास नाबुध्यन्त च तं जनाः ॥ ११ ॥ एवं स तत्र गूढात्मा कञ्चित्कालमुवासह ॥ १२ ॥

अर्थ—द्रुपद से ऐसे कहा हुआ प्रतापी द्रोण क्रोध से भरकर थोड़ी देर सोच में पड़ कर ॥ ८ ॥ वह बुद्धिमान् पञ्चालराज के लिये मन में (कोई) निश्चय कर के कुरुश्रेष्ठों के हास्तिनापुर नगर को चला गया ॥ ९ ॥ हास्तिनापुर में

आकर द्विजश्रेष्ठ द्रोण गुप्त वहां कृपाचार्य के घर में रहा ॥ १० ॥ वहां इस का समर्थ पुत्र (अश्वत्थामा) कृपाचार्य के पीछे पाण्डवों को अस्त्र सिखलाता था, पर लोग उसे (द्रोणाचार्य का पुत्र) नहीं जानते थे ॥ ११ ॥ इस प्रकार वह वहां गुप चुप कुछ काल रहा ॥ १२ ॥

मूल—कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात् । क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन् मुदा ॥ १३ ॥ पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा । ततस्ते यत्नमातिष्ठन् वीटा मुद्धर्तुमादृताः ॥ १४ ॥ नच ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये । ततो ऽन्यो ऽन्यमवैक्षन्त व्रीडयावनताननाः ॥ १५ ॥

अर्थ—अब (एक दिन) राजकुमार मिल कर हस्तिनापुर से बाहर निकल वीटा * के साथ खेलते हुए आनन्द से फिर रहे थे ॥ १३ ॥ उन के खेलते हुए वह वीटा कुंएं में गिर पड़ी, तब वह बड़े आदर से वीटा निकालने का यत्न करने लगे ॥ १४ ॥ पर वीटा को पाने का उपाय न जान सके, तब लज्जा से मुंह नीचे किये एक दूसरे की ओर देखते भए ॥ १५ ॥

मूल—अथ द्रोणः कुमारांस्तान् दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा । प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १६ ॥ वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम् । उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा कुमारांस्तान् द्रोणः स्वांगुलिवेष्टनम् । कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिन्दमः ॥ १८ ॥

अर्थ—तब वीर्यवान् द्रोण ने उन कार्यार्थी कुमारों

---

* गुल्ली वा लोह की गेंद ।

को देखा, और नर्मी से मन्द २ मुसकराकर बोला ॥ १६ ॥ मैं बींटा और अंगूठी इन दोनों को बाणों से निकाल सक्ता हूं, मुझे भोजन दीजिये ॥ १७ ॥ उन कुमारों को ऐसा कह कर शत्रुदमन द्रोण ने जल से शून्य उस कुंएं में अपनी मुन्दरी गिरा दी ॥ १८ ॥

मूल—ततोऽब्रवीत तदा द्रोणं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । कृपस्यानुमते ब्रह्मन् भिक्षामाप्नुहि शाश्वतीम् ॥ १९ ॥ एव मुक्तः मत्युवाच महस्य भरतानिदम् । भेत्स्यामीषीकया वींटां तामिषीकां तथाऽन्यया ॥ २० ॥ तामन्यया समायोगे वींटाया ग्रहणं मम । ततोयथोक्तं द्रोणेन तत्र सर्वं कृतमञ्जसा ॥२१॥

अर्थ—तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर द्रोण से बोला, हे ब्रह्मन् कृपाचार्य की अनुमति में सदा की भिक्षा प्राप्त कर * ॥ १९ ॥ ऐसे कहा हुआ वह हंसकर उन भरतों से यह बोला, मैं बाण से बींटा को फोडूंगा, फिर उस बाण को और बाण से ॥ २० ॥ उस को फिर और से, इस मेल में बींटा मेरे हाथ आएगी, तब जैसा कहा था, द्रोण ने ठीक वैसा कर दिखलाया ॥ २१ ॥

मूल—तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः । आश्चर्यमिदमत्यन्त मिति मत्वा वचोऽब्रुवन् ॥ २२ ॥ मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्र मेतां समुद्धर ॥ २३ ॥ ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः । शरेण विध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत प्रभुः ॥ २४ ॥ सशरं समुपादाय कूपादंगुलिवेष्टनम् । ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः ॥ २५ ॥

* अर्थात् ऐसा कौशल दिखलाने पर हमारे गुरु कृपाचार्य की अनुमति में आप को सदा की जीविका मिल जाएगी ।

अर्थ—यह देख कर विस्मय से उन कुमारों के नेत्र खिल गए, यह बड़ा आश्चर्य है, ऐसा मान कर वह यह वचन बोले ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! इस मुन्दरी को भी शीघ्र निकालो ॥ २३ ॥ तब महायशस्वी प्रभुः द्रोण ने धनुष बाण लिया, और बाण से बींध कर उस मुन्दरी को ऊपर उठा लिया ॥ २४ ॥ कुंए से बाण समेत मुन्दरी को लेकर स्वयं न विस्मित हुआ विस्मित हुए उन कुमारों को देता भया ॥ २५ ॥

मूल—मुद्रिकामुद्धृतां दृष्ट्वा तमाहुस्ते कुमारकाः । अभिवादयाम हे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते ॥ २६ ॥ कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे । एवमुक्तस्ततो द्रोणः प्रत्युवाच कुमारकान् ॥ २७ ॥ आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्चमां । स एव सुमहातेजाः साम्प्रतं प्रतिपत्स्यते ॥ २८ ॥ तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्म मूचुः कुमारकाः । ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म तथाविधम् ॥ २९ ॥

अर्थ—मुन्दरी को निकला देख कर कुमार उसे कहने लगे, हे ब्रह्मन् ! हम आपको अभिवादन करते हैं, यह (बात) औरों में नहीं है ॥ २६ ॥ आप कौन हैं, किस के हैं, (यह आप की कृपा से) हम जानें (और आज्ञा दीजिये) हम क्या करें । ऐसे कहा हुआ द्रोण उन कुमारों से बोला ॥ २७ ॥ रूप (आकृति) और गुणों से भीष्म को मेरा पता दो, वही महातेजस्वी समुचित निश्चय करेगा ॥ २८ ॥ तथास्तु कह कर जाकर कुमारों ने भीष्म को ब्राह्मण का वह सच्चा वचन और वह वैसा कर्म बतलाया ॥ २९ ॥

अ० ९ (व० १३१) द्रोणाचार्य से शस्त्र अस्त्र सीखना

मूल—भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत ॥ १ ॥

शुक्ररूपः सहि गुरु रित्येवमनुचिन्त्य च । अथैनमानीय तदा-
स्वयमेव सुसत्कृतम् ॥ २ ॥ परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्र-
भृतां वरः । हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥३॥

अर्थ—कुमारों (की बात) को सुन कर भीष्म ने उसे द्रोण जाना॥१॥और यह सोचकर कि वह बड़ा योग्य गुरु है,स्वयं उसके पास गया,बड़े आदर के साथ उसे लाकर॥२॥शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म पधारने में कारण पूछते भए, और तब द्रोण वह सब यों बतलाते भए ॥ ३ ॥

मूल—महर्षेरग्निवेशस्य सकाश महमच्युत । अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदचिकीर्षया ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः । अवसं सुचिरं तत्र गुरुशुश्रूषणे रतः ॥ ५ ॥ पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबलः । इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत् तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः॥६॥ स मे सखा सदा तत्र प्रियवादी प्रियंकरः। अब्रवीदिति मां भीष्म वचनं प्रीतिवर्धनम् ॥ ७ ॥

अर्थ—हे अच्युत (न फिसलने वाले) मैं पहिले धनुर्वेदकी तय्यारी की इच्छा से अस्त्रों के अर्थ महर्षि अग्निवेश के पासगया॥४ वहां मैं गुरुसेवा में रत हुआ ब्रह्मचारी, विनययुक्त, जटाधारे हुए बहुत बरस रहा ॥ ५ ॥ पञ्चालों का राजकुमार महाबली यज्ञसेन (द्रुपद) भी धनुष बाण के हेतु उसी गुरु के निकट रहा ॥६॥वह सदा प्रिय बोलने वाला और प्रिय करने वाला मेरा सखा प्रीति के बढ़ाने वाला यह वचन मुझ से बोला ॥ ७ ॥

मूल—अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः । अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पांचाल्यो यदा तदा ॥८॥ मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च । एवमुक्त्वाऽथवव्राज कृतास्त्रः पूजितो मया ॥९॥

अर्थ—हे द्रोण मैं महात्मा पिता का प्रियपुत्र हूं, सो जब वह पांचालों का राजा राज्य में मेरा अभिषेक करेगा, तब ॥ ८ ॥ मेरे भोग, ऐश्वर्य और सुख तेरे अधीन होंगे, यह कह कर वह अस्त्र में निपुण हुआ मुझ से पूजित हुआ चला गया ॥९॥

मूल—सोऽहं पितृनियोगेन पुत्रलोभाद् यशस्विनीम् । नातिकेशीं महाप्रज्ञा मुपयेमे महाव्रताम् ॥ १० ॥ अग्निहोत्रेच सत्रे च दमे च सततं रताम्॥११॥अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामान-मौरसम् । पुत्रेण तेन प्रीतोऽहं भरद्वाजो मया यथा ॥ १२ ॥

अर्थ—मैंने बड़ों की आज्ञा से पुत्रकामना से न अतिकेशों वाली, यशवाली, बड़ी प्रज्ञावाली, महान् व्रतोंवाली, अग्नि होत्र, यज्ञ और दमन में सदा रत हुई स्त्री से विवाह किया ॥ १०,११ ॥ उस गौतमी (गोतमवंशजा कन्या) ने मुझ से अश्वथात्मा औरस पुत्र पाया, उस पुत्र से मैं ऐसा प्रसन्न हुआ, जैसे मुझ से भरद्वाज ॥ १२ ॥

मूल—गोक्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिन स्तत्र पुत्रकान् । अश्व-त्थामा ऽरुदद्बालस्तन्मे संदेहयद्दिशः ।१३॥ न स्नातकोऽवसी-देत वर्तमानः स्वकर्मसु । इति संचिन्त्य मनसा तं देशं बहुशोभ्रमम् ॥१४॥ विशुद्धमिच्छन् गांगेय धर्मोपेतं प्रतिग्रहम् । अन्तादन्तं परि-क्रम्य नाभ्यगच्छं पयस्विनीम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वहां एकवार धनी के पुत्रों को गौका दूध पीता देखकर बालक अश्वत्थामा रोया, इसने मुझे दिशाएं भुलादीं ॥ १३ ॥ 'अपने कर्मोंमें वर्तमान स्नातक तंग न हो' यह (धर्म वचन) मनसे सोचकर उस देशमें मैं बहुत घूमा ॥ १४ ॥ इस लिये हे भीष्म !

धर्मयुक्त यह दान चाहता हुआ मैं एक स्थान से दूसरे स्थान गया, पर मुझे गौ न मिली ॥ १५ ॥

मूल—अथपिष्टोदकेनैनं लोभयन्ति कुमारकाः। पीत्वा पिष्ट-रसं बालः क्षीरं पीतं मयाऽपिच ॥१६ ॥ ननर्तोत्थायकौरव्य हृष्टो-बाल्याद् विमोहितः। तं दृष्ट्वा नृत्यमानं तु बालैः परिवृतं सुतम् ॥१७॥ हास्यतामुपसंप्राप्तं कश्मलं तत्र मेऽभवत्। आत्मानं चात्म-ना गर्हन् मनसेदं व्यचिन्तयम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अब छोटे लड़कों ने उसे आटे के पानी से लुभाया। आटे का पानी पीकर वह बाल" मैंने भी दूध पिया है"॥१६॥ इस प्रकार बालकपन से भूलाहुआ वह, हे कौरव उठकर नाचने लगा। उस पुत्रको नाचता हुआ, बालकों से घिरा हुआ, उपहास को प्राप्त हुआ, देखकर मुझे व्यामोह छा गया, और स्वयं अपने को निन्दते हुए मैंने यह सोचा ॥ ७,१८ ॥

मूल—अहं चापि पुरा विप्रैर्वर्जितो गर्हितो वसे। परोपसेवां पापिष्ठां नच कुर्यां धनेप्सया ॥ १९॥ इति मत्वा प्रियं पुत्रं भीष्मा-दाय ततोह्यहम्। पूर्वस्नेहानुरागित्वात् सदारः सौमकिं गतः ॥२० प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं समुपागमम्। संस्मरन् संगमं चैव वचनं चैव तस्य तव ॥ २१ ॥

अर्थ—भले ही मैं ब्राह्मणों से त्यागा हुआ निन्दा हुआ रहूंगा, पर धन के लालच से, अत्यन्त दुष्ट परसेवा नहीं करूंगा ॥ १९ ॥ ऐसा निश्चय कर हे भीष्म! मैं प्यारे पुत्र को लेकर पुराने प्रेम के अनुरागवश से पत्नी समेत द्रुपद (सोमक वंशी) के पास गया ॥२०॥ उसके संगम और उसके उस पहले वचन को स्मरण करता हुआ बड़ा प्रसन्नहुआ मैं राज्य पर स्थित प्यारे सखा के पास आया ॥ २१ ॥

मूल—ततो द्रुपद मागम्य सखिवच्चाऽस्मि संगतः। स मां निरा कारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत ॥ २२ ॥ अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन् नातिसमञ्जसा। यदात्थ मां त्वं प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ २३ ॥ + न सख्य मजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित। कालो वैनं विहरति क्रोधो वैनं रहत्युत ॥ २४॥ आसीत् सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थ निबन्धनम् ॥२५॥ + न ह्यनाढ्यः सखाऽऽढ्यस्य नाविद्वान् विदुषः सखा। न शूरस्य सखा क्लीवः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ २६ ॥ + नाश्रोत्रयः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा। नाराजा पार्थिव-स्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ २७ ॥

अर्थ—तब द्रुपद के निकट हो मैं मित्र की न्याईं उससे मिला, पर वह मुझे तुच्छ सा जान हंसता हुआ यह बोला॥२२॥ हे ब्रह्मन् यह तेरी बुद्धि संवरी हुई नहीं, ठीक नहीं, जो तू हे द्विज, मुझे धक्के से कहता है, मैं तेरा सखा हूं ॥ २३ ॥ इस लोक में किसी की मित्रता अजर कभी नहीं होती, समय इस को हटा देता है, वा क्रोध इसे छुड़ा देता है, ॥ २४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तेरे साथ मेरी मैत्री उस समय प्रयोजनवश थी (वह अब)जाती रही, ॥ २५ ॥ न कंगाल धनाढ्य का सखा होता है, न अविद्वान् विद्वान् का, न कायर शूरबीर का सखा होता है, पुरानी हुई मैत्री अब क्या ढूंढी जाती है ॥ २६ ॥ न मूर्ख वेदवक्ता का, न अरथी रथी का, न अराजा राजा का सखा होता है, पुरानी हुई मैत्री अब क्या ढूंढी जाती है ॥ २७ ॥

मूल—एवमुक्तस्त्वहं तेन सदारः प्रस्थितस्तदा। तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय यां कर्ताऽस्म्यचिरादिव ॥ २८ ॥ अभ्यागच्छं कुरून् भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः। इदं नागपुरं रम्यं ब्रूहि किं करवाणिते

अर्थ—उससे ऐसे कहा हुआ मैं स्त्रीसमेत वहां से चल पड़ा, वह प्रतिज्ञा करके, जिस को कि मैं जल्दी पूरा करूंगा ॥ २८ ॥ हे भीष्म! अब मैं गुणी शिष्यों से अर्थी हुआ कुरुओं के पास इस रमणीय हस्तिनापुर में आया हूं, कहो आपका क्या करूं ॥२९॥

मूल भीष्म उवाच—अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय। भुङ्क्ष्व भोगान् भृशं प्रीतःपूज्यमानः कुरुक्षये ॥३०॥कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम्। त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥ ३१ ॥यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन् कृतं तदिति चिन्त्यताम्। दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान् मेऽनुग्रहःकृतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—भीष्म बोले—धनुष का चिल्ला उतारिये, और भली भांति (हमारे कुमारों को) अस्त्र सिखलाइये, और कुरुओं के घर में पूजित हुए अत्यन्त प्रसन्न हो भोगों को भोगिये ॥३०॥ कुरुओं का जो धन और देशसमेत राज्य है, (उस सारे के) आप असली राजा हैं, कुरु सारे आपके हैं ॥३१॥ और हे ब्रह्मन्! जो आपका अभीष्ट है, उसे किया ही समझिये, हे ब्रह्मर्षे! आप भाग्य से प्राप्त हुए हैं, मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है ।३२।

अध्याय१० (व०१३२) द्रोणाचार्य्य से शस्त्रास्त्र शिक्षा

मूल—विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन् पौत्रानादाय कौरवान्। शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च ॥ १ ॥ सतान् शिष्यान् महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान्। पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥ २ ॥ प्रतिगृह्य च तान् सर्वान् द्रोणो वचन मब्रवीत्। रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा ॥ ३ ॥

कार्यं मे काङ्क्षितं किञ्चिद्धृदि संपरिवर्तते । कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं मे तदेतद्वदता ऽनघाः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन् विशांपते । अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परंतप ॥ ५ ॥

अर्थ—अब उस गुरु के टिकजाने पर भीष्म ने अपने पोते कौरवों को लाकर शिष्यरूप से उसे सौंपा और बहुत से धनादिये ॥ १ ॥ प्रसन्न मन हुए उस बड़े धनुर्धारी द्रोणने उन कौरवों को जो पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्र हैं—शिष्य स्वीकार किया ॥ २ ॥ उन सब को स्वीकार कर के विश्वस्तमन द्रोण एकान्त में अकेला उनसे यह वचन बोला, जब कि उन्हों ने (शिक्षा के लिये) उस के पाद ग्रहण किये ॥ ३ ॥ एक अभीष्ट कार्य मेरे हृदय में घूमरहा है, जब तुम अस्त्रो में सिद्धहस्त होजाओ, तो वह मुझे (दक्षिणा) देना होगा, यह (स्पष्ट) कहो, हे निष्पाप शिष्यो ॥४॥ हे राजन् ! यह सुनकर और सब कौरव चुप रहे, पर हे परंतप ! अर्जुन ने स्वीकार किया ॥ ५ ॥

मूल—ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च । ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ॥ ६ ॥ राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ । अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥ ७ ॥ वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः। सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात् तदा ॥ ८ ॥

अर्थ—तब शक्तिमान् द्रोण ने पाण्डु पुत्रों को अनेक प्रकार के दिव्य और मानुष अस्त्र सिखलाए ॥ ६ ॥ तथा और भी बहुत से राजपुत्र मिल कर हे भरतश्रेष्ठ ! उस ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोण की शरण आए ॥ ७ ॥ वृष्णिवंश के, अन्धक वंश के,और भिन्न

२ देशों के राजे, तथा राधा का पुत्र सूतपुत्र (कर्ण) गुरु द्रोण के पास आया ॥ ८ ॥

मूल–तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च । सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाभ्याधिकोऽर्जुनः ॥ ९ ॥ अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद् गुरुपूजने । अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत् ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्त मिष्वस्त्रं प्रति फाल्गुनम् । आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत ॥ ११ ॥ अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कदाचन । न चाख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया ॥१२॥

अर्थ–अस्त्रों का प्रयोग (सब का) एक जैसा होने पर भी, शीघ्रता में और ठीक निशाना मारने में, अर्जुन सारे ही शिष्यों से बहुत बढ़ गया ॥ ९ ॥ अर्जुन गुरुपूजन में पूरा यत्न करता, और अस्त्रविद्या में सब से बढ़कर उद्योग करता, इस से वह द्रोण का (और भी) प्यारा बनगया ॥ १० ॥ अर्जुन को धनुषबाण के लिये सदा उद्योगी देख कर, आचार्य ने रसोइये को अलग बुला कर यह वचन कहा॥११॥अर्जुन को अन्धेरे में तूने कभी भोजन न देना । और न यह कहना, कि यह बात मैंने कही है *॥१२॥

* अर्जुन को अन्धेरे में भोजन न देना, यह कह कर, कि अन्धेरे में ग्रास मुंह से चूक कर कहीं अन्यत्र न जापड़े, जब वह कहे कि अति अभ्यास के हेतु ऐसा कभी नहीं हो सकता, तो फिर यह कहना कि अति अभ्यास के कारण ग्रास जैसे मुख से अन्यत्र नहीं पड़ते, इसी प्रकार अति अभ्यास से अन्धेरे में अस्त्र भी शब्दादि लक्ष्य से नहीं चूकते । इस पर अर्जुन यदि पूछे, कि किसने तुझे ऐसे कहा है, तो यह न कहना, कि द्रोण ने कहा है, किन्तु यह कहना, यह तो लोक प्रसिद्ध बात है ।

मूल–ततः कदाचिद् भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने । तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः ॥ १३ ॥ भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते । हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहण कारणात्॥१४ तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः । योग्यां चक्रे महाबाहु धनुषा पाण्डुनन्दनः ॥ १५ ॥ तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत । उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येद मब्रवीत् ॥१६ ॥ प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः । त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १७॥

अर्थ–तब कभी अर्जुन के भोजन करते हुए वायु वेग से चली, उस से वहां का जलता हुआ दीपक बुझ गया ॥ १३ ॥ पर अर्जुन भोजन करता रहा, अभ्यास के कारण उस तेजस्वी का हाथ मुंह से अन्यत्र नहीं होता है ॥ १४ ॥ इस को अभ्यास का फल मान कर वह महाबाहु पाण्डुपुत्र रात में भी अस्त्रों का अभ्यास करने लगा॥१५॥उस के चिल्ले की ध्वनि द्रोण ने सुनी, और हे भारत ! उठ कर उस के पास आकर गले लगाकर उसे यह कहा॥१६॥ ऐसा करने का पूरा यत्न करूंगा, कि जिस से लोक में तेरे बराबर धनुर्धारी न होगा, यह तुझे सत्य कहता हूं॥१७

मूल–ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च । रथेषु भूमावपि च रणशिक्षा मशिक्षयत्॥१८॥गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रास शक्तिषु । द्रोणः संकीर्णयुद्धे च शिक्षायामास कौरवान् ॥१९॥ तस्य तत्कौशलं श्रुत्वा धनुर्वेदजिघृक्षवः । राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥२०॥

अर्थ–तब द्रोण ने फिर नए सिरे अर्जुन को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़कर वा पैदल होकर युद्ध करने की विशेष शिक्षा दी॥१८

गदायुद्ध में, तलवार की सारी चालों में, गंडासे भाले, और बर्छियों के युद्ध में, और संकीर्णयुद्ध (सब प्रकार के अस्त्रों का एक साथ, प्रयोग वा एक का बहुतों के साथ युद्ध) में द्रोण ने कौरवों को ताक कर दिया ॥१९॥ उसके इस कौशल को सुनकर धनुर्वेद के ग्रहण की इच्छा वाले सहस्रों राजे और राजपुत्र आ इकट्ठे हुए ॥२०॥

मूल—ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः। एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगामह ॥२१॥न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन्। शिष्यं धनुषि धर्मज्ञो स तेषामेवान्ववेक्षया॥२२॥ सतु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः। अरण्यमनु संप्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥२३॥तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा। इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियम मास्थितः ॥२४॥ परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च। विमोक्षादानं संधानं लघुत्वं परमापसः॥२५

अर्थ—तब हे महाराज! भीलराज हिरण्यधनुष का पुत्र एकलव्य द्रोण के पास आया ॥ १२ ॥ (राजपुत्रों की) मर्यादा के जानने वाले उस (द्रोण) ने भीलपुत्र जान उन की ही अपेक्षा से * धनुर्वेद में उसको शिष्य स्वीकार न किया ॥२१॥ वह परंतप द्रोण के पाओं पर सिर रख कर, वन में चला गया, वहां उसने

* "उन्हीं की अपेक्षासे' पाण्डवों से अधिक न हो जाए इस अभिप्रायसे (नील कण्ठ) उनकी ही, इस 'ही' का बल इस बातपर है, कि द्रोणको उसके लेने में संकोच न था ,किन्तु किसी कारण से मर्यादा उस समय राजकुमारों में भीलकुमारों के न प्रविष्ट होने की थी ॥

मट्टी का द्रोण बनाया ॥ २३ ॥ उसमें पूरी आचार्यदृष्टि रख कर पूरे नियमों के साथ धनुषबाण में उद्योग करने लगा ॥ २४ ॥ परम श्रद्धा और पूरे उद्योग से युक्त हुआ वह (बाणोंके) छोडने पकडने, जोडने, में चोटी का लाघव (तेज़ी) पागया ॥ २५॥

मूल–अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित् कुरुपाण्डवाः । रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दन ॥ २६ ॥ तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद् यदृच्छया । राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥ २७ ॥ तेषां विचरतां तत्र तत्तद् कर्म चिकीर्षया । श्वा चरन् स वने मूढो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ २८ ॥ स कृष्णमलदिग्धांगं कृष्णाजिनजटाधरम् । नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषंस्तस्थौ तदन्तिके ॥ २९ ॥ तदा तस्याथ भषतः शुनः सप्त शरान् मुखे । लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद् यथा ॥ ३० ॥

अर्थ–अब (एकदिन) द्रोण से अनुज्ञा दिये सारे कुरुपाण्डव हे शत्रुमर्दन शिकार के लिये रथों से निकले ॥ २६ ॥ वहां उपकरण (फांस आदि) लेकर कोई पुरुष हे राजन्! कुत्ते को साथ लेकर यदृच्छा से पाण्डवों के साथ गया ॥ २७ ॥ उस २ कर्म के करने के इच्छा से जब वह वहां फिर रहे थे, तो वह कुत्ता वन में फिरता हुआ भीलपुत्र की ओर गया ॥ २८ ॥ वह कुत्ता काली मैलसे लिबड़े अगोंवाले काला मृगान और जटाधारे हुए भीलपुत्र को देखकर उसके निकट हो भूंकने लगा ॥२९॥ तब भूंकते हुए उस कुत्ते के मुख में उस (भीलपुत्र) ने अस्त्र में लाघव दिखलाते हुए एक साथ सात बाण छोड़े ॥ ३० ॥

मूल–स तु श्वा शरपूर्णास्यःपाण्डवानाजगामह । तं दृष्ट्वा

पाण्डवा वीरा परं विस्मय मागताः ॥ ३१ ॥ लाघवं शब्दवेधित्वं प्रशशंसुश्च सर्वशः । तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम् ॥ ३२ ॥ ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान् । तथैनं परिपप्रच्छ को भवान् कस्यवेत्युत ॥ ३३ ॥

अर्थ—बाणों से भरे मुंह वाला वह कुत्ता पाण्डवों के पास आया, वीरपाण्डव उसे देखकर बड़े आश्चर्य हुए ॥३१॥ लाघव,और शब्दवेधिता (शब्द पर निशाना मारने)की सब प्रकार प्रशंसा करते भए, तब वह पाण्डव वन में उस वननिवासी को ढूंढते हुए हे राजन् ! लगातार बाण फेंकते हुए को देखते भए, और उसे पूछते भए, आप कौन हैं और किस के हैं ॥ ३२, ३३ ॥

मूल—एकलव्य उवाच—निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम् । द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—एकलव्यबोला—हे वीरो भीलराज हिरण्यधनुषका पुत्र और द्रोण का शिष्य मुझे जानो, मैंने धनुर्वेद में श्रम किया है ॥३४

मूल—ते तमाज्ञाय तत्त्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः । यथावृत्तं वनेसर्वं द्रोणायाचख्युरद्भुतम् ॥ ३५॥ कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेक-लव्य मनुस्मरन् । रहो द्रोणं समासाद्य प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तदाऽहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः । भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ॥ ३७ ॥ अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान् । अन्योऽस्ति भवतः शिष्यो निषादा-धिपतेः सुतः ॥ ३८ ॥

अर्थ—पाण्डवों ने उसको ठीक २ जान कर, वापिस आ, वन में जैसा अद्भुत हुआ था, द्रोण को सुनाया ॥ ३५ ॥ अर्जुन तो हे राजन् एकलव्य का ख्याल करता हुआ एकान्त में द्रोण

के पास जाकर प्रेम से यह बोला ॥३६॥ उस समय आप ने मुझे छाती से लगा कर प्रेमपूर्वक यह वचन कहा था, कि मेरा कोई शिष्य तुझ से बढ़ कर नहीं होगा ॥ ३७॥ तब कैसे मुझ से बढ़ कर और लोक से भी बढ़ कर एक और आप का शिष्य है वह भीलराज का पुत्र ॥ ३८ ॥

मूल–मुहूर्त मिव तं द्रोण श्चिन्तयित्वा विनिश्चयम् । सव्यसाचिन मादाय नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ ३९ ॥ ददर्श मल दिग्धांगं जटिलं चीरवाससम् । एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्त मनिशं शरान् ॥ ४० ॥ एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोण मायान्त मन्तिकात् । अभिगम्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम् ॥ ४१ ॥ पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत् स निषादजः । निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलि रग्रतः ॥ ४२ ॥

अर्थ–द्रोण थोड़ी देर उसको सोच कर, अर्जुन को साथ ले, भील पुत्र की ओर गया ॥ ३९ ॥ (और जाकर) मल से लिबड़े अंगों वाले जटा चीर धारी, धनुष हाथ में लिये लगातार बाण फैंकते हुए एकलव्य को देखा ॥ ४० ॥ एकलव्य द्रोण को पास आया देख कर, पास जा, पाओं पकड़ कर सिरसे पृथिवी की ओर झुका ॥ ४१ ॥ तब वह भीलपुत्र यथाविधि द्रोण को पूज कर अपने आप को शिष्य बतला कर हाथ जोड़ आगे खड़ा हो गया ॥ ४२ ॥

मूल–ततो द्रोणोऽब्रवीद् राजन्नेकलव्यमिदं वचः । यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम ॥ ४३ ॥ एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम् । किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु

मां गुरुः ॥ ४४ ॥ नहि किञ्चिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम । तम-ब्रवीत् त्वया ऽंगुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति ॥ ४५ ॥ एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम् । तथैव हृष्टवदनस्तथैव दीन-मानसः ॥ ४६ ॥ छित्वाऽविचार्य तं प्रादाद् द्रोणायांगुष्ठमा-त्मनः ॥ ४७ ॥ ततः शरं तु नैषादि रंगुलिभिर्व्यकर्षत । न तथा च स शीघ्रोऽभूद् यथा पूर्वं नराधिप ॥ ४८ ॥ ततोऽर्जुनः प्रीत-मना बभूव विगतज्वरः । द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्योऽभिभवि-ताऽर्जुनम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—तब हे राजन् द्रोण एकलव्य से यह वचन बोले, यदि हे वीर तू मेरा शिष्य है, तो मुझे दक्षिणा दे ॥ ४३ ॥ एकलव्य यह सुन प्रसन्न हुआ बोला, क्या दूं हे भगवन् मुझे गुरु आज्ञा देवें ॥ ४४ ॥ हे ब्रह्म वित्तम ! मुझ गुरु को कुछ भी अदेय नहीं है, (तब द्रोण ने) उसे कहा, दायां अंगूठा मुझे दीजिये ॥ ४५ ॥ एकलव्य द्रोण के इस दारुण वचन को भी सुन कर, वैसे ही प्रसन्न वदन और वैसे ही अधीनमन हुआ, बिन विचारे अपना अंगूठा काट कर द्रोण को देता भया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तब भीलपुत्र अंगुलियों से बाण खींचता था, पर वह वैसा शीघ्र कारी न रहा, जैसा कि पहले था, ॥४९॥ तब अर्जुन प्रसन्न मन हुआ, और उसका सन्ताप दूर हुआ, और द्रोण की वाणी सत्य हुई, कि और कोई अर्जुन को मात नहीं करेगा ॥ ४९ ॥

मूल—द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः । दुर्यो-धनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥ ५० ॥ अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत् । तथाऽतिपुरुषानन्यान् त्सारुकौ यमजा-

वुभौ ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिरो रथिश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः। बुद्धि-योगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः ॥ ५२ ॥ प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् । धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नामृष्यन्त परस्परम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—द्रोण के शिष्य दुर्योधन और भीम गदा में योग्य निकले, जिनके मन (युद्ध के लिये) सदा तय्यार थे ॥ ५० ॥ अश्वत्थामा सारे रहस्यों में बढ़कर थे, तथा जोड़े भाई (नकुल, सहदेव) ढाल तलवार में सब से बढ़कर थे ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर राथियों में श्रेष्ठ निकला, किन्तु अर्जुन सब में (श्रेष्ठ निकला) वह बुद्धि, उपाय, बल और उत्साह से सारे अस्त्रों में पक्का होगया ॥ ५२ ॥ धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्र, दल में अधिक भीमसेन और (अस्त्र-) विद्या में निपुण अर्जुन को नहीं सह सकते थे ॥ ५३ ॥

अध्याय ११ (व० १३२, १३३) अर्जुन की अस्त्र परीक्षा

मूल—तांस्तु सर्वान् समानीय सर्वविद्याऽस्त्रशिक्षितान् । द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः ॥ १ ॥ कृत्रिमं भास मारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् । अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्य-भूत मुपादिशत् ॥ २ ॥ शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः । भास मेतं समुद्दिश्य तिष्ठध्वं संधितेषवः ॥ ३ ॥ मद्वाक्य-समकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम् । एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—अब पुरुषश्रेष्ठ द्रोण, (शिष्यों के) प्रहार करने की विद्या को जानना चाहता हुआ, सारी अस्त्र विद्याओं में

शिक्षा पाए हुए उन सारे (शिष्यों) को लाकर—॥१॥ बेमालूम, शिल्पियों से बनवाया हुआ एक कृत्रिमभास (शिकरे) वृक्षकी चोटी पर चढ़ाकर, कुमारों को आज्ञा दी, कि इसको अपना लक्ष्य बनाओ ॥ २ ॥ तुम सब अपने धनुषों को लेकर और बाण जोड़कर इस भास को लक्ष्य करके खड़े होजाओ ॥ ३ ॥ मेरे कहने के साथ ही इसका सिर गिरादो, एक२ को आज्ञा दूंगा, तब वैसे करो हे पुत्रो ॥ ४ ॥

मूल—ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचांगिरसांवरः । संधत्स्वबाणं दुर्धर्षमद्वाक्यान्ते विमुञ्च च ॥ ५ ॥ ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् । स मुहूर्ता दुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥ ६ ॥ पश्यैनं त्वंद्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज । पश्यामीत्येनमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥ समुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत । अथवृक्ष मिमं मां वा भ्रातॄन् वापि प्रपश्यसि ॥ ८ ॥ तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् । भवन्तं च तथा भ्रातॄन् भासं चेति पुनः पुनः ॥ ९ ॥ तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव । नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं, लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ॥ १० ॥ ततो दुर्योधनादीं स्तान् धार्तराष्ट्रान् महायशाः । तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥ ११ ॥ अन्यांश्च शिष्यान् भीमादीन् राज्ञश्चैवान्य-देशजान् । तथा च सर्वे तत्सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—तब अंगिरावंशियों में श्रेष्ठ (द्रोण) पहले युधिष्ठिर से बोले, हे दुर्जय बाण जोड़, और मेरे कहने पर छोड़ना ॥ ५ ॥ हे भरतश्रेष्ठ फिर थोड़ी देर पीछे द्रोण धनुष खींचे हुए उस कुरुनन्दन से यह वचन बोला ॥ ६ ॥ हे राजपुत्र वृक्ष की चोटी पर स्थित इस भास को देख, युधिष्ठिर ने आचार्य

को उत्तर दिया 'देख रहा हूं' ॥ ७ ॥ थोड़ी देर पीछे द्रोण फिर बोले, क्या तू इस वृक्ष को, मुझ को, और अपने भाइयों को भी देख रहा है ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर ने "इस वृक्ष को, आप को, भाइयों को, और भास को देख रहा हूं" यह बार २ उत्तर दिया ॥९॥ अप्रसन्न से हुए द्रोण ने उसे कहा परे हटजा, यह लक्ष्य तुझ से नहीं वींधा जा सकता, ॥ १० ॥ तब परखना चाहते हुए उस महायशस्वी ने उन दुर्योधन आदि को भी इसी रीति पर पूछा ॥११॥ दूसरे भीम आदि शिष्यों को और अन्यदेशों के राजाओं को भी (पूछा) और वह सभी हम सब कुछ देखते हैं' ऐसे (कहने से) झिड़के गए ॥ १२ ॥

मूल–ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत । त्वयेदानीं प्रहर्तव्य मेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम् ॥ १३ ॥ मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः ॥ १४ ॥ एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः । तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्य प्रचोदितः ॥१५॥ मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत । पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुन ॥ १६ ॥ पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थो ऽभ्यभाषत । न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥ १७ ॥ ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः । प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥ १८ ॥ भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः । शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः । मुञ्चस्वेत्यब्रवीत् पार्थं स मुमोचाविचारयन् ॥ २० ॥ ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च । शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥ २१ ॥ तस्मिन् कर्माणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम् । मेने च द्रुपदं संख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥ २२ ॥

अर्थ—तब द्रोण मुसकराकर अर्जुन से बोला, अब तूने प्रहार करना है, इस लक्ष्य को देखले ॥ १३ ॥ मेरे वाक्य के साथ ही तूने इस पर बाण छोड़ना होगा ॥१४॥ ऐसे कहा हुआ गुरुवाक्य से प्रेरा हुआ सव्यसाची (अर्जुन) धनुष को गोल कर के भासको लक्ष्य करके खड़ा होगया ॥ १५ ॥ थोड़ी देर पीछे द्रोण फिर बोला, क्या हे अर्जुन देखता है स्थित इस भास को,, वृक्षको और मुझको" ॥ १६ ॥ अर्जुन ने द्रोण को उत्तर दिया, अकेले भास को देखता हूं, वृक्ष को वा आप को नहीं देखता हूं ॥ १७ ॥ तब प्रसन्न हुआ दुर्धर्ष द्रोण थोड़ी देर पीछे फिर पाण्डवों में से महारथ (अर्जुन) से बोला ॥ १८ ॥ फिर कहो, यदि तू इस भास को देखता है, उसने कहा, भास का सिर देखता हूं, और कोई अंग नहीं ॥ १९ ॥ अर्जुन से ऐसे कहा हुआ द्रोण हर्ष से पुलकित हो अर्जुन से बोला, (बाण) छोड़, उसने विनविचारे छोड़ा ॥ २० ॥ और उस तीक्ष्ण बाण से उस वृक्षस्थित (भास) का सिर काट कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥ २१ ॥ इस कार्य की सिद्धि पर उसने अर्जुन को गले लगा लिया, और अब (द्रोणने) युद्ध में द्रुपद को उसके साथियों समेत पराजित हुआ ही समझा ॥ २२ ॥

मूल—कस्यचित् त्वथकालस्य सशिष्योऽङ्गिरसांवरः । जगाम गंगामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥ २३ ॥ अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः । ग्राहो जग्राह बलवान् जंघान्ते कालचोदितः ॥ २४ ॥ स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान् सर्वानचोदयत् । ग्राहं हत्वा तु मोक्षयध्वं मामिति त्वरयान्निव ॥ २५ ॥ तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः । अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ॥

स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः । ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जंघां त्यक्त्वा महात्मनः ॥ २७ ॥ अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम्। गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् ॥ २८ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥ २९ ॥ असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते । तद्धारयेथाः प्रयतः श्रृणु चेदं वचो मम ॥ ३० ॥ बाधेतामानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन । तद्वधाय प्रयुञ्जीथा स्तदस्त्रमिदमाहवे ॥ ३१ ॥

अर्थ—कुछ काल पीछे हे भरत श्रेष्ठ! अंगिरों में श्रेष्ठ (द्रोण) शिष्यों समेत स्नान के लिये गंगा की ओर गया ॥ २३ ॥ वहां काल से प्रेरे हुए एक बलवान् जलचर तेन्दुए ने, जल में स्नान करते हुए द्रोण को टांग से पकड़ लिया ॥ २४ ॥ वह छुड़ाने को समर्थ हुए भी सारे शिष्यों को त्वरा कराते हुए प्रेरते भए, कि 'तेन्दुए को मारकर मुझे छुड़ाओ ॥ २५ ॥ उस के वचन के समकाल ही अर्जुन ने अपने न रुकने वाले पांच तीक्ष्ण बाणों से जल में मग्न तेन्दुए को ताड़ना किया ॥ २६ ॥ अर्जुन के बाणों से अनेक टुकड़े हुआ वह तेन्दुआ महात्मा की टांग को छोड़ वहीं मर गया ॥ २७ ॥ तब द्रोण ने उस महात्मा महारथ (अर्जुन) को कहा, हे महा बाहो ! यह बढ़िया, बड़ा दुर्धर, ब्रह्मशिरा नामी अस्त्र चलाने और रोकने की शिक्षा सहित ग्रहण कर हे तात ! यह अस्त्र लोक में असमान्य कहा जाता है । शुद्ध हो कर इसे धारण कर, और मेरा यह वचन सुन ॥ २८, २९ ३० ॥ हे वीर यदि तुझे कोई अमानुष शत्रु तंग करे, तो उस के मारने के लिये युद्ध में यह अस्त्र चलाना ॥ ३१ ॥

अध्याय १२ (व० १३४) कुमारों का शस्त्रास्त्र दिखलाना

मूल—कृतास्त्रान् धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत। दृष्ट्वाद्रोणोऽब्रवीद् राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥१॥कृपस्य सोमदत्तस्य वाल्हीकस्य च धीमतः।गांगेयस्य च सान्निध्ये व्यासस्य विदुरस्य च॥२॥राजन् संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम। ते दर्शयेयुः स्वांशिक्षां राजन्ननुमते तव ॥३॥

अर्थ--हे राजन् हे भारत ! जब द्रोण ने धृतराष्ट्र के पुत्रों और पाण्डुपुत्रों को अस्त्रविद्या में पूरा तय्यार कर लिया, तो (एक दिन द्रोणाचार्य) कृप, सोमदत्त, वाल्हीक, भीष्म, व्यास, और विदुर के सामने राजा धृतराष्ट्र से बोले । १-२। हे राजन् हे कुरुश्रेष्ठ ! आप के कुमार विद्या प्राप्त करचुके हैं, अब वह आपकी अनुज्ञा में अपनी शिक्षा दिखलावें ॥ ३ ॥

मूल—धृतराष्ट्र उवाच-क्षत्तर्यद् गुरुराचार्योब्रवीति कुरु तव तथा । नहीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ॥ ४ ॥ ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः ॥ ५ ॥ भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम् । समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रस्रवणान्विताम् ॥ ६ ॥ प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः । मञ्चांश्च-कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे विदुर आचार्य गुरु जो कहते हैं, वह वैसा करो, हे धर्मवत्सल मैं मानता हूं, ऐसा प्रिय और नहीं होगा (जैसा कि अपनी सन्तति को सुशिक्षित हुआ देखना है) ॥ ४ ॥ तब विदुर राजा से अनुज्ञा ले (द्रोण के साथ) बाहर गए ॥ ५ ॥ वहां महाप्राज्ञ द्रोण ने (अखाड़े के लिये) समतल, वृक्षों और झाड़ियों से रहित, उत्तर की ओर फव्वारों से युक्त

धरती की माप करवाई ॥ ६ ॥ और हे नरश्रेष्ठ ! उस के शिल्पियों ने बहुत अच्छा एक प्रेक्षागार (तमाशा घर) तय्यार किया, और वहां देश के मुखिया लोगों ने (अपने २ बैठने के लिये) मंच बनवाए ॥ ७ ॥

मूल—तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा । भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृपं चाचार्यसत्तमम् ॥ ८ ॥ मुक्ताजालपरिक्षिप्तं वैदूर्यमणिशोभितम् । शातकुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमत् ॥ ९ ॥ गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर । स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः ॥ १० ॥ हर्षादारुरुहुर्मञ्चान् मेरुं देवस्त्रियोयथा ॥ ११ ॥ ब्राह्मणक्षत्राद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम् । दर्शनेप्सु समभ्यागात् कुमाराणां कृतास्त्रताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पीछे उस(=नियत)दिन के आने पर राजा मन्त्रियोंसमेत भीष्म को और आचार्यश्रेष्ठ कृप को आगे करके, उस दिव्यसुनहरी प्रेक्षागार में आया, जिसके चारों ओर मोतियों की झालरें लटकती हैं, और मञ्ज पत्थर से शोभायमान है । ८, ९ । और हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! महाभाग गान्धारी और कुन्ती, और राजा की दूसरी स्त्रियें भी (राजकीय) ठाठ बाठ समेत, दासियों सहित (वहां आई) हर्ष से मंचों पर चढ़ीं, जैसे देवस्त्रियें मेरु पर १०, ११ । तथा ब्रह्म क्षत्रिय आदि चारों वर्ण कुमारों की कृतास्त्रता देखने की इच्छा से पुर से निकल आए ॥ १२ ॥

मूल—प्रवादितैश्चवादित्रैर्जनकौतूहलेनच । महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत्तदा ॥ १३ ॥ ततःशुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् । शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ १४

रंगमध्यं तदाचार्यः सपुत्रः प्रविवेशह । नभोजलधरैर्हीनं सांगारक इवांशुमान् ॥१५॥ ब्राह्मणांस्तु सुमन्त्रज्ञान्कारयामास मंगलम्॥१६॥

अर्थ--तब बजते हुए बाजों से और लोगों के कौतूहल से वः समाज क्षुब्ध हुए समुद्रवत् प्रतीत होता था ॥ १३ ॥ तब श्वेत धोती पहने हुए, श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये, श्वेतदाढ़ी और श्वेत केशों वाले, श्वेत माला और श्वेत चन्दन लगाए हुए आचार्य द्रोण अपने पुत्र समेत अखाड़े में प्रविष्ट हुए, जैसाकि मेघों से हीन (निर्मल) आकाश में मंगल समेत चन्द्र प्रविष्ट हो १४, १५ (प्रविष्ट होकर उसने) वेदज्ञ ब्राह्मणों से पहले मंगल करवाया १६

मूल--ततो बद्धांगुलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः । बद्धतूणाः स धनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥१७॥ अनुज्येष्ठंतुते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः । चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥ १८ ॥ केचिच्छराक्षेपभयात् शिरांस्यवननामिरे । मनुजा धृष्टमपरे वीक्षां चक्रुः सुविस्मिताः ॥ १९ ॥ ते स्मलक्ष्याणि विभिदुर्बाणैर्नामांक शोभितैः । विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥ २० ॥ सह सा चुक्रुशुश्चान्ये नराः शतसहस्रशः । विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत ॥ २१ ॥ कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत् । गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धेच महाबलः ॥ २२ ॥ गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः । त्सरुमार्गान् यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु ॥ २४ ॥ लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम् । ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खड्ग चर्मणोः ॥ २४ ॥

अर्थ--इसके पीछे अंगुलित्र (अंगुलियों के दस्ताने) पहने हुए, कमर कसे हुए, (पीठ पर) तरकश बांधे हुए (हाथ में) धनुष

लिए महारथी भरतश्रेष्ठ प्रविष्ट हुए ॥१७॥ वहां वह महाशक्ति युधिष्ठिर आदि कुमार ज्येष्ठक्रम से (बड़े के पीछे छोटा) बड़े अद्भुत अस्त्र प्रकट करते भए ॥ १८ ॥ (देखने वालों में,) कई (गूंजते हुए आते) बाणों के भय से सिर झुका लेते हैं, दूसरे निर्भयता से देख २ कर विस्मित होरहे हैं ॥१९॥ उडते हुए घोड़ों पर सवार हुए, वह शीघ्रता से छोड़े हुए नामके चिन्हों से शोभित, भांत २ के बाणों से अपने २ लक्ष्यों को तोडते भए ॥२०॥ हे भारत तब वहां! अचम्भे से खिले नेत्रों वाले सैंकडों सहस्रों दर्शक साधु साधु गुंजाते भए २० ॥ वह महाबली धनुष (चलाने) के अनेक मार्ग दिखलाकर (विस्मित करनेवाले भांति २ के निशाने लगाकर) रथ चर्या, हाथी की पीठ, घोडे की पीठ पर (अनेक मार्गों से विचरते भए) और बाहुयुद्ध में (अनेक मार्गों से विचरते भए) ॥ २२ ॥ फिर ढाल तलवार लेकर, बढ़ २ कर प्रहार करते हुए, सभी अवस्था में (पैदल, घोड़े, हाथी और रथ पर) गुरु से बतलाए तलवार के मार्ग दिखलाते भए ॥ २३ ॥ वहां दर्शकों ने, ढाल तलवार के प्रयोग में, सबकी शीघ्रता, चतुरता (एक ही खड्ग को चारों ओर घुमाकर चारों ओर से आते प्रहारों को रोकना) (शस्त्रों) की झलक, निडर होकर खडे रहना, और दृढ मुट्ठी वाला होना देखा २४

मूल—अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ । अवतीर्णौ । गदाहस्तौ पौरुषे पर्यवस्थितौ । तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ । चेरतुर्निर्मलगदौ समदाविव कुञ्जरौ ॥ २६ ॥ विदुरो धार्तराष्ट्राय गान्धार्यां पाण्डवारणिः । न्यवेदयतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥ २७ ॥

अर्थ—अब सदास्पर्धा वाले, बड़े पराक्रमी, दुर्योधन और भीम

हाथ में गदा लिये (अखाड़े में) उतरे ॥ २५ ॥ चमकती गदाओं वाले वह दोनों महाबली मत्तहाथियों की न्याई दाएं बाएं मण्डल (सब ओर से दूसरे के प्रहार से बचने के लिये अपने चारों ओर घुमाने से गदाओं के गोलचक्र) करते भए ॥ २६ ॥ कुमारों की वह सारी चेष्टाएं विदुर धृतराष्ट्र को और कुन्ती गान्धारी को बतलाती थी ॥ २७ ॥

अध्याय १३ (व० १३५) भीम और अर्जुन का शस्त्रास्त्र दिखलाना

मूल—कुरुराजे हि रंगस्थे भीमे च बलिनांवरे । पक्षपातकृतस्नेहः सद्विधेवाभवज्जनः ॥१॥ हीवीरकुरुराजाति ही भीम इति जल्पताम् । पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥२॥ ततःक्षुब्धार्णव निभं रंगमालोक्य बुद्धिमान् । भारद्वाजः प्रियं पुत्र मश्वत्थामान मब्रवीत् ॥ ३ ॥ वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि । माभूद्रंगप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥ ४ ॥ ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ ॥ ५ ॥

अर्थ—अखाड़े में जूं ही कि दुर्योधन और बलिवर भीम डटे, उसी समय पक्षपात के कारण (अलग २) प्रेम वाले लोग मानों दो विभागों में बट गए ॥ १ ॥ अहं वीर ! कुरुराज ! अहं भीम ! यह कहते हुए पुरुषों के अचानक बहुत ऊंचे २ नाद उठे ॥ २ ॥ तब लहराते हुए समुद्र के तुल्य उस अखाड़े को (क्षुब्ध हुआ) देख कर बुद्धिमान् द्रोण अपने प्रिय पुत्र अश्व-त्थामा से बोले ॥ ३ ॥ हटादे इन महापराक्रमियों को जो दोनों ही पूरे शिक्षित हैं, न हो, कि भीम और दुर्योधन के कारण अखाड़े में तलवार चल जाए ॥ ४ ॥ तब गदा उठाए हुए उन दोनों को गुरुपुत्र ने हटा दिया ॥ ५ ॥

मूल—ततो रंगांगणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत्। निवार्य वादित्रगणं महामेघनिभस्वनम् ॥ ६ ॥ यो मे पुत्रात् प्रियतरः सर्वशस्त्र-विशारदः। ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥ ७ ॥ अचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा। बद्धगोधांगुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः ॥ ८ ॥ काञ्चनं कवचं बिभ्रत् प्रत्यदृश्यत फाल्गुणः। सार्कः सेन्द्रायुधतड़ित् ससन्ध्य इव तोयदः ॥ ९ ॥

अर्थ—तब द्रोण अखाड़े के अन्दर खड़े होकर, महामेघ तुल्य ध्वनि वाले बाजों को रोक कर, वचन बोला ॥ ६ ॥ जो मुझे पुत्र से प्रियतर, सारे शस्त्रों में निपुण, विष्णुतुल्य (पराक्रमी) अर्जुन है, वह अर्जुन अब सामने आवे ॥ ७ ॥ अचार्य के कहते ही, जिस का स्वस्त्ययन किया गया है, वह नवयुवक गोह के दस्ताने पहने हुए, (बाणों से) भरा तर्कश (पीठ पर डाले हुए) (हाथ में) धनुष लिये सुनहरी कवचन पहने हुए अर्जुन सामने आया, जैसे सन्ध्या कालीन मेघ सूर्य, इन्द्र धनुष, बिजली समेत हो * ।

मूल—ततः सर्वस्य रंगस्थ समुत्पिञ्जलकोऽभवत्। प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशंखानि समन्ततः ॥ १० ॥ एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यम पाण्डवः। एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठः शीलज्ञाननिधिः परः ॥ इत्येवं तुमुला वाचः शुश्रुवुः प्रेक्षकेरिताः। कुन्त्याः प्रस्रवसं-युक्तैरस्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत् ॥ १२ ॥ तेन शब्देन महता पूर्णश्रुति रथाब्रवीत्। धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः ॥ १३ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते। पृथा ऽरणिसमुद्भू-तैस्त्रिभिः पाण्डववान्हिभिः ॥ १४ ॥

---

* सुनहरी तर्कश सूर्यतुल्य, धनुष इन्द्रधनुषतुल्य, कवच बिजली तुल्य, और इन को धारे हुए अर्जुन सन्ध्याकालीन मेघ तुल्य प्रतीत होता था।

अर्थ—तब सारा अखाड़ा हर्ष से भरगया, और चारों ओर बाजे और शंख बजने लगे ॥ १० ॥ यह श्रीमान् कुन्ती पुत्र है, यह मंझला पाण्डुपुत्र है, यह अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ है, यह शील और ज्ञान का भण्डार है ॥ ११ ॥ इस प्रकार (उस समय) प्रेक्षकों से बोले हुए तुमल वचन लोग सुनरहे थे। (यह सुनकर) कुन्ती की छाती दूध और आंसुओं से भीग गई ॥ १२ ॥ उस महान् शब्द से भरे कानों वाला नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र प्रसन्नमन हुआ विदुर से बोला ॥ १३ ॥ हे महामते! कुन्ती रूपी अरणि से उत्पन्न हुए, तीन पाण्डव रूप अग्नियों से मैं धन्य हुआ हूं, अनुगृहीत हुआ हूं, रक्षित हुआ हूं ॥ १४ ॥

मूल—तस्मिन् प्रमुदिते रंगे कथंचित् प्रत्युपस्थिते । दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम् ॥ १५ ॥ आग्नेयेनासृजद् वन्हिं वारुणेनासृजद् पयः । वायव्येनासृजद् वायुं पार्जन्येनासृजद् घनान् ॥ १६ ॥ अन्तर्धानेन चास्त्रेणपुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥१७॥ क्षणात् प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः । क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥ १८ ॥ सुकुमारं च सूक्ष्मंच गुरुंचापि गुरुप्रियः । सौष्ठवेनाभिसंक्षिप्तः सोऽविध्यद् विविधैः शरैः ॥ १९ ॥ भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम् । पञ्च बाणानसंसक्तान् संमुमोचैकबाणवत् ॥ २० ॥ गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्ववलम्बिनि । निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥ २१ ॥ इत्येवमादि सुमहद् खड्गे धनुषि चानघ । गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि ह्यदर्शयत् ॥ २२ ॥

अर्थ—वह हर्ष से भरा हुआ अखाड़ा जब कुछ शान्त हुआ तब अर्जुन आचार्य को अस्त्रों की फुरती दिखलाने लगा

॥ १५ ॥ आग्नेय से अग्नि उत्पन्न की, वारुण से जल, वायव्य से वायु और पार्जन्य से मेघ उत्पन्न किये ॥ १६ ॥ और अन्तर्धान से फिर छिपगये ॥ १७ ॥ क्षण में ऊंचा, क्षण में छोटा, क्षण में रथ के धुरे पर स्थित, क्षण में रथ के मध्य में स्थित, और क्षण में भूमिपर उतर आये ॥ १८ ॥ गुरु के प्यारे ने बड़े कोमल, सूक्ष्म और बड़े कठिन लक्ष्य को भांति २ के बाणों से बहुत अच्छी तरह बींधा ॥ १९ ॥ और (चक्राकार) घूमते हुए लोहे के सूअर के मुख में अलग २ पांच वाण एक वाण की तरह छोड़े ॥ २० ॥ रस्सी के सहारे फिरते हुए बैल के सींग की खोल में (विना चूकने के) वाण गाड़ दिये ॥ २१ ॥ इत्यादि बहुत बड़ा (काम) उसने तलवार और धनुष के विषय में दिखलाया, और उस निष्पाप शस्त्रनिपुण ने गदा में अनेक मण्डल दिखलाए ॥ २२ ॥

मुल—ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन् कर्मणि भारत । मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥ २३ ॥ द्वारदेशात् समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः । वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिःस्वनः ॥ २४ ॥ द्वारं चाभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा ॥२५॥

अर्थ—तिस पीछे हे भारत जब वह कर्म प्रायः समाप्ति पर था, देखने वालों और बाजों की ध्वनि हल्की हो गई थी ।२३। उस समय द्वारदेश से वज्र की रगड़ के तुल्य, (किसी के) महत्त्व और बल की सूचक भुजाओं की (कठोर) ध्वनि उत्पन्न हुई ॥ २४ ॥ उस समय सभी द्वार की ओर देखने लगे

अध्याय १४ (व० १३६) कर्ण का प्रवेश और अभिषेक

मूल—दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः । विवेश रंग

विस्तीर्णं कर्णः पर पुरञ्जयः ॥ १ ॥ प्रांशुः कनकतालाभः सिंह-संहननो युवा ॥ २ ॥ स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रंगमण्डलम् । प्रणामं द्रोणकृपयो र्नात्यादृतमिवाकरोत् ॥ ३ ॥ स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः । कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहल-परोऽभवत् ॥ ४ ॥ सोऽब्रवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतांवरः । भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम् ॥ ५ ॥ पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेषवदहंततः । करिष्ये पश्यतां नृणामात्मना विस्मयंगमः ।६।

अर्थ—लोगों से अवकाश दिये जाने पर, हर्ष से खिले नेत्रों वाला, शत्रुओं के किलों का जीतने वाला, कर्ण उस बड़े खुले अखाड़े में प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ बड़ा ऊंचा, सोने के ताल के सदृश, शेर की सी गठित वाला, नवयुवा ॥ २ ॥ उस महा-बाहु ने सब ओर रंगमण्डल (अखाड़े के दायरे) पर दृष्टि डालकर द्रोण और कृप को कुछ बेपरवाही से प्रणाम किया ॥ ३ ॥ वह सारा समाज निश्चल हो टकटकी लगाए 'कौन है यह ?' इस प्रकार (मन की) हलचल से कौतूहलपरायण हुआ ॥ ४ ॥ (इतने में) वह बोलने वालों श्रेष्ठ मेघ के तुल्य गम्भीर स्वर में भाई (अपने ही) अज्ञात भाई से बोला, सूर्यपुत्र इन्द्रपुत्र से ॥ ५ ॥ हे अर्जुन! जो तूने काम किया है, उस को उत्तमतया मैं लोगों के सामने करूंगा, मत स्वयं विस्मय कर ॥ ६ ॥

मूल—असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतांवर । यन्त्रोत्क्षिप्तइ वोत्तस्थौ क्षिप्रं वै सर्वतो जनः ॥७॥ प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमुपाविशत् । ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेना न्वाविवेशह ॥८॥ ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा । यत् कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥ ९ ॥ अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभि

सह भारत । कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचन मब्रवीत् ॥ १० ॥ स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद । अहं च कुरु-राज्यं च यथेष्ट मुपभुज्यताम् ॥ ११ ॥

कर्ण उवाच—कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे । द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तु मिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १२ ॥

अर्थ—तब हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! अभी वह कह ही रहा था, कि चारों ओर से लोग यन्त्र से ऊपर उठाए गयों की तरह झट उठकर खड़े होगए ॥७॥ हे मनुष्यों मेंश्रेष्ठ ! दुर्योधन को प्रीति प्राप्त हुई, और लज्जा और क्रोध अर्जुन को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ तब कर्ण जो सदा रण का प्यारा है, द्रोण की अनुज्ञा से वह सब कर दिखलाता भया, जो २ अर्जुन ने किया था ॥ ९ ॥ हे भारत ! अब वहां भाइयों समेत दुर्योधन कर्ण को आलिं-गन कर प्रसन्नता से यह वचन बोला ॥ १० ॥ हे महाबाहो ! हे मान देनेवाले ! आप का आना शुभ हो, आप भाग्य से आए हैं, मैं और कुरुओं का राज्य (आप के हैं) यथेष्ट उपभोग कीजिये ॥ ११ ॥ कर्ण बोला—मैं यह सब आप का किया हुआ समझता हूं, आप से मैत्री करता हूं, और हे प्रभो ! अर्जुन से मैं द्वन्द्वयुद्ध चाहता हूं ॥ १२ ॥

मूल—ततः क्षिप्तमिवात्मनं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत ॥ १३ ॥ अनाहूतोपसृष्टाना मनाहूतोपजल्पिनाम् । ये लोकास्तान् हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥ १४ ॥

अर्थ—तब अपने आप को झिड़के गए की न्याईं मानता हुआ अर्जुन बोला ॥ १३ ॥ बिन बुलाए आए और बिन बुलाए

बोलने वालों के जो लोक हैं, उन को हे कर्ण मुझ से मारा हुआ तू प्राप्त होगा ॥ १४ ॥

मूल—कर्णउवाच–रंगोऽयं सर्वसामान्यः किमत्रतवफाल्गुन वीर्यज्येष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥ १५ ॥ ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः । भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम् ॥ १६ ॥ ततो दुर्योधनेनापि स भ्रात्रा समरोद्यतः । परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ १७ ॥ धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन् देशे व्यवस्थिताः । भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥ १८ ॥ द्विधारंगः समभवत् स्त्रीणां द्वैधमजायत । कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह ॥ १९ ॥

अर्थ—कर्ण बोला–यह अखाड़ा सब का सांझा है, यहां तेरा (अपना) क्या है हे अर्जुन ! बलप्रधान राजा होते हैं, धर्म बल का साथी होता है ॥ १५ ॥ तब शत्रुओं के किले जीतने वाला अर्जुन द्रोण से अनुज्ञा दिया और भाइयों से आलिंगन किया हुआ युद्ध के लिये उस के निकट पहुंचा ॥ १६ ॥ तब दुर्योधन और उस के भाइयों ने भी, धनुषबाण लिये युद्ध के लिये तय्यार खड़े, कर्ण को आलिंगन किया ॥ १७ ॥ धृतराष्ट्र के पुत्र जिधर कर्ण था उस ओर खड़े हुए, द्रोणाचार्य कृप और भीष्म जिधर अर्जुन था उधर हुए ॥ १८ ॥ सारा अखाड़ा दो पक्षों में बंटगया, स्त्रियों में भी दो पक्ष हो गए, कुन्तिभोजसुता (कुन्ति) यह बात जान मोह को प्राप्त हुई ॥ १९

मूल—तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् । द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥ २० ॥ अयं पृथायास्तनयः कनीयान् पाण्डुनन्दनः । कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति

॥ २१ ॥ त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् । कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम् ॥ २२ ॥ ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा नवा । वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः ॥ २३ ॥ एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम् । बभौ वर्षाम्बु-विक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥ २४ ॥

मूल—जब उन दोनों ने धनुष उठाए, तब द्वन्द्वयुद्ध के व्यवहार में चतुर सारी मर्यादाओं का जानने वाला शरद्वान् का पुत्र कृप बोला ॥ २० ॥ यह कुन्ति का छोटा पुत्र पाण्डुनन्दन कुरुवंशी आप के साथ द्वन्द्वयुद्ध करेगा ॥ २१ ॥ आप भी इसी प्रकार हे महाबाहो ! अपने माता पिता और कुल बतलाएं, जिन राजाओं के आप कुलभूषण हैं ॥२२॥ तब (योग्य) समझ कर अर्जुन तेरे साथ युद्ध करेगा, कुल और आचार से हीन के साथ राजपुत्र युद्ध नहीं करते हैं ॥ २३ ॥ ऐसा कहे हुए कर्ण का लज्जा से नीचा हुआ मुख, वर्षा के जल से भीग कर झुके हुए कमल का सा प्रतीत होता था ॥ २४ ॥

अर्थ—दुर्योधन उवाच–आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये । सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥२५॥ यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति । तस्मादेषोऽगविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥ २६ ॥ ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः । अभिषिक्तोऽगराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः ॥२७॥ उवाच कौरवं राजन् वचनं स वृषस्तदा । अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते ॥ २८ ॥ अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः । एवमुक्तस्तथा कर्णस्तथेति प्रत्युवाच तम् ॥ २९ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला हे आचार्य शास्त्र के सिद्धान्त में क्षत्रियों (राजाओं)

के तीन स्रोत हैं, एक सत्कुलीन, दूसरा शूरवीर, तीसरा जिस के पीछे सेना चलती है ॥ २५ ॥ यदि यह अर्जुन राजा के सिवाय युद्ध नहीं करना चाहता है, तो अंगदेश के राज्य में अभी इस का अभिषेक करता हूं ॥ २६ ॥ तब उसी समय लाजा और फूलों वाले घड़ों से अंगराज्य में अभिषिक्त हुआ महाबली कर्ण शोभा से युक्त हुआ वह शूरवीर हे राजन् दुर्योधन से बोला, इस राज्यदान के सदृश तुझे क्या दूं ॥२७॥२८॥ सुयोधन ने उसे कहा, कि मैं अत्यन्त मित्रता चाहता हूं इस वचन पर कर्ण ने 'तथास्तु' प्रतिवचन दिया ॥ २९ ॥

अ० १५ (व० १३७) भीम और दुर्योधन का क्षोभ

मूल—ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः । विवेशाधिरथो रंगं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव ॥ १ ॥ तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरव यन्त्रितः । कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥ २ ॥ पुत्रेति परिपूर्णार्थ मब्रवीद् रथसारथिः ॥ ३ ॥ परिष्वज्य च तस्याथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः । अंगराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमीति सञ्चिन्त्य पाण्डवः । भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ५ ॥ न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् । कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६ ॥ अंगराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम । श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ७ ॥

अर्थ—तब अधिरथ (नामी सूत, बुढ़ापे के कारण) फिसलते हुए दुपट्टे वाला, पसीने से युक्त हुआ, कांपता हुआ, लाठी का सहारा किये मानों (कर्णको) बुलाता हुआ अखाड़े में प्रविष्ट

हुआ ॥ १ ॥ उस को देखकर अभिषेक से भीगे हुए सिर वाला कर्ण पिता के गौरव से विनीत हुआ धनुष को छोड़कर सिर झुकाकर अभिवादन करता भया ॥ २ ॥ तब उस रथ सारथि ने (कर्ण को) हे पुत्र ऐसे भरेहुए अर्थवाला वचन कहा ॥ ३ ॥ और गले लगा कर स्नेह से भरे हुए उसने अंगराज्य में अभिषेक से आर्द्र उसके सिर को (प्रेम की) आंसुओं से फिर सेंचन किया ॥ ४ ॥ उसे 'देखकर यह सूतपुत्र है' ऐसा जान कर पाण्डुपुत्र भीमसेन ने उपहास करके यह वाक्य कहा ॥ ५ ॥ हे सूतपुत्र तू युद्ध में अर्जुन से वध के योग्य नहीं है, अपने कुल के सदृश चाबुक जल्दी पकड़ ॥ ६ ॥ हे नराधम ! तू अंग का राज्य भोगने योग्य नहीं है, जैसे यज्ञ में अग्नि के निकट रखे पुरोडाश को कुत्ता (भोगने योग्य नहीं होता) ॥ ७ ॥

मूल–ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः । सोऽब्रवीद् भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम् ॥ ८ ॥ वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ ९ ॥ क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना । शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाःकिल ॥ १० ॥ क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः । विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥ ११ ॥ सकुण्डलं सकवचं सर्वलक्षणलक्षितम् । कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥ १२ ॥ पृथिवीराज्यमर्होऽयं नांगराज्यं नरेश्वरः । अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना ॥ १३ ॥ यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम् । रथमारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥ १४ ॥

अर्थ–तब महाबली दुर्योधन कोप से उठ खड़ा हुआ, और खड़े हुए भीम कर्मोंवाले भीमसेन से बोला ॥ ८ ॥ हे भीम ! तुझे

ऐसा वचन कहना योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ क्षत्रियों का बल प्रधान होता है, अतएव क्षत्रिय भाई का काम युद्ध दिखलाना है (जिस से क्षत्रियत्व ज्ञात होता है,) शूरवीरों के और नदियों के स्रोत दुर्ज्ञेय होते हैं ॥ १० ॥ क्षत्रियों से जन्मे हुए जो ब्राह्मण हो गए, वह भी तूने सुने हैं, जैसे विश्वामित्र अचल ब्राह्मणत्व को पागए ॥ ११ ॥ कुण्डल और कवच पहने हुए सारे लक्षणों से युक्त यह सूर्य के तुल्य चमकता है, भला कैसे मृगी वाघ को उत्पन्न कर सकती है (निःसंदेह यह शूरजातीया स्त्री का पुत्र है) ॥ १२ ॥ यह नरपति अपने इस भुजबल से और मुझ आज्ञावर्ती से सारी पृथिवी के राज्य के योग्य है न निरा अंगराज्य के ॥१३॥ जिस पुरुष को मेरा यह काम (अंगराज्य देना) असह्य हो, वह रथ पर चढ़ कर पाओं से अपना धनुष झुकाए * ॥ १४ ॥

मूल–ततः सर्वस्य रंगस्य हाहाकारो महानभूत्। साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥१५॥ ततो दुर्योधनःकर्णमालम्ब्याग्रकरे नृपः। दीपिकाग्निकृतालोकस्तस्माद्रंगाद् विनिर्ययौ ॥१६॥ पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशांपते। भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥१७॥ अर्जुनेति जनः कश्चित् कश्चित् कर्णेति भारत। कश्चिद् दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥ १८ ॥ कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणसूचितम्। पुत्रमंगेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरजायत ॥ १९ ॥ दुर्योधनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव। भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ २० ॥

---

* धनुष को पाओं से छू कर 'मार कर वा मर कर हटने की' क्षत्रिय प्रसिद्ध प्रतिज्ञा करे (नीलकण्ठ) बड़े २ शूरवीरों के धनुष पाओं से मुख तक होते थे, जिन को वह पाओं से दबाए रख कर हाथ से बाण जोड़ते थे।

अर्थ—तब सारे अखाड़े में बड़ा हा हा कार उठा, और शाबास भी, (इसी शोर में) सूर्य अस्त हो गया ॥ १५ ॥ तब राजा दुर्योधन कर्ण को हाथ से पकड़ कर मिशालों की अग्नि से प्रकाश कर, उस अखाड़े से निकल गया ॥ १६ ॥ और हे राजन्! पाण्डव तथा द्रोण कृप और भीष्म अपने २ घरों को गए ॥ १७ ॥ और लोग सब हे भारत! कोई अर्जुन, कोई कर्ण और कोई योधन का जिकर करते हुए वहां से चले ॥ १८ ॥ कुन्ती को, दिव्य लक्षणों से जितलाए अंगदेश के राजा बने पुत्र को पहचान कर स्नेह से ढकी हुई प्रीति प्रकट हो गई ॥ १९ ॥ दुर्योधन को भी अर्जुन से होने वाला भय, हे राजन् कर्ण को पाकर, तत्क्षण दूर होगया ॥ २० ॥

अध्याय १६ (व० १३८)

द्रोणाचार्य का राजा द्रुपद को जीत कर उस से मैत्री करना

मूल—ततः शिष्यान् समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत । द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥ १ ॥ पञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि । पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात् परमदक्षिणा ॥ २ ॥ तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः । आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥ ३ ॥

अर्थ—तब हे राजन् ! आचार्य द्रोण ने सारे शिष्यों को इकट्ठा करके गुरुदक्षिणा के लिये प्रेरा ॥ १ ॥ कि पञ्चालराज द्रुपद को, तुम्हारा भला हो, रणांगन में जीता पकड़ कर लाओ यह तुम्हारी असली दक्षिणा होगी ॥ २ ॥'तथास्तु' कह कर वह सब योधे आचार्य को दक्षिणा देने के लिये जल्दी रथों पर चढ़ कर द्रोण सहित (पञ्चाल देश को) गए ॥ ३ ॥

मूल-दुर्योधनश्च कर्णश्च युत्सुश्च महाबलः । दुःशासनो विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥ ४ ॥ एते चान्ये च बहवः कुमारा बहुविक्रमाः । अहंपूर्वमहं पूर्व मित्येवं क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

अर्थ--दुर्योधन, कर्ण, महाबली युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण, जल सन्ध और सुलोचन ॥ ४ ॥ यह तथा दूसरे बड़े पराक्रमी बहुत (धृतराष्ट्र के) कुमार क्षत्रियश्रेष्ठ मैं पहले मैं पहले इस भांति से आगे बढ़े ॥ ५ ॥

मूल-पूर्वमेव तु संमन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाब्रवीत् । दर्पोद्रेकात् कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम् ॥ ६ ॥ एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम् । एभिरशक्यः पाञ्चालो गृहीतुं रणमूर्धनि ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः । अर्धक्रोशे तु नगरा दतिष्ठद् बहिरेवसः ॥ ८ ॥

अर्थ--अर्जुन कुमारों के इस अति गर्व के हेतु पहले ही मन्त्रणा करके ब्राह्मणोत्तम आचार्य द्रोण से बोला ॥६॥ इन के पराक्रम के अन्त में हम साहस करेंगे,क्योंकि इन से पाञ्चाल राज का रणांगण में पकड़ा जाना अशक्य है ॥ ७ ॥ यह कह कर वह निष्पाप अर्जुन भाइयोंसहित आधा कोस नगर से बाहर ही ठहर गया ॥८॥

मूल-द्रुपदः कौरवान् दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः । शरजालेन महता मोहयन् कौरवीं चमूम् ॥ ९ ॥ तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिण माहवे । अनेक मिव संत्रासान्मेनिरे तत्रकौरवाः ॥ १० ॥ द्रुपदस्य शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम् । सिंहनादश्च संजज्ञे पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥ दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहु दीर्घलोचनः । दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ १२ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासः पार्षतो युधि दुर्जयः । व्यधमत् तान्यनीकानि तत्क्षणदेव

भारत ॥ १३ ॥ दुर्योधनं विकर्णंच कर्णंचापि महाबलम् । नाना नृपसुतान् वीरान् सैन्यानि विविधानि च ॥ १४ ॥ अलातचक्रवत् सर्वं चरन् बाणैरतर्पयत ॥ १५ ॥

अर्थ–द्रुपद कौरवों को देख कर, बड़े बाणसमूह से कुरुओं की सेना को मोहित करता हुआ चारों ओर दौड़ रहा था ॥ ९ ॥ रण में रथ द्वारा उद्योग करते हुए उस शीघ्रकारी को कौरव वहां भय से एक को अनेकवत् मानते थे ॥ १० ॥ द्रुपद के घोर बाण चारों ओर घूमने लगे, और पाञ्चाल महात्माओं का सिंहनाद उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु दीर्घ लोचन, और दुःशासन क्रुद्ध हो (द्रुपदपर) बाणों की वर्षा करते भए ॥ १२ ॥ वह युद्ध में दुर्जय महाधनुषधारी बाणों से बींधा हुआ भी तत्क्षण उन सेनाओं को कंपा देता भया ॥ १३ ॥ दुर्योधन, विकर्ण और महाबली कर्ण, अनेक वीर और राजपूत, अनेक प्रकार की सेनाओं को, मरहट्टा के चक्र की तरह घूमता हुआ वह बाणों से सब को तृप्त करता भया ॥ १५ ॥

मूल–पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम् । अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा ॥१६॥ पञ्चालानां ततः सेनामुद्धूतार्णवस्वनः । भीमसेनो महाबाहुर्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ १७॥ प्रविवेश महासेनां मकरः सागरं यथा ।१८। सयुद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः।अहनत् कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृक्॥१९॥गजानश्वान् रथांश्चैवः पातयामास पाण्डवः। पदातींश्च रथांश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः॥२०॥ गोपालइव दण्डेन यथापशुगणान् वने । चालयन् रथनागांश्च संचचाल वृकोदरः ॥२१॥

अर्थ–तब पाण्डव रोंगटे खड़े करने वाली पीड़ितों की

ध्वनि सुनकर द्रोण को प्रणाम करके रथोंपर चढ़े ॥१६॥ तब महाबाहु भीमसेन क्षुब्ध हुए समुद्र की न्याई गर्जताहुआ, हाथ में दण्ड लिये काल की तरह पाञ्चालों की बड़ी सेनामें प्रविष्ट हुआ, जैसे मगर सागर में प्रवेश करता है ॥१७॥ युद्ध में कुशल और भुजबल में अतुल वह पृथा का पुत्र कालका रूप धरकर गदा से हाथियों की सेना को मारने लगा ॥१९॥ उस अर्जुन के बड़े भाई पाण्डुपुत्र ने बहुत से हाथी घोडे और रथ नीचे गिराए तथा प्यादे और रथियों को मारगिराया ॥२०॥ ग्वाला जैसे वन में पशुगणों को डंडे से हांकता है, इस प्रकार रथों और हाथियों को हांकता हुआ भीम आगे बढ़तागया ॥२१॥

मूल—भारद्वाज प्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा। पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात् स पाण्डवः ॥२२॥ हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च समन्ततः। पातयन् समरे राजन् युगान्ताग्निरिवज्वलन् ॥२३॥ ततस्ते हन्यमानाश्च पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा। शरैर्नानाविधैस्तूर्णं समयुध्यन्त पाण्डवम् ॥ २४ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम् ॥२५॥

अर्थ—इधर द्रोणाचार्य्य का प्रिय करने को उद्यतहुआ पाण्डु पुत्र अर्जुन बाणसमूह से द्रुपद को परे हटाता हुआ प्रलय काल की अग्नि की न्याई जलता हुआ, घोडे हाथी और रथों के समूहों को गिराताहुआ आया ॥२२,२३॥ तब (बाणों) से ताड़े हुए वह पाञ्चाल और सृंजय अनेक प्रकार के हथियारों से जल्दी अर्जुन को युद्ध करवाते भए ॥२४॥ वह युद्ध भयंकर बड़े अद्भुत दर्शनवाला हुआ ॥२५॥

मूल—शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् सं दधानस्य चानिशम्।

नान्तरं ददृशे किञ्चित् कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥२६॥ ततः पाञ्चालराजस्तु तथा सत्याजिता सह । त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शंबरो यथा ॥२७॥ ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ । व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥२८॥ ततः सत्यजितं पार्थोदशभिर्मर्मभेदिभिः । विव्याधबलवद् गाढं तदद्भुतमिवाभवत् ॥२९॥ ततःशरशतैःपार्थं पाञ्चालः शीघ्रमार्दयत् । पार्थस्तुशर-वर्षेण छाद्यमानो महारथः ॥३०॥ वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्याम-वमृज्यच । ततःसत्याजितश्चापं छित्वा राजान मभ्यगात् ॥३१॥ अथान्यद् धनुरादाय सत्याजिद्वेगवत्तरम् । साश्वं सम्रुतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः ॥३२॥

अर्थ—यशस्वी अर्जुन इतनी जल्दी बाणों को फेंकता और लगातार (और २) जोडता जाता था, कि कुछ भी अन्तर नहीं दीखता था । ॥२६॥ तब सत्यजित् समेत पाञ्चालराज झट दौड़ताहुआ आया, जैसे शंवरइन्द्र की ओर ॥२७॥ तब युद्ध के लिये जुटे हुए अर्जुन और पांचालराज, इन्द्र और वैरो-चन के तुल्य सारी सेना में हलचल मचा देते भए॥२८॥ तब अर्जुन ने सत्यजित् को दस मर्मभेदी बाणों से ऐसा बलवत् बींधा, जो आश्चर्य में डालने वाला था ॥२९॥ यह देख पाञ्चा-लराज ने झटपट सैंकडे बाणों से अर्जुन को पीडित किया, किन्तु बाणों की वृष्टि से ढके हुए महारथी महावेग अर्जुन ने भी धनुष के चिल्ले को खींचकर अपना वेग दिखलाया । और सत्यजित् के धनुष को काटकर राजा के पास पहुंचा ॥३०।३१॥ तब सत्याजित् ने बडे वेगवाला और धनुष लेकर, घोडे, सारथि और रथसमेत अर्जुन को बींधादिया ॥३२॥

मूल—स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनार्दितो युधि। ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥३३॥ हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टि मुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥३४॥ स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनःपुनः। हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे॥३५॥ स सत्य जितमालोक्य तथा विमुखमाहवे। वेगन महता राजन्नभ्यवर्षत पाण्डवम्॥३६॥ तदा चक्रे महद्युद्धमर्जुनो जयतां वरः। तस्य-पार्थोधनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत् ॥३७॥ पञ्चाभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं च सायकैः ॥३८॥

अर्थ—इधर पाञ्चालराज से पीड़ित हुआ अर्जुन युद्ध में उस (सत्यजित्) को नहीं सहार सका, तब उसके नाश के लिये जल्दी बाण छोड़ता भया॥ ३३॥ घोड़े, ध्वजा, धनुष की मुट्ठी, तथा पार्ष्णि और सारथि को बींधा॥ ३४॥ इस प्रकार धनुष के बार २ टूटने और घोड़ों के बार २ जोड़ ने के कारण सत्यजित् युद्ध में विमुख हुआ॥ ३५॥ सत्य जित् को युद्ध में विमुख हुआ देख कर हे राजन् पांचाल-राज बड़े वेग से अर्जुन पर बाणों की वर्षा करता भया॥ ३६॥ तब जीतने वालों में श्रेष्ठ अर्जुन भी बड़ा युद्ध करता भया, उसने द्रुपद के धनुष को काट डाला और ध्वजा को पृथ्वी पर गिरा दिया॥ ३७॥ और पांच बाणों से उस के घोड़ों को और सूत को बींध दिया॥ ३८॥

मूल—तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम्। खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनाद मथाकरोत्॥ ३९॥ पाञ्चालस्य रथस्येषा-माप्लुत्य सहसाऽपतत्। पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनञ्जयः ॥ ४०॥ विक्षोभ्याम्भोनिधिं पार्थस्तं नाग मिव सोऽग्रहीत्।

ततस्तु सर्वे पाञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश ॥ ४१ ॥ दर्शयन् सर्व सैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः । सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनञ्जयः ॥ ४२ ॥ आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुमाराः सहितास्तदा । ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ४३ ॥

अर्थ—तब उस धनुष को छोड़ कर जब और धनुष पकड़ रहा था, उसी समय अर्जुन ने तलवार खींच कर सिंहनाद किया ॥ ३९ ॥ और कूद कर झटपट पाञ्चालराज के रथ के दण्ड पर जा पड़ा, पाञ्चाल राज के रथ पर चढ़ कर निडर अर्जुन ने (समुद्र की तरह उमड़ी हुई) सेना को हलचल में डाल कर हाथी की तरह (द्रुपद) को पकड़ लिया। तब सारे पाञ्चाल दशों दिशाओं में भाग गए ॥ ४०, ४१ ॥ अर्जुन सारी सेनाओं को अपना भुजबल दिखलाता हुआ सिंहनाद करके (शत्रु सेना से) निकल आया ॥ ४२ ॥ अर्जुन को आता देख कर, कुमार सब मिल कर द्रुपद के नगर पर टूट पड़े ॥ ४३ ॥

मूल—अर्जुन उवाच—सम्बन्धी कुरुवीराणां द्रुपदो राजसत्तमः । मा वधीस्तद्बलं भीम गुरुदानं प्रदीयताम् ॥ ४४ ॥ भीमसेनस्तदा राजन्नर्जुनेन निवारितः । अतृप्तो युद्धधर्मेषु न्यवर्तत महाबलः ॥ ४५ ॥ ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि । उपाजग्मुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ ॥ ४६ ॥ भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम् । सवैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया । प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वा प्रहस्यैव किञ्चित् स पुनरब्रवीत् । मा भैः प्राणभयाद् वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥ ४९ ॥ +आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह ।

तेन संवर्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ ॥ ५० ॥+प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप । वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥ ५१ ॥+अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति । अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥ ५२ ॥ राजाऽसि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे । सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥ ५३ ॥

अर्थ—अर्जुन बोला–राज श्रेष्ठ द्रुपद कुरु वीरों का सम्बन्धी है, इस लिये हे भीम उसकी सेना का वध न कर, गुरु दान (द्रुपद को जीता पकड़ गुरु के पास ले जाना रूप गुरुदक्षिणा) दो ॥ ४४ ॥ तब हे राजन् अर्जुन से रोका हुआ महा बली भीमसेन युद्ध में पूरा तृप्त न होकर ही लौटा ॥ ४५ ॥ वह रणक्षेत्र में मन्त्री सहित यज्ञसेन द्रुपद को पकड़ कर द्रोण के पास आए ॥ ४६ ॥ टूटे दर्प वाले, छिने धन वाले, इस प्रकार वश में आए हुए द्रुपद को मन से वैर वाला समझ कर द्रोण बोला ॥४७॥ तेरे राष्ट्र का विनाश कर तेरे किले को मैंने विनाश किया है, अब जीते जी शत्रु के वश में आकर क्या पुरानी मित्रता चाहते हो ॥ ४८ ॥ इतना कह फिर कुछ हंस कर बोला, हे वीर प्राण भय से मत डर, हम क्षमा वाले ब्राह्मण हैं ॥ ४९ ॥ बाल्य में जो आप आश्रम में मेरे साथ खेले हैं, उस से स्नेह और प्रीति हे क्षत्रियवर आप के साथ बढ़ी हुई है ॥ ५० ॥ सो हे राजन् फिर भी आप के साथ मैत्री चाहता हूं, हे राजन्! तुझे वर देता हूं, आधा राज्य तुम लेलो ॥ ५१ ॥ यतः अराजा राजा का सखा हो नहीं सकता हैं, इस से हे यज्ञसेन मैंने तेरे राज्य में प्रयत्न किया ॥ ५२ ॥ आप गंगा के दक्षिण तट के राजा और

उत्तरतट का राजा मैं रहा, सो अब हे पाञ्चाल मुझे अपना सखा जानो यदि ठीक समझते हो ॥ ५३ ॥

मूल—द्रुपद उवाच—अनाश्चर्य मिदं ब्रह्मन् विक्रान्तेषु महात्मसु । प्रीये त्वयाहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम् ॥ ५४ ॥ एव मुक्तः स तं द्रोणो मोक्षयामास भारत । सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥ ५५ ॥ सोऽध्यवसद् दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम् । दक्षिणांश्चापि पाञ्चालान् यावच्चर्मण्वती नदी ॥ ५६ ॥ अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥ ५७ ॥ एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता । युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥ ५८ ॥

अर्थ—द्रुपद बोला—हे ब्रह्मन् ! विक्रम शाली महात्माओं में कोई आश्चर्य नहीं है, तुझ पर प्रीति लाता हूं, और तुझ से सदा की प्रीति चाहता हूं ॥ ५४ ॥ ऐसा कहने पर हे भारत द्रोण ने उसे स्वतन्त्र किया, और प्रसन्न हो कर सत्कार करके आधा राज्य दिया ॥ ५५ ॥ वह दीन मन हुआ पुरवर काम्पिल्य में रहने लगा, और चर्मण्वती (चंबल) नदी तक दक्षिण पाञ्चाल उस के रहे ॥ ५६ ॥ अहिच्छत्र देश को द्रोण ने लिया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार हे राजन् बहुत बड़े देश से संयुक्त अहिच्छत्रा पुरी अर्जुन ने युद्ध में जीत कर द्रोण को दी ॥ ५८ ॥

अध्याय १७ (व० १३९) भीम और अर्जुन के विजय

मूल—ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव । स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डु पुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ धृतिस्थैर्यसहिष्णु त्वादानृशंस्यात् तथार्जवात् । भृत्याना मनुकम्पार्थं तथैवास्थित सौहृदात् ॥२॥ ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तिपुत्रो युधिष्ठिरः । पितुरदन्तर्दधे कीर्तिं

शीलवृत्तसमाधिभिः ॥ ३ ॥ असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः । संकर्षणादशिक्षद् वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥ ४ ॥ समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनबलो बले । पराक्रमेण च संपन्नो भ्रातृणामचरद् वशे ॥ ५ ॥ गदायुद्धेऽसियुद्धे च रथयुद्धे च पाण्डवः । पारगश्च धनुर्युद्धे बभूवाथ धनञ्जयः ॥ ६ ॥ नीतिमान् सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा । अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातृणां वर्तते वशे ॥ ७ ॥ द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातृणां नकुलः प्रियः । चित्रयोधी समाख्यातो बभूवातिरथोदितः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे पृथ्वी नाथ ! फिर एक वर्ष के बीतने पर धृतराष्ट्र ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को, उसकी धीरता, स्थिरता, सहन शीलता, दया, सरलता नौकरों पर कृपा तथा स्थिरमित्रता, आदि गुणों से युवराज पदपर बिठाया॥१॥२॥कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर ने भी अपने शील बर्ताव और (कर्तव्य में) सावधानता से थोड़े ही समय में पिता की कीर्ति को ढांप लिया ॥ ३ ॥ पाण्डुपुत्र भीम ने खड्गयुद्ध गदायुद्ध और रथयुद्ध में बलराम से देर तक शिक्षा लाभ की ॥ ४ ॥ शिक्षा को समाप्त करके भीम, बल में द्युमत्सेन के बराबर हुआ पराक्रम से युक्त हुआ भाइयों के वश में चलने लगा ॥५॥ और पाण्डु पुत्र अर्जुन गदायुद्ध खड्गयुद्ध रथयुद्ध और धनुर्वेद में पार पहुंच गया ॥ ६ ॥ विद्वानों के गुरु (द्रोण) से समग्र नीति को पाकर नीतिमान् सहदेव भी भाइयों के वश में रहने लगा ॥ ७ ॥ भाइयों का प्यारा नकुल भी द्रोण से ही शिक्षा पाकर चित्रयोधी प्रसिद्ध हुआ और अतिरथियों में पूरा २ चमका ॥ ८ ॥

मूल—नशशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान् । सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजासौ यवनाधिपः ॥ ९ ॥ अतीवबलसंपन्नः

सदामानी कुरून् प्रति । वितुलो नाम सौवीरः शस्तःपार्थेन धीमता ॥ १० ॥ दत्तामित्र इतिख्यातं संग्रामे कृतनिश्चयम् । सुमित्रं नामसौवीरमर्जुनोऽदमयच्छरैः ॥ ११ ॥ भीमसेनसहायश्च रथानाम-युतंचसः । अर्जुनः समरे प्राच्यान् सर्वानेकरथोऽजयत ॥ १२ ॥ तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद्दिशम् । धनौघं प्रापयामासकुरुराष्ट्रं धनञ्जयः ॥ १३ ॥ एवं सर्वे महात्मानः पाण्डवा मनुजोत्तमाः । परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुःपुरा ॥ १४ ॥ ततो बलमति-ख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम् । दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु ॥ १५ ॥ सचिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥१६॥

अर्थ--वीर्यवान् पाण्डु भी जिस को अधीन नहीं कर सके थे, उस यवनराज को भी अर्जुन ने अपना आज्ञाधीन बनाया ॥ ९ ॥ और उस सौवीर राज वितुल को, जो सदा कुरुओं के प्रति अहंकार रखता था, अर्जुन ने मार गिराया ॥ १० ॥ और लड़ने को तय्यार दूसरे सौवीर राज सुमित्र को, जो दत्तामित्र नाम से जगद्विख्यात था, अर्जुन ने अपने बाणों से सीधा कर दिया ॥११॥ और स्वयं एकरथी होकर भी अर्जुन ने भीम के सहारे से दस हज़ार रथों वाले सारे पूर्वियों को जीता ॥ १२ ॥ और वैसे ही एक रथी जाकर ही दक्षिण दिशा को जीता, और उस धनञ्जय ने धन का प्रवाह कुरु देशों में पहुंचाया ॥ १३ ॥ मनुजवर महात्मा पाण्डवों ने इस प्रकार पहले पराये राज्यों को जीत कर अपना राज्य बढ़ाया ॥ १४ ॥ पर इन भारी योद्धाओं के बल की बड़ी धांक जान कर धृतराष्ट्र का भाव पाण्डवों के विषय में एकाएक बिगड़ गया ॥ १५ ॥ वह राजा ऐसी चिन्ता में डूबा, कि उसे रात को नींद न पड़ी १६

अध्याय १८ (व० १०४) कणिक की नीति

मूल–तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थ वित्तमम् । कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः ॥ १ ॥ उत्सक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम । तत्र मे निश्चिततमं सन्धिविग्रह-कारणम् ॥ २ ॥ कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनंतव ॥ ३ ॥

अर्थ--तब नीतिशास्त्र के तत्ववेत्ता, मन्त्र के जानने वाले मन्त्रिवर कणिक को बुलवाकर धृतराष्ट्र यह बात कहने लगे ॥१॥ हे द्विजवर ! पाण्डवों को दिनों दिन बढ़ते देख उन से मुझे असूया हो रही है, सो तुम सन्धि वा युद्ध का कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जो पूरा निश्चित हो, हे कणिक ! मैं तेरा कहा करूंगा ॥

मूल–कणिक उवाच–शृणुराजन्निदं तत्र प्रोच्यमानं मयाऽनघ । नमेऽभ्यसूया कर्तव्या श्रुत्वैतत् कुरुसत्तम ॥४॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः । अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात् परेषां विवरा-नुगः ॥ ५ ॥ नास्य छिद्रं परः पश्येत् छिद्रेण परमन्वियात् । गूहेत् कूर्मइवांगानि रक्षद्विवरमात्मनः ॥ ६ ॥ नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलो-ऽपि कथञ्चन । अल्पोप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात् ॥ ७ ॥ अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाश्रयेत् । कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम् ॥ ७ ॥ वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालस्य पर्ययः । ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि ॥ ९ ॥

अर्थ–कणिक बोले, हे राजन् हे निष्पाप मैं जो कहता हूं, सुनिये और हे कुरुवर ! यह सुन कर मुझ पर क्रोध न करना ॥ ४ ॥ (राजों को) सदा युद्ध के लिये तय्यार रहना चाहिये, सदा अपना पौरुष दिखलाना चाहिये, अपने अन्दर कोई छिद्र न आने दे, शत्रुओं के छिद्र को ढूंढता रहे, और छिद्र का पीछा

करे ॥ ५ ॥ अपने छिद्र को शत्रु न देख पाए, स्वयं शत्रु के छिद्र का पीछा करे, कछुए की तरह अपने अंगों को छुपा ले, और अपनी त्रुटि का पता न लगने दे ॥ ६ ॥ हे तात ! शत्रु दुर्बल भी हो, तो भी कभी उस से बेपरवाह न हो, थोड़ी सी भी आग आश्रय पाकर सारे वन को जला देती है ॥ ७ ॥ अन्धा होने के वेले अन्धा हो जाए, और बाहिरा भी हो जाए (देख सुन कर चुप रहे) तब अपने बाण को तिनकों से बना हुआ समझे और मृग की सोनी सोवे (सोया हुआ भी शत्रु से सावधान रहे) ॥ ८ ॥ जब तक दिनों का फेर हो शत्रु को कन्धे पर भी उठाए, जब दिन पलटें, तो पत्थर पर घड़े की तरह उस को फोड़ डाले ॥ ९ ॥

मूल—भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा । लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा ॥१०॥ शपथेनाप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः । विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथञ्चन ॥११॥ प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत । प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च ॥ १२ ॥ न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् । विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ १३ ॥ चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा । पाषंडांस्तापसादींश्च पराराष्ट्रेषु योजयेत् ॥ १४ ॥ वाचा भृशं विनीतः स्याद् हृदयेन तथा क्षुरः । स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् स्रष्टा रौद्रेण कर्मणा ॥ १५ ॥ सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् दुरारुहः । आमः स्यात् पक्वसंकाशो न च जीर्येत कर्हिचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—डरपोक को भय से, शूरवीर को हाथ जोड़ने से, लोभी को धन देने से, सम वा न्यून को पराक्रम से वश में करे ॥ १० ॥ शपथ से भी, धन देने से भी, विष से भी, वा छल से

भी, जिस तरह हो, शत्रु को मारे, कभी उपेक्षा न करे ॥ ११ ॥ प्रहार करने लगा भी प्रिय बोले, प्रहार करता हुआ भी प्रिय बोले, प्रहार करके कृपा दिखलाए, शोक करे और आंसु बहाए, ॥ १२ ॥ अविश्वासी पर विश्वास न करे, और विश्वासी पर भी अति विश्वास न करे, क्योंकि विश्वास से भय उत्पन्न हुआ जड़ों को भी उखाड़ देता है ॥ १३ ॥ अपने और पराये देश के लिये सुपरीक्षित गुप्तचर तय्यार करे, पाखंडी और तपस्वियों को दूसरे राज्यों में लगाए ॥ १४ ॥ वाणी से बड़ा मीठा हो और अन्दर से छुरा हो, रौद्र कर्म (प्रहार आदि) के निमित्त प्रेरा हुआ भी हंसकर पहले बात करने वाला हो ॥ १५ ॥ फूलों से लदा हुआ हो, और फल रहित हो (फूले हुए वृक्ष की न्याईं फल की आशा दिखलाए, न कि फल) फलवान् हुआ दुरारुह हो (बगीचे में ऊंचे वृक्ष से फल की तरह ऊंचे चढ़ने वाले को फल दे) कच्चा हुआ पक्के हुए के तुल्य हो, और कभी (धन और शक्ति को व्यय करके) जीर्ण न हो ॥ १६ ॥

मूल—न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति । संशयंपुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥१७॥ यस्य बुद्धिः परिभवेत् तमतीतेन सान्त्वयेत् । अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥ १८॥ योऽरिणा सह सन्धाय शयीत कृतकृत्यवत् । स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रति बुध्यते ॥ १९ ॥ नाच्छित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम् । नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥२०॥ कर्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीय मघासकम् । परिविश्वस्तमन्दंच प्रहर्तव्यमरेर्बलम् ॥२१॥ संग्रहे विग्रहे चैव यत्नः कार्योऽनसूयता । उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥२२॥ नास्य कृत्यानि बुध्येरन् मित्राणि रिपवस्तथा । आरब्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसि-

तान्यपि ॥ २३ ॥ भीतवत् संविधातव्यं यावद् भय मनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥ २४ ॥

अर्थ--संशय (खतरे) में पड़े विना कोई मनुष्य वड़े कल्याण नहीं देखता है, संशय में पड़ कर, यदि जीता है, तो देखता है ॥ १७ ॥ जिस की बुद्धि (शोक से) दब जाए, उस को वीती घटनाओं (राम, नल आदि पर आई वैसी घटनाओं) से दिलेरी दे, मूर्ख को भविष्यफल दिखलाकर और पण्डित को वर्तमानफल दिखलाकर दिलेरी दे, ॥१८॥ जो शत्रु के साथ सन्धि करके अपने आप को कृतकृत्य मान कर सोया रहे वह वृक्ष के टहने पर सोए हुए की तरह गिरा हुआ ही जागता है ॥१९॥ विना शत्रुओं के मर्म छेदे, विना दारुण कर्म किये, और मत्स्यघाती की तरह (शत्रुओं को पकड़ २) मारे विना कोई भी वड़े ऐश्वर्य को नहीं पाता है ॥ २० ॥ शत्रुसेना दुर्बल, रोग पीड़ित, थकी मांदी, विना जल वा आहार, विश्वस्त हो कर आलस्य में पड़ी पर प्रहार करना चाहिये ॥ २१ ॥ ऐश्वर्य चाहने वाले को चाहिये, कि (सहायकों) के संग्रह और (शत्रुओं से) युद्ध में यत्न करे, और पूरे यत्न से उत्साह करे, ॥२२॥ इस के करने योग्य कामों को न शत्रु न मित्र जान पाएं, आरम्भ हुए हुए वा फले हुए ही देखें ॥ २३ ॥ जब तक भय आ नहीं पहुंचा, तब तक डरे हुए की तरह उस को रोकना चाहिये, पर आए हुए भय को देख कर निडर की तरह प्रहार करना चाहिये ॥ २४ ॥

मूल--अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम् । न तु बुद्धिक्षयात् किञ्चिदतिक्रामेत प्रयोजनम् ॥ २५ ॥ तालवत् कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः । गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान् ॥२६॥

अग्नि स्तोकमिवात्मानं संधुक्षयति यो नरः। स वर्धमानो ग्रसते महान्तमपि सञ्चयम् ॥ २७ ॥ पाण्डवेषु यथान्याय मन्येषु च कुरूद्वह। वर्तमानो न मज्जेस्त्वं तथा कृत्यं समाचर ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वा संप्रतस्थे कणिकः स्वगृहं ततः। धृतराष्ट्रोपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत ॥ २९ ॥

अर्थ—जो कार्य सामने आना है, उसको समझे, और जो सामने है, उसको भी, न हो कि बुद्धि की त्रुटि से कोई प्रयोजन चूकजाए ॥ २५ ॥ छोटा शत्रु भी छोड़ दिया जाए, तो ताल की न्याईं जड़ पकड़ जाता है, जंगल में छोड़ी हुई चिंगाड़ी की तरह झटपट बड़ा हो जाता है ॥ २६ ॥ छोटी सी चिंगाड़ी की तरह भी जो पुरुष अपने आप को धुखाता है (सहायकों से बढ़ाता है) वह बढ़ करके बड़े भी ढेर को ग्रस लेता है ॥ २७ ॥ हे कुरुवर! पाण्डवों और अन्यों के विषय में नीति अनुसार वर्तते हुए, ऐसा काम करो, जिस से कि तुम स्वयं डूब न जाओ ॥२८॥ यह कह कर मन्त्री कणिक अपने घर चला गया, और कौरव धृतराष्ट्र शोक में डूब गया ॥ २९ ॥

अध्याय १९ (व० १४१) दुर्योधन का ईर्ष्या से जलना

मूल—प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम्। दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥ १ ॥ ततो वैकर्तनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः। अनेकैरभ्युपायैस्ते जिघांसन्तिस्म पाण्डवान् ॥ २ ॥ पाण्डवा अपि तत्सर्वं प्रतिचक्रुर्यथागतम्। उद्भावन मकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥३॥ गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा। कथयाञ्चक्रिरे तेषां गुणान् संसत्सु भारत॥४॥ राज्यप्राप्तिं च संप्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा। कथयन्तिस्म संभूय

चत्वरेषु सभासु च ॥५॥ प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः। राज्यं न प्राप्तवान् पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥ तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः। प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातुग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम्। अभ्यषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥ ८ ॥ सहि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्। सपुत्रं विविधै भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥ ९ ॥

अर्थ—दुर्योधन भीमसेन को बल में अधिक, अर्जुन को अस्त्रविद्या में कुशल जान दुर्मन हुआ जलने लगा ॥ १ ॥ तब सूर्यपुत्र कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि अनेक उपायों से पाण्डवों को मारने की चेष्टा करने लगे ॥ २ ॥ पाण्डव भी विदुर की संमति पर चलते हुए, विना प्रकट किये (अनजान से बने हुए) ज्यों २ (उनका किया उपाय) सामने आता गया, उस सब का प्रतिकार (इलाज) करते रहे ॥ ३ ॥ हे भारत! पुर के लोग पाण्डुपुत्रों को गुणों से युक्त देखकर,सभाओं में उनका गुण कहने लगे ॥ ४ ॥ चौरस्तों में और सभाओं में मिलकर कहते कि ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र को राज्य मिलने का अधिकार है ॥ ५ ॥ प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र नरेश चक्षुहीन होने से पहले राज्य को प्राप्त नहीं हुआ है,वह कैसे राजा हो ।६। तथा शान्तनु का पुत्र सच्ची प्रतिज्ञा वाला महाव्रती भीष्म पहले राज्य को छोड़ चुका है, वह अब कभी ग्रहण नहीं करेगा ॥ ७ ॥ सो हम पाण्डवों में बड़े को अब भली भांति अभिषिक्त करें, जो युवा भी वृद्धों के शील वाला है जो सत्य और दया का पहचानने वाला है ॥ ८ ॥ वह धर्मज्ञ शान्तनु के पुत्र भीष्म को और पुत्रों समेत धृतराष्ट्र को सत्कार पूर्वक अनेक प्रकार के भोगों से युक्त करेगा ॥ ९ ॥

मूल—तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम् । युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥१०॥ ईर्ष्यया चापि संतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥११॥ दुर्योधन उवाच—श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः। त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥१२ मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति। अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ।१३। पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा। त्वमन्धगुणसंयोगात् प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥ १४ ॥ स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः । तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः ॥१५॥ ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि । अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते । १६ । सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः। न भवेम यथा राजंस्तथा नीति विधीयताम् । १७ ।

अर्थ—युधिष्ठिर में अनुराग वाले होकर बातें करते हुए उन लोगों के उन वाक्यों को सुन कर, दुर्मति दुर्योधन बड़ा तपा ॥ १० ॥ और ईर्ष्या से जलता हुआ वह धृतराष्ट्र के पास आया ॥ ११ ॥ दुर्योधन बोला—हे तात बातें करते हुए पुरवासियों की मैंने अशुभ बातें सुनी हैं, वह आप का, और भीष्म का अनादर कर के, युधिष्ठिर को अपना पति बनाना चाहते हैं ॥ १२ ॥ और यह भीष्म को भी अभिमत होगा, क्योंकि वह आप राज्य भोग की इच्छा नहीं रखते, किन्तु पौरजन हमें ही परम पीडा देने को तय्यार हुए हैं ॥ १३ ॥ पहले पाण्डु ने अपने गुणों के कारण पिता से राज्य पाया था, (न कि स्वयं पैदा किया था), जो कि (बड़ा होने के कारण) आप को मिलना था, पर नेत्रहीन होने के कारण नहीं मिला था

(वस्तुतः तो आप का ही है) ॥ १४ ॥ अब यदि पाण्डु का पुत्र पाण्डु की उत्तराधिकारिता को पावे, तो आगे अवश्य ही उसका पुत्र पाएगा, और उस का उस का भी (आगे २) और २(पुत्र, पाता जाएगा) ॥ १५ ॥ तब हे पृथिवी नाथ ! हम सब पुत्रों समेत राजवंश से हीन हुए, सब से अनादृत होंगे ॥१६॥ सो हे राजन् ! कोई ऐसी नीति कीजिये, जिस से हम दूसरों के दिये टुकड़ों पर पलते हुए सदा नरक में न पड़े रहें ॥ १७ ॥

अध्याय २० (व० १४२)

पाण्डवों को वारणावत में भेजने की मन्त्रणा

मूल—एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षु र्नराधिपः । कणिकस्य च वाक्यानि तानि स्मृत्वा स सर्वशः ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्तः समपद्यत ॥ २ ॥

अर्थ—प्रज्ञाचक्षु नरपति धृतराष्ट्र पुत्र से यह बात सुनं, और कणिक की उन बातों को पूरा २ स्मरण कर, चित्त में दुविधा के आने से शोक से पीड़ित हुआ ॥ १ ॥ २ ॥

मूल—दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौवलस्तथा । दुःशासन चतुर्थास्ते मन्त्रयामासुरेकतः ॥ ३ ॥ ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्र मभाषत ॥ ४ ॥ पाण्डवेभ्यो भयं नः स्यात् तान् विवासयतु भवान् । निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम् । मुहूर्तमिव सञ्चिन्त्य दुर्योधन मथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ—इधर दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और चौथा दुःशासन इन्हों ने मिलकर मन्त्रणा की, और दुर्योधन ने आकर

धृतराष्ट्र से कहा ॥ ३,४ ॥ कि पाण्डवों से हमें भय है, आप किसी निपुण उपाय से उन को वारणावत नगर में निकाल दीजिये ॥ ५ ॥ पुत्र से कही बात को सुनकर धृतराष्ट्र ने थोड़ी देर सोचा और फिर दुर्योधन से बोला ॥ ६ ॥

मूल—धर्मनित्यः सदापण्डुस्तथा धर्मपरायणः। सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद् विशेषतः ॥७॥ निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः ॥ ८ ॥ तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः। गुणवान् लोकविख्यातः पौरवाणां सुसंमतः ॥ ९ ॥ स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः। पितृपैतामहाद्राज्यात् ससहायो विशेषतः ॥ १० ॥ भृता हि पाण्डुनाऽमात्याबलं च सततं भृतम्। भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः ॥ ११ ॥ ते पुरा सत्कृता-स्तात पाण्डुना नागरा जनाः । कथं युधिष्ठिरस्यार्थे न नो हन्युः सबान्धवान् ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्मशील पाण्डु, सारे ज्ञातियों से और विशेतः मुझ से सदा धर्मानुसार वर्तता था ॥ ७ ॥ वह स्वयं व्रतधारी हो कर राज्य सदा मुझे सौंपे रखता था ॥ ८ ॥ अब उस का पुत्र (युधि-ष्ठिर) भी, जैसे पाण्डु था, वैसे ही धर्म परायण, गुणवान् जगद्वि-ख्यात, और पुरवासियों का प्यारा हुआ है ॥ ९ ॥ उस को कैसे (हम) बल से इस पितृपैतामह राज्य से अलग कर सकते हैं, विशे-षतः जब वह साथियों वाला है (लोग उस का साथ देते हैं) ॥ १० ॥ पाण्डु मन्त्रियों का और सेना का सदा भरण पोषण किया करता था और विशेषतः उनके पुत्र पोतों का भरण पोषण करता था ॥ ११ ॥ हे तात ! जब नगर के सभी लोग पांण्डु से

सत्कृत हो चुके हैं, तो युधिष्ठिर के लिये वह क्यों बान्धवों समेत हमें न मार डालेंगे ॥ १२ ॥

मूल—दुर्योधन उवाच —एवमेतन्मया तात ! भावितं दोषमात्मनि । दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन पूजिताः ॥ १३ ॥ ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः । अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥ १४ ॥ स भवान पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति । मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम ॥ १५ ॥ यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन् भविष्यति । तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥ १६ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला ! यह ठीक ऐसे ही है, तथापि हे पितः ! अपने विषय में इस बढ़े हुए दोष को देख कर मैंने सब प्रकृतियों (दरबारियों) को धनमान से पूजा है ॥ १३ ॥ अब अवश्य ही वह हमारे साथी होंगे, विशेषतः धनकोष और मन्त्रिवर्ग तो इस समय हे महीपते ! मेरे ही अधीन है ॥ १४ ॥ सो आप किसी नर्म उपाय से जल्दी (इन को) वारणावत नगर में निकाल दीजिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब राज्य मेरे अधीन दृढ़ हो जाएगा, तब हे भारत ! कुन्ती पुत्रों समेत फिर आजाएगी ।१६।

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—दुर्योधन ममाप्येतद् हृदि संपरिवर्तते । अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवंतु विवृणोम्यहम् ॥ १७ ॥ नच भीष्मो नच द्रोणो नच क्षत्ता न गौतमः । विवास्यमानान् कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित ॥ १८ ॥ समाहि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक । नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥ १९ ॥ ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम् । कथं न वध्यतां तात ! गच्छाम जगतस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोला—यह बात हे दुर्योधन ! मेरे भी हृदय में घूमरही है, किन्तु यह पाप का संकल्प है, इस से प्रकट नहीं करता हूं ॥ १७ ॥ पाण्डवों का निकालना, न भीष्म न द्रोण न विदुर, न कृप, कभी अच्छा नहीं समझेंगे ॥ १८ ॥ हे बेटा ! कुरुओं को हम और वह सम हैं, इसलिये यह धर्मात्मा मनस्वी विषमता नहीं चाहेंगे ॥१९॥ सो इन महात्माओं से,सारे कुरुओं से तथा सारे जगत् से, कैसे हम वध के योग्य न ठहरेंगे ॥२०॥

मूल—दुर्योधन उवाच—मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः । यतः पुत्र स्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥ २१ ॥ कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत् । द्रोणंच भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥ २२ ॥ क्षत्ताऽर्थबद्ध स्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः । नचैकः स समर्थोऽस्मान् पाण्डवार्थेऽधि बाधितुम् ॥ २३ ॥ सुविस्रब्धः पाण्डु पुत्रान् सह मात्रा प्रवासय । वारणावत मद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु ॥ २४ ॥ विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्य मिवार्पितम् । शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥ २५ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला—भीष्म सदा मध्यस्थ है (दोनों को समान दृष्टि से देखता है) द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा) मेरे पक्ष में है, और यह निःसन्देह है, कि द्रोण उधर हों गे, जिधर पुत्र होगा ॥ २१ ॥ और जिधर यह दोनों होंगे, शरद्वान् के पुत्र कृप उधर होंगे, क्योंकि वह कभी (बहनोई) द्रोण को और भानजे को नहीं छोड़ें गे ॥ २२ ॥ विदुर अर्थ के बन्धन से तो हमारा है, पर गुप्त शत्रुओं से मेल रखता है, पर वह अकेला पाण्डवों के अर्थ हमें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता ॥ २३ ॥

सो आप निःशंक हो कर पाण्डवों को माता समेत भेज दीजिये जैसे बहुत जल्दी वारणावत को चले जाएं, वैसा कीजिये ॥२४॥ दहकती हुई भयंकर शोकाग्नि, जो शल्य की भांति मेरे हृदय में गड़ी है, और नींद नहीं पड़ने देती है, इसको इस कर्म से नाश कीजिये ॥ २५ ॥

अध्याय २१ (व० १४३) पाण्डवों का वारणावत को जाना

मूल—ततो दुर्योधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः । अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः । कथयां चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥ २ ॥ यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति । उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानाम्बिकासुतः ॥ ३ ॥ ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः । रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥ ४ ॥ ते तात यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते । सगणाश्च सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथाऽमराः ॥ ५ ॥ कश्चित्कालं विहृत्यैव मनुभूय परां मुदम् । इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥६॥

अर्थ—तदनन्तर राजा दुर्योधन ने अपने छोटे भाइयों से मिल कर सम्मान और धन देने से सारी प्रकृतियों को धीरे २ अपनी ओर खींच लिया ॥ १ ॥ और धृतराष्ट्र से प्रेरे हुए कई चतुर मन्त्री वारणावतनगर को रमणीय कहने लगे ॥ २ ॥ जब राजा धृतराष्ट्र ने समझा, कि उनको (देखने का) कुतूहल उत्पन्न हो गया है, तब उन से बोला ॥ ३ ॥ यह लोग मुझे नित्य बार २ कहते हैं, कि वारणावतनगर सारे भूमण्डल में बड़ा रमणीय है ॥ ४ ॥ सो हे पुत्रो ! तुम यदि वारणावत में

(रहना) उत्सव समझो, तो साथियों और परिवार समेत देवताओं की भांति वहां की सैर करो ॥ ५ ॥ कुछ काल वहां सैर कर, और परम प्रीति अनुभव करके, आनन्द से इस हस्तिना पुर में फिर लौटो ॥ ६ ॥

मूल—धृतराष्ट्रस्य तं काम मनुबुध्य युधिष्ठिरः। आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥ ७ ॥ एव मुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत। दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत स दुरात्मवान् ॥ ८ ॥ स पुरोचन मेकान्त मानीय भरतर्षभ। गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्य मब्रवीत ॥ ९ ॥ ममेयं वसुसम्पूर्णा पुरोचन वसुन्धरा। यथेयं मम तद्वत् ते स तां रक्षितुमर्हसि ॥ १० ॥ नाहि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया। सहायो येन सन्धाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥ ११ ॥ संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर। निपुणेनाभ्युपायेन यद् ब्रवीमि तथा कुरु ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भारत! राजा के पाण्डवों को ऐसी आज्ञादेने पर दुरात्मा दुर्योधन को हर्ष हुआ ॥ ८ ॥ वह अपने मन्त्री पुरोचन को एकान्त में लेजा, उसका दहना हाथ पकड़ कर, यह वाक्य बोला ॥ ९ ॥ हे पुरोचन! धनसे भरी यह धरती मेरी है, जैसे यह मेरी है, वैसे तेरी है, सो तुझे इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १० ॥ और कोई मेरा सहायक तुझ से बढ़ कर विश्वासी नहीं है, जिस के साथ मिलकर यह विचार करूं, जैसा तेरे साथ कर सकता हूं ॥ ११ ॥ हे प्यारे मन्त्र की रक्षा कर, और चतुर उपाय से मेरे शत्रुओं को उखाड़ दे, मैं जो कहताहूं, वैसे कर ॥

मूल—पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम्। उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १३ ॥ स त्वं रासभयुक्तेन

स्यन्दनेनाशुगामिना । वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥ १४ ॥ तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम् । नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥ १५ ॥ शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित् । आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय ॥ १६ ॥ सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया । मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय ॥ १७ ॥ शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैवहि । तस्मिन् वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः ॥ १८ ॥ यथा च तन्न पश्येरन् परीक्षन्तोपि पाण्डवाः । आग्नेयमिति तत्कार्यमपि चान्येपि मानवाः ॥ १९ ॥

अर्थ--धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत में भेजा है, धृतराष्ट्र की आज्ञा से वह उत्सव में विराजेंगे ॥ १३ ॥ सो तुम खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ से आजही जैसे वारणावत पहुंच जाओ, वैसा करो ॥ १४ ॥ वहां जाकर बड़ा धन खर्च करके नगर के समीप पूरा ढका हुआ एक चतुःशाल (चौपाल) घर बनवाओ ॥ १५ ॥ सन, राल आदि जो कोई आग्नेय (जल्दी जलनेवाली) वस्तुएं हैं, वह उस (घर) में दिलवानी ॥ १६ ॥ तथा घी, तेल, चर्वी और बहुत सी लाख के साथ मिट्टी को मिला कर दीवारों पर लेप दिलवाना ॥ १७ ॥ सन, तेल, घी, लाख और लकड़ियें, यह सब उस घर में जगह २ डलवाना ॥ १८ ॥ पर ऐसा करना, कि जैसे पाण्डव वा दूसरे लोग भी परीक्षा करते हुए भी देख न सकें, कि यह आग्नेय है ॥ १९ ॥

मूल—वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान् परमार्चितान् । वासयेथाः पाण्डवेयान् कुन्तीं च ससुहृज्जनाम् ॥ २० ॥ आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च । विधातव्यानि पाण्डूनां यथा

तुष्येत वै पिता ॥ २१ ॥ यथा च तन्न जानन्ति नगरे वारणावते। तथा सर्वं विधातव्यं यावत् कालस्य पर्ययः ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान्। अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः ॥ २३ ॥ दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः। न गर्हयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित् ॥ २४ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय पौरवाय पुरोचनः। प्रायाद् रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥२५॥ स गत्वा त्वरितं राजन् दुर्योधनमते स्थितः। यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥ २६ ॥

अर्थ—वहां जाकर इस प्रकार घर के तय्यार हो जाने पर मित्रों समेत पाण्डवों को और कुन्ती को बड़े आदर पूर्वक उसमें बसाना ॥ २० ॥ वहां पाण्डवों के लिये उत्तम आसन यान और शय्या बनवानी, जिससे कि पिता प्रसन्न हो जाए ॥ २१ ॥ और सारा काम ऐसा करना कि जबतक ठीक समय न आजाए, वारणावत में कोई भी यह न जान सके ॥ २२ ॥ जब उन को सब ओर से बेधड़क हो निश्चिन्त सोए तू देखे, तब उस घर के द्वारसे आग लगा देनी ॥२३॥ तब लोग कहेंगे, कि अपने घर के जलने पर जले हैं, सो पाण्डवों के लिये वह हमारी निन्दा नहीं करेंगे, ॥२४॥ पुरोचन 'तथास्तु' इस प्रकार दुर्योधन से प्रतिज्ञा कर खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ से चला ॥ २५ ॥ और हे राजन् पुरोचन ने जल्दी वहां पहुंच कर, दुर्योधन की आज्ञानुसार, जैसे उस ने कहा था, सब पूरा किया ॥ २६ ॥

अ० २२ (व० १४५) पाण्डवों का वारणावत को जाना

मूल—पाण्डवास्तु रथान् युक्त्वा सदश्वैरनिलोपमैः। आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत् ॥ १ ॥ राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य

द्रोणस्य च महात्मनः । अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥ २ ॥एवं सर्वान् कुरून् वृद्धानभिवाद्य यतव्रतः । समालिङ्ग्य समानान् वै बालैश्चाप्यभिवादिताः ॥ ३ ॥ सर्वा मातॄस्तथाऽऽपृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ॥ ४ ॥ विदुरश्च महाप्राज्ञः तथाऽन्ये कुरुपुंगवाः । पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वीयुः शोककर्शिताः ॥ ५ ॥

अर्थ—पाण्डव वायुतुल्य अच्छे घोड़ों से रथों को जोड़ कर, चढ़ने के समय, आर्तवत, भीष्म के, राजा धृतराष्ट्र के, महात्मा द्रोण के, कृपके, विदुर के, तथा अन्य वृद्धों के चरण ग्रहण करते भए ॥१,२॥ वह व्रतधारी इसप्रकार कुरुवृद्धों को प्रणाम कर, अपने जोड़ियों को गले लगाकर, और बालकों से प्रणाम लेकर, सब माताओं से आज्ञा लेकर और उन की प्रदक्षिणः कर, और सब प्रकृतियों (दरबारियों) से (आज्ञा लेकर) वारणावत को चले ॥३, ४॥ महाप्राज्ञ विदुर, तथा और कुरुवर, और पुरवासी शोकार्त हुए उन पुरुषवरोंके पीछे २ चले ॥ ५ ॥

मूल—तत्र केचिद् ब्रुवन्तिस्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा । विषमं पश्यते राजा नच धर्मं प्रपश्यति ॥ ६ ॥ अधर्ममिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते । विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते ॥७॥ पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा । विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः ॥ ८ ॥ स तस्मिन् पुरुषव्याघ्रे देवभावं गतेसति । राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥ ९ ॥ वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात् । गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

अर्थ—उनमें से कई निडर ब्राह्मण आदि कहने लगे, राजा

(धृतराष्ट्र) पक्षपात से देखरहा है, वह धर्म की ओर दृष्टि नहीं डाल-रहा ॥ ६ ॥ इस अत्यन्त अधर्म को भीष्म ने कैसे मान लिया, जिसने कि इनका निकालाजाना, यह अनुचित कर्म, मान लिया ॥ ७ ॥ हमारे पिताके तुल्य राजा हुआ है पहले शान्तनुपुत्र राजर्षि विचित्रवीर्य, फिर कुरुनन्दन पाण्डु ॥ ८ ॥ इन पुरुषवर (पाण्डु के स्वर्ग सिधारने पर, अब इन बाल राजपुत्रों को धृतराष्ट्र सह नहीं सकता है ॥ ९ ॥ हम सब इस (अत्याचार) को न चाहते हुए, घर तज कर, इस नगर से वहां जाएंगे, जहां युधिष्ठिर जाएगा ॥ १० ॥

मूल–तांस्तथावादिनः पौरान् दुःखितान् दुःखकर्षितः । उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥ पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः । अशंकमानैस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् ॥ १२ ॥ भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान् कृत्वा प्रदक्षिणम् । प्रतिनन्द्य तथाशीर्भिर्निवर्तध्वं यथागृहम् ॥ १३ ॥ यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भि रुपपत्स्यते । तदा करिष्यथास्माकं प्रियाणि च हितानि च ॥ १४ ॥ एवमुक्ता स्तदा पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । आशीर्भिश्चाभिनन्द्यैतान् जग्मुर्नगरमेव हि ॥ १५ ॥

अर्थ—दुःखित हो ऐसा कहते हुए पुर के लोगों से धर्मराज युधिष्ठिर दुःख से दुर्बल हुआ मन ही मन में सोच कर बोला ॥ ११ ॥ राजा हमारे पिता हैं, माननीय हैं, गुरु हैं, और प्रधान हैं, वह जो कहते हैं, उसे बिना शंका पूरा करना हमारा व्रत है १२ ॥ आप हमारे हिती हैं, हमारी प्रदक्षिणा कर और असीसें देकर घरों को लौटो ॥ १३ ॥ जब आप से हमें काम पड़ेगा, तब

हमारा प्रिय और हित कीजियेगा ॥१४॥ ऐसा कहे हुए वह उन की प्रदक्षिणा कर और असीसें देकर नगर को लौटे ॥ १५ ॥

मूल–पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सर्वधर्मवित् । बोधयन् पाण्डवश्रेष्ठ मिदं वचन मब्रवीत् ॥ १६ ॥ प्रज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः ॥ १७ ॥ यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् । विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा ॥ १८ ॥ अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् । यो वेत्ति नतु तंघ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥ १९ ॥ कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः । न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति सजीवति ॥ २० ॥ नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः । नाधृतिर्भूतिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः ॥ २१ ॥ अनाप्तैर्दत्त मादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् । श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥ २२ ॥ चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः । आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन्नानुपीड्यते ॥ २३ ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजा युधिष्ठिरः । विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञात मित्येव पाण्डवाः ॥ २४ ॥

अर्थ–पुरवासियों के लौटने पर, सर्वनीतियों का ज्ञाता म्लेच्छभाषा का जानने वाला प्राज्ञ विदुर, म्लेच्छभाषा के जानने वाले युधिष्ठिर को इशारा देता हुआ यह वचन बोला ॥ १६–१७ ॥ जिस ने नीतिशास्त्र पर चलने वाली शत्रु की बुद्धि जानली है, उसे जान कर ऐसा काम करना चाहिये, जिस से कि विपद् से निस्तारा पा सके ॥ १८ ॥ ऐसा तीक्ष्ण शस्त्र जो लोहे का तो नहीं, पर शरीर के टुकड़े २ कर देता है, (अग्नि),जो उस को जानता है,और उलटा (इस से शत्रु पर) वार करना जानता है, उस को शत्रु नहीं मार सकते (अर्थात् आग

से बचना, उलटा उस पुरोचन को आग से जलाना, जो तुम्हें जलाने के लिये उद्यत हुआ है) ॥ १९ ॥ सूखे तिनकों का नाशक और ठंड का नाशक (=अग्नि) बड़े वन में (लगा हुआ भी) बिल में रहने वालों को नहीं जला सकता है,यह जान कर जो अपनी रक्षा करता है, वह जीता रहता है (अर्थात् तुम्हारे रहने का स्थान वहां सूखे तिनकों के बन तुल्य होगा, वहां आग लगेगी, तुम ने सुरंग के द्वारा अपने को बचाना)॥२०॥ जो आंख वाला नहीं, वह न मार्ग को जानता है, न दिशाओं को जानता है, जो धीरज वाला नहीं, वह ऐश्वर्य नहीं पा सकता, इस को समझो, जो मैंने समझाया है, (=दूरदर्शी बन कर अपने आगामी लक्ष्य पर और उस को पाने के उपायों पर दृष्टि रक्खो, और धीरज के साथ वहां तक पहुंचने की चेष्टा करो, सावधान रहो, कहीं चूक जाओगे, वा जल्दी करोगे, तो काम बिगड़ जाएगा) ॥ २१ ॥ जो पुरुष बेगानों से दिये, लोहे से न बने शस्त्र को पकड़ता है, वह सेह जैसे घर को पाकर आग से बच सकता है (=सेह अपने बिल का मुंह दोनों ओर रखती है, एक ओर से शत्रु आक्रमण करे,तो दूसरे मुंह से निकल भागती है,सो तुम्हारा बचाव ऐसी सुरंग से होगा, जिस का एक मुंह घर में, और दूसरा दूर बन में जा खुले, जब पुरोचन आग दे, तो उस मुंह से निकल भागना) ॥ २२ ॥ पुरुष घूमता घामता मार्गों को जानता है (=शिकार के बहाने से घूम घूम कर सारे मार्ग जान छोड़ने) नक्षत्रों से दिशाओं का पता लगालेता है (बच कर भी हस्तिनापुर को न आना, किसी और ही दिशा को चले जाना, न हो कि दुर्योधन खुल्लम खुल्ला मरवाडाले) जो स्वयं अपने

पांचों को पीड़ा देता है, वह (शत्रुओं से) पीसा नहीं जाता जितेन्द्रिय हो कर रहो गे, तो शत्रु तुम को नहीं दबासकेगें ॥२३॥ ऐसे कहे हुआ पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर पण्डितवर विदुर से बोला, कि मैं समझ गया ॥ २४ ॥

मूल—अनुशिक्ष्यानुगम्यतौन् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्। पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥ २५ ॥ निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा। अजातशत्रु मासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ क्षत्ता यदब्रवीद् वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव। त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ॥ २७ ॥ यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं न च सदोषवत्। श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥ २८ ॥

अर्थ—इस प्रकार विदुर उनको शिक्षा देकर और कुछ दूर साथ चल कर पाण्डवों को (जाने की) अनुज्ञा देकर, घर लौटा ॥ २५ ॥ विदुर, भीष्म और पुरवासियों के लौट जाने पर कुन्ती युधिष्ठिर के निकट आकर बोली ॥ २६ ॥ विदुर ने लोगों के मध्य में न कहते हुए की भांति जो कहा है, और तूने "ठीक समझ लिया" कहा है, वह हम नहीं समझे हैं ॥ २७ ॥ यदि यह हमारे जानने योग्य है, कोई हानि नहीं, तो मैं वह तेरा और उसका संवाद सारा सुनना चाहती हूं ॥ २८ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत्। पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित् स्यादिति धर्मधीः ॥ २९ ॥ जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यसीति च मेऽब्रवीत्। विज्ञातमिति तत्सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया ॥ ३० ॥ अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते। वारणावत मासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर बोले—विदुर ने मुझे कहा है, "घर से आग का भय" जानो, मार्ग कोई तुम्हें अज्ञात न रहे ॥२९॥ जो जितेन्द्रिय होगा, वही पृथिवी को पाएगा, यह उसने मुझे कहा है, और मैंने विदुर को यह उत्तर दिया है, कि मैं सब समझ गया ॥ ३० ॥ फागुन के आठवें दिन रोहिणी नक्षत्र में उन्हों ने यात्रा की, और वारणावत में पहुंच कर उन्हों ने नगर के लोगों से भेंट की ॥३१॥

अध्याय २२ (व० १४६) युधिष्ठिर भीम संवाद

मूल—ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद् वारणावताद् । अभिजग्मुः नरश्रेष्ठान् श्रुत्वेव परया मुदा ॥ १ ॥ ते समासाद्य कौन्तेयान् वारणवतका जनाः। कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्यावतस्थिरे ॥ २ ॥ सत्कृताश्चैव पौरैस्ते पौरान् सत्कृत्य चानघ । अलंकृत जनकीर्ण विविशु वारणावतम् ॥ ३ ॥ ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मु रथोगृहान् । ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥४॥ नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा । उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्य शूद्र गृहाण्यपि ॥ ५ ॥

अर्थ—अनन्तर सब प्रधानपुरुष (पाण्डवों का आना) सुनते ही वारणावत नगर से निकल पड़े आनन्द से उन पुरुषवरों की ओर गए ॥ १ ॥ वह वारणावत के लोग पाण्डवों के निकट जाकर 'जयदेव' और असीसें कह कर चारों ओर खड़े हो गए ॥ २ ॥ हे निष्पाप ! पुरवासियों से सत्कार पाकर, और पुरवासियों का सत्कार करके वह सजे हुए, और देखने वालों की भीड़ से घेरे हुए वारणावत में प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥ हे महीपाल पुर में प्रवेश करते ही वह वीर पहले अपने कर्मों में रते हुए ब्राह्मणों

के घरों में गए ॥ ४ ॥ आगे नगर के अधिकारियों, रथियों वैश्यों और शूद्रों के घरों में गए ॥ ५ ॥

मूल—अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ । जग्मुरावसथं पश्चात् पुरोचनपुरःसराः ॥ ६ ॥ तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च । आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥ ७ ॥ तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः । उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ--हे भरत श्रेष्ठ ! पाण्डव पुरवासियों से पूजे जाकर पीछे पुरोचन के साथ घर गए ॥ ६ ॥ पुरोचन ने उन के लिये खाने पीने की वस्तुएं, उत्तम शय्याएं, और मुख्य आसन ला दिये॥७॥ वहां वह उस (पुरोचन) से पूजे जाकर और पुरवासी लोगों से सेवा किये जाकर बहुमूल्य समान के साथ रहने लगे ॥ ८ ॥

मूल—दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः । निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥९॥ तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः ॥ १० ॥ तत्रागारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतांवरः । उवाचाग्नेयमित्येवं भीममेनं युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥ जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् । कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परंतप ॥१२॥ शणसर्जरसं व्यक्त मानीय गृहकर्मणि। मुंजबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम् ॥१३॥ शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः॥१४॥ इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तथा । आपदं तेन मां पार्थ स संबोधितवान्पुरा ॥ १५ ॥ ते वयं बोधितास्तेन नित्यमस्मद्धितैषिणा । पित्रा कनीयसा स्नेहाद् बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम् ॥१६ ॥ अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥ १७ ॥

अर्थ--वहां जब वह दस रातें रह चुके, तब पुरोचन ने उन को वह शिव नाम वाला (वस्तुतः) अशिव घर निवेदन किया ॥ ९ ॥ उस में वह पुरुषवर सामान समेत प्रविष्ट हुए ॥ १० ॥ सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर उस घर को देख कर भीमसेन से बोले. कि यह आग्नेय (झटपट जलने वाला) है ॥ ११ ॥ हे परंतप! घी और लाखसे मिला, चर्बी का गन्ध, सूंघता हुआ मैं इस घरको स्पष्ट आग्नेय जानता हूं ॥ १२ ॥ घर बनाने में सन, राल, मुंज, छाल और बांस यह सब द्रव्य लाकर, घी से भिगो कर, घर के काम में शिक्षित (शत्रुओं के) विश्वासी शिल्पियों ने बड़ा उत्तम बनाया है, यह पापी पुरोचन मुझे विश्वास देकर यहां जलाना चाहता है ॥ १३, १४ ॥ महामति विदुर ने (हमारी) इस विपद् को जान लिया था, इस लिये हे पार्थ उसने ! मुझे सावधान किया था ॥ १५ ॥ उस हमारे सदा हितैषी छोटे पिता (चचा) ने स्नेह से हमें सावधान कर दिया था, कि दुर्योधन के वशवर्ती छुपे हुए नीचों ने इस अशिव घर को बनाया है ॥ १६, १७ ॥

मूल—भीमसेन उवाच—यदिदं गृह माग्नेयं विहितं मन्यते भवान्। तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—इह यत्तै निराकारैर्वस्तव्य मिति रोचये। अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥ १९ ॥ यदि विन्देत चाकारमस्माकं स पुरोचनः। क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्यापि दहेत नः ॥ २० ॥ नायं बिभेत्युपक्रोशादधर्माद्वा पुरोचनः। तथा-हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ॥ २१ ॥ अथवापीह दग्धेषु भीष्मोऽस्माकं पितामहः। धर्म इत्येव कुप्येरन् ये चान्ये कुरु पुंगवाः ॥ २२ ॥ वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेमाहि।

स्पशै र्निर्घातयेव सर्वान् राज्यलुब्धः सुयोधनः ॥ २३ ॥ अपद-स्थान् पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः । हनिकोशान् महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥ तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् । वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नावासं क्वचित् क्वचित् ॥२५॥ ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् । तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् ॥ २६ ॥ भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् । गूढश्वासान् न नस्तत्र हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥ २७ ॥ वसतोऽत्र यथा चास्मान् न बुध्येत पुरोचनः । पौरो वापि जनः कश्चित् तथा कार्यं मतन्द्रितैः ॥ २८ ॥

अर्थ—भीमसेन बोले—यदि आप इस घरको आग्नेय बना हुआ जानते हैं तब हम भलेही वहीं चले चलें, जहां पहले रहे हैं ॥१८ युधिष्ठिर बोले ! मुझे यह पसन्द है, कि हम (अन्दर से) पूरे साव-धान हो कर, बाहर से वैसे ही भोले बनकर, यहां से निकलने का अचूक उपाय ढूंढते हुए अप्रमत्त हो कर यहां ही रहें ॥ १९ ॥ क्योंकि पुरोचन यदि हमारे भाव को जान जाएगा, तो वह शीघ्र कारी हो कर धक्के से भी हमें जला डालेगा ॥ २० ॥ यह नीच पुरोचन सुयोधन के ऐसा वश में पड़ा हुआ है, कि न यह लोक निन्दा से डरता है, न अधर्म से ॥ २१ ॥ और यह भी है, कि यहां हमारे जलने (की बात उड़ने) पर, हमारा पितामह भीष्म और दूसरे कुरुवर भी धर्म जान (सुयोधन के) विरुद्ध भड़केंगे ॥ २२ ॥ यदि हम दाह के भय से (प्रकाशतः) भागजाएं, तो राज्य लोभी दुर्योधन गुप्तचरों द्वारा हम सब को मरवा सकता है॥२३॥क्योंकि हम किसी पद पर नहीं, वह राज्यपद पर स्थित है, हमारे सहायक नहीं, उस के सहायक हैं, हम कोशहीन है,

उस के पास महाकोश है, इसलिये वह निःसंदेह हमें उपायों द्वारा मरवा सकता है ॥ २४ ॥ इसलिये हमें चाहिये, कि इस पापी को, और उस पापी सुयोधन को ठग कर जहां तहां गुप्त वास से रहें ॥ २५ ॥ सो हम लगातार शिकार खेलते हुए इस भूमि को घूम डालें, जिस से कि भागते समय हमें सब मार्ग विदित होंगे ॥ २६ ॥ आज ही गुप्तरूप से भूमि में एक सुरंग बनाएंगे, उस में गुप्तरूप से बसते हुए हम को अग्नि नहीं जलाएगी, ॥२७॥ हमें सावधान हो कर ऐसा करना चाहिये, कि यहां (सुरंग में) रहते हम को, न पुरोचन, न कोई और पुरवासी, जानसके॥२८॥

अ०२४ (व०१४७) सुरंग बनवाना

मूल—विदुरस्य सुहृत् कश्चित् खनकः कुशलो नरः। विविक्ते पाण्डवान् राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम्। पाण्डवानां प्रियं कार्य मिति किं करवाणि वः ॥ २ ॥ किञ्चिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचाऽसि पाण्डव। त्वया च तत् तथेत्युक्तमेतद् विश्वासकारणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—इधर विदुर का एक सुहृद्, जो बड़ा चतुर खनक (सुरंगें बनाने वाला) था, वह (वहां आ) एकान्त में पाण्डवों से बोला ॥ १ ॥ मैं एक निपुण खनक हूं, मुझे विदुर ने भेजा है, कि पाण्डवों का जाकर हित कर, सो कहिये, आप का क्या काम करूं ॥ २ ॥ हे पाण्डव ! विदुर ने कुछ आप को म्लेच्छ-भाषा में कहा था, और आप ने उस के उत्तर में कहा था 'ठीक' यह आप को मेरे ऊपर विश्वास होने का कारण है ॥ ३ ॥

मूल—उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै ॥ ४ ॥ शुचिमाप्तं प्रियं चैव

सदा च दृढभक्तिकम् ॥ ५ ॥ यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि । भवतश्च यथा तस्य पालयास्मान् यथा कविः ॥ ६ ॥ इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः । पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ७॥ समृद्धमायुधागार मिदं तस्य दुरात्मनः । वप्रान्तं निष्प्रतीकारमाश्रित्येदं कृतं महत् ॥ ८ ॥ सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्टवान् पुरा । पुरोचनस्याविदितानस्मांस्त्वं प्रतिमोचय ॥९॥

अर्थ—सच्चे धीरज वाले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उसे बोले-सौम्य! मैं तुझे पहचानता हूं, तू विदुर का सुहृद्, शुद्ध स्वभाव, विश्वासी, प्यारा, और सदा दृढभक्ति वाला है, ॥ ४,५॥ तू जैसा उन का है, वैसा ही हमारा है, हम भी तुझ में कोई भेद नहीं रखते, और हम भी आप के वैसे ही हैं, जैसे विदुर जी, सो तुम भी हमारी इस तरह रक्षा करो, जैसे विदुरजी करते हैं ॥६॥यह आग्नेय घर मेरे लिये ही दुर्योधन की आज्ञा से पुरोचन ने बनाया है, यह मैं जानता हूं ॥ ७ ॥ देखो यह उस दुरात्मा की बड़ी भारी अस्त्र-शाला है, इस के साथ ही यह (हमारे रहने का) बड़ा घर ऐसा बनाया है, कि कोट (फसील) के सिरे तक बे इलाज है (बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं रहने दिया) ॥८॥ सो अब यह विपद् सामने आई है, जिस को विदुर जी ने पहले ही देख लिया था, अब तू पुरोचन से बे मालूम हमें इस से बचा दे ॥ ९ ॥

मूल—स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्न मास्थितः । परिखा मुत्किरन्नाम चकार च महद् बिलम् ॥ १० ॥ चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्येनाति महद् बिलम् । कपाटयुक्त मज्ञातं समं भूम्याश्च भारत॥११॥ पुरोचनभयाद्देव व्यदधात् संवृतं मुखम् । स तस्य तु गृहद्वारि वसत्य शुभधीः सदा ॥ १२॥ तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्तिस्म क्षपां नृप ।

दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद् वनम् ॥ १३ ॥ विश्वस्त वदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम् । अतुष्टास्तुष्टवद् राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥ १४ ॥ न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः। अन्यत्र विदुरामात्यात् तस्मात् खनकसत्तमात् ॥ १५ ॥

अर्थ—'तथास्तु' कहकर खनक यत्न में लग गया, प्रकाशतः खाई छीलते हुए ने वड़ी सुरंग बनादी (कोट के गिर्द की खाई को संवारने का वहाना रक्खा, ताकि मट्टी फैंकने का अवसर मिलता रहे) ॥ ११ ॥ उस घर के भीतर एक वड़ी सुरंग बनाई, और उस में एक वे मालूम किवाड़ लगाकर भूमि के वराबर कर दिया ॥ ११ ॥ पुरोचन के डर से ही उस का मुंह ढांपदिया, क्योंकि अशुभचिन्तक पुरोचन उस घर के द्वार पर सदा रहता था ॥१२॥ वह पाण्डव भी हे राजन् ! रात को शस्त्र धारे हुए उस(सुरंग) में रहते थे, और दिन को वन से वन में घूमते हुए मृगया करते फिरते थे ॥ १३॥ विश्वास न रख कर भी विश्वासी के समान, असन्तुष्ट हो कर भी संतुष्ट के समान, इस प्रकार पुरोचन को ठगते हुए वह वड़े विस्मित हो कर रहते थे॥ १४ ॥ और विदुर के मन्त्री उस खनकवर के विना और कोई नगरवासी उन को नहीं जानता था ॥ १५ ॥

अ० २५ (व० १४८) जतुगृह दाह ।

मूल—तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परि संवत्सरोषितान् । विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥१॥ पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः । भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ चोवाच धर्मवित् ॥२॥ अस्मानयं सुविश्वस्तान् वेत्ति पापः पुरोचनः । वञ्चितोऽयं नृशंसा-

त्मा कालं मन्ये पलायने ॥ ३ ॥ आयुधागारमादीप्य दग्ध्वाचैव पुरोचनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—बरस भर रह चुके हुए उनको प्रसन्नमन और विश्वस्त की भांति जानकर पुरोचन हर्ष करनेलगा ॥ १ ॥ पुरोचन को ऐसा हर्ष से भरा देख, नीतिज्ञ युधिष्ठिर ने, भीम अर्जुन नकुल और सहदेव से कहा ॥ २ ॥ यह पापी पुरोचन हमें विश्वस्त जानता है,सो यह ठग आप ठगा गया है । अब इस शस्त्रागारको आगलगा कर, पुरोचन को जला कर, भागने का वेला है,यह मेरी मति है ॥

मूल—अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् । चक्रे निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः ॥५॥ ता विहृत्य यथाकामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत । जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम्॥ ६ ॥ निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन् भोज्ये यदृच्छया । अन्नार्थिनी समभ्यागाद सपुत्रा कालचोदिता ॥ ७ ॥ सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला । सह सर्वैः सुतैराजंस्तस्मिन्नेव निवेशने ॥ ८ ॥ सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ॥ ९ ॥

अर्थ—हे महाराज ! अब कुन्ती ने रात को दान के बहाने से ब्राह्मणभोजन किया, वहां बहुतसी स्त्रियां आईं ॥ ५ ॥ हे भारत ! वह अपनी रुचि अनुसार खा पी कर आनन्द मनाकर कुन्ती से अनुज्ञा ले कर अपने२ घरों को चली गईं ॥ ६ ॥ दैववश काल से प्रेरी हुई अन्नार्थिनी एक निषादी पांचपुत्रों समेत उस भोज्य में आई ॥७ ॥ वह पुत्रों समेत मदिरा पीकर, उन्मत्त हुई हे राजन् ! पुत्रों समेत उसी घर में मृत के समान बेसुध सोगई ॥ ८,९ ॥

मूल—अथ मवाते तुमले निशि सुप्तजने तदा। तदुपादीपयद् भीमः शेते यत्र पुरोचनः ॥१०॥ ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः। समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने ॥ ११ ॥ ज्ञात्वा तु तद् गृहं सर्वं मादीप्तं पाण्डुनन्दनाः। सुरंगां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धमरिन्दमाः ॥१२ ॥ ततः मतापः सुमहाञ्छब्दश्चैव विभावसोः। प्रादुरासीत् तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः ॥१३॥ तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः पौराः कृशाननाः ॥ १४ ॥

अर्थ—अब रात को जब लोग सब सो गए थे, पवन वेग से बह रही थी, उस समय भीम ने पहले उस (घर) को आग लगाई, जहां पुरोचन सोया हुआ था ॥ १० ॥ पीछे जतुगृह के द्वार को आग लगाई, और फिर उस घर में चारों ओर आग लगा दी ॥११ ॥ उस सारे घर को जलते देख कर वह शत्रुनाशी पाण्डु-पुत्र माता सपेत झट सुरंग में मविष्ट हुए ॥ १२ ॥ तदनन्तर अग्नि के तेज और भारी शब्द प्रकटे, उस से सब लोग जाग उठे ॥ १३ ॥ उस घर को जलता देख पुरवासी मलिन मुखों से बोले ॥ १४ ॥

मूल—दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृत बुद्धिना। गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥ १५ ॥ अहो धिग् धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा। यः शुचीन् पाण्डुदायादान् दाहयामास शत्रुवत् ॥ १६ ॥ दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽय मतिदुर्मतिः। अनागसः सुविश्वस्तान् यो ददाह नरोत्तमान् ॥ १७ ॥ एवं ते विलपन्तिस्म वारणावतका जनाः। परिवार्य गृहं तच्च तस्थूरात्रौ समन्ततः ॥ १८ ॥ पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः। बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः ॥ १९ ॥

अर्थ–दुर्योधन के भेरे हुए दुर्मति पापात्मा (पुरोचन) ने यह घर अपनों (पांडवों) के नाश के लिये बनाया था और अब उसे आग लगाई है॥१५॥अहो धिक् धृतराष्ट्र की बुद्धि खरी नहीं, जिसने कि शुद्ध स्वभाव पाण्डु दायादों को शत्रु की न्याई जलवा दिया ॥१६॥ यह तो अब अच्छा हुआ है, कि यह अति दुर्मति पापात्मा भी दग्ध होगया है, जिस ने निर्दोष, सुविश्वस्त इन नरोत्तमों को जलाया ॥ १७ ॥ इस प्रकार विलपते हुए वारणावत के लोग रातको उस घर को चारों ओर से घेर कर खड़े रहे ॥ १८ ॥ इधर पाण्डव माता सहित बड़े दुःखित हुए उस सुरंग से निकल कर बेमालूम झट दूर निकल गए ॥ १९ ॥

अ० २६ (व० १४९) गंगा से पार उतरना

मूल–एतस्मिन्नेव काले तु यथासंप्रत्ययं कविः । विदुरः प्रेषयामास तद्वनं पुरुषं शुचिम् ॥ १ ॥ स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान् ददृशे वने । जनन्या सह कौरव्य मापयानान् नदी-जलम् ॥२॥ ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा । पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ॥ ३ ॥ सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् । शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विस्रंसिभिः कृताम् ॥ ४ ॥

अर्थ–इसी समय पण्डित विदुर ने ठीक पते के साथ एक शुद्ध स्वभाव पुरुष को उस वन में भेज दिया हुआ था ॥ १ ॥ उसने ठीक स्थान पर पहुंच कर पाण्डवों को वन में देखा, जो माता समेत नदी का जल नाप रहे थे ॥ २ ॥ वहां विदुर से भेजे उस बुद्धिमान् पुरुष ने पाण्डवों को नाव दिखलाई, जो मन

और वायु तुल्य (शीघ्र) चलने वाली, सब प्रकार की आंधियों को सहारने वाली, यन्त्रों से युक्त, झंडियों वाली, जो वहां पवित्र गंगा तट पर विश्वासी पुरुषों ने बनाई थी ॥ ४ ॥

मूल—ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम् । युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ॥ ५ ॥ कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः । न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥६॥ तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयाऽनया । भूयश्चैवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित् ॥ ७ ॥ कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे । शकुनिं चैव कौन्तेय विजेतासि न संशयः ॥ ८ ॥ इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी । मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद् देशान्न संशयः ॥ ९ ॥

अर्थ—फिर उसने पहले का कहा हुआ एक इशारा बतलाया, कि हे युधिष्ठिर ! विश्वास के लिये विदुर का यह वचन समझ ॥ ५ ॥ सूखे तिनकों का और ठंड का नाशक (अग्नि) बड़े वन में बिल में रहने वालों को नहीं नाश करता है, ऐसा जान जो अपनी रक्षा करता है, वह जीता है, ॥ ६ ॥ इस इशारे से मुझे विदुर से भेजा हुआ विश्वासी जान, और सब कामों के जानने वाले विदुर ने मुझे यह और भी कहा है ॥ ७ ॥ कर्ण को और भाइयों समेत दुर्योधन को, और शकुनि को, हे अर्जुन! तू जीतेगा, इसमें संशय नहीं ॥ ८ ॥ यह जलमार्ग में काम देने वाली, जलों में सुख से जाने वाली नाव तुम सब को इस स्थान से बचाएगी, इस में संशय नहीं ॥ ९ ॥

मूल—अथ तान् व्यथितान् दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान् । नावमारोप्य गंगायां प्रस्थितानब्रवीत् पुनः ॥ १० ॥ विदुरो

मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः। अरिष्टं गच्छताव्यग्राः पन्थानमिति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ तारयित्वा ततो गंगां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः। जयाशिषः प्रयुज्याथ यथाऽऽगतमगाद्धि सः ॥ १२ ॥ पाण्डवाश्च महात्मानः प्रतिसंदिश्य वै कवेः। गंगामुत्तीर्य वेगेन जग्मुर्गूढमलक्षिताः ॥ १३ ॥

अर्थ—अब उन को दुःखित देख माता समेत उन नरोत्तमों को नाव पर चढ़ा कर गंगा में चलते हुओं से फिर बोला ॥ १० ॥ कि विदुर ने यह और कहा था, कि उन के मस्तक चूम कर और गले लगा कर कहना, बिना घबराए कल्याण से मार्ग पर जाओ ॥ ११ ॥ तब वह उन को पार ले गया, और पार पहुंचे हुओं को जय के आशीर्वाद देकर जहां से आया था चला गया ॥ १२ ॥ महात्मा पाण्डव भी विदुर के प्रति संदेश देकर, गंगा से पार हो बेमालूम छुपे२ जल्दी २ चलने लगे ॥ १३ ॥

अ० २७ (व० १५०) पाण्डवों का वन में प्रवेश

अथ रात्र्यां व्यतीतायां ते जना ददृशुस्तदा। जातुषं तद् गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥ १ ॥ नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा। पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ २ ॥ विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः। दग्धवान् पाण्डुदायादान् ह्येनं प्रतिषिद्धवान् ॥ ३ ॥ ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः। संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान् दग्धवानसि ॥ ४ ॥ ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम्। निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥ ५ ॥ खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम्। पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम् ॥ ६ ॥

अर्थ—इधर रात के बीतने पर नगरवासी जनों ने लाख के घर को और मन्त्री पुरोचन को दग्ध हुआ देखा ॥ १ ॥ और वह रो २ कर कहने लगे, निःसंदेह यह पाण्डवों के नाश के लिये पापात्मा दुर्योधन ने ऐसा किया है ॥ २ ॥ निःसंदेह धृतराष्ट्र की सम्मति में उस के पुत्र ने पाण्डु के पुत्रों को जलाया है, धृतराष्ट्र ने उस को रोका नहीं ॥ ३ ॥ सो हम दुरात्मा धृतराष्ट्र को संदेश भेजते हैं, कि तेरी बड़ी आशा पूरी हुई, तूने पाण्डवों को जला मारा है ॥ ४ ॥ तदनन्तर पाण्डवों के ढूंढने के लिये आग को बुझाते हुए उन्हों ने पांचपुत्रों के सहित जली हुई वह निरपराध निषादी देखी ॥ ५ ॥ और इस घर को साफ करते हुए उस खनक ने वह सुरंग मिट्टी के ढेर से ढक दी, अत एव वह लोगों ने नहीं जानी ॥ ६ ॥

मूल—ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः । पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद् राजा सुमहदप्रियम् । विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥ ८ ॥ अद्य पाण्डुर्मृतो राजा मम भ्राता महायशाः । तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ ९ ॥ गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् । सत्कारयन्तु तान्वीरान् कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥ १० ॥

अर्थ—तदनन्तर उन नगरवासियों ने धृतराष्ट्र को सूचना दी, कि पाण्डव और मन्त्री पुरोचन अग्नि से जल गए हैं ॥ ७ ॥ राजा धृतराष्ट्र ने, पाण्डु के पुत्रों का नष्ट होना, यह बहुत बड़ा अप्रिय जब सुना, तो बड़ा दुःखित हो विलाप करने लगा ॥ ८ ॥ आज मेरा भाई महायशस्वी पाण्डु मरा है, जब कि माता समेत

वह वीर जल गए हैं ॥ १० ॥ अब अपने घर के लोग शीघ्र वारणावत नगर में जाएं, उन वीरों का और कुन्तिराज की पुत्री का सत्कार (संस्कार) करें ॥ १० ॥

मूल—रुरुदुःसहिताः सर्वे भृशंशोकपरायणाः । अन्ये पौरजनश्चैवमन्वशोचन्त पाण्डवान् ॥ ११ ॥ विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः ॥ १२ ॥

अर्थ—अत्यन्त शोकग्रस्त हुए वह सब मिल कर रोने लगे, पुरवासी दूसरे लोग भी पण्डवों का बहुत शोक करते भए ॥ ११ ॥ हां विदुर ने थोड़ा शोक किया, क्योंकि वह तत्त्व जानता था ॥ १२ ॥

अ० २८ (व० १५१) भीम का जल लाना

मूल—पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद् वारणावतात् । नदीं गंगामनुप्राप्ताः तूर्णं पारमवाप्नुवन् ॥ १ ॥ ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम् । विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणसूचितम् ॥ २ ॥ यतमाना वनं राजन् गहनं प्रतिपेदिरे । क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायान्हे भरतर्षभ ॥ ३ ॥ ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः । नाशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥ ४ ॥

अर्थ—पाण्डव भी वारणावत नगर से निकल कर गंगा नदी पर पहुंचे, और जल्दी पार हो गए ॥ १ ॥ फिर नाव को छोड़ कर रातों रात नक्षत्रों से मार्ग का पता लगाते हुए दक्षिण दिशा को गए ॥ २ ॥ (रात भर और अगला सारा दिन) चलते २ हे राजन्! दिन के अवसान में वह क्रूरपक्षियों और श्वापदों वाले एक भयंकर घने बन में जा पहुंचे ॥ ३ ॥ थकावट, प्यास, और

बढ़ी हुई नींद ने उन को बहुत तंग किया, और अब वह आगे जाने को अशक्त थे ॥ ४ ॥

मूल—ततोभीमोवनंघोरं प्रविश्य विजनं महत् । न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्शह ॥५॥ तत्र निक्षिप्य तान् सर्वानुवाच भरतर्षभः । पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥ ६ ॥ अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत । जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥ ७ ॥ स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ । तेषामर्थे च पानीयं मानयामास भारत ॥ ८ ॥ स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च वसुधातले । भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥ ९ ॥

अर्थ—तब भीम ने अकेले उस भयंकर निर्जन बड़े बन में घुसकर, दूर तक छायावाला एक सुहावना बड़ देखा ॥ ५ ॥ वह भरतश्रेष्ठ उन सब को वहां छोड़ कर (युधिष्ठिर से) बोला, आप सब हे प्रभो यहां विश्राम करें, मैं जल ढूंढ लाता हूं ॥६॥ 'जाओ' इस प्रकार बड़े भाई से अनुज्ञा दिया हुआ वह हे भारत वहां गया, जहां जलचर सारस (बोल रहे) थे ॥ ७ ॥ हे भरत श्रेष्ठ ! उसने वहां स्नान किया और जल पिया, और उन के लिये जल लाया ॥ ८ ॥ माता को और भाइयों को भूतल पर सोया हुआ देख कर भीम का चित्त अतीव शोक से भर गया और वह विलपने लगा ॥ ९ ॥

मूल—अतः कष्टतरं किंनु द्रष्टव्यं हि भविष्यति । यत् पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक् ॥ १० ॥ कुन्तिराजसुतां कुन्तीं भार्यां पाण्डोर्महात्मनः । तथैव चास्मज्जननीं महार्हशयनोचिताम् ॥ ११ ॥ ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः । स जीवेत सुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः ॥ १२ ॥ + येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः । ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च

निरामयाः ॥ १३ ॥ बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः । जीवन्त्यन्योऽन्यमाश्रित्य द्रुमा काननजा इव ॥ १४ ॥ वयंतु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना । विवासिता न दग्धाश्च कथञ्चिद् दैवसंश्रयात ॥ १५ ॥

अर्थ—इस के परे और क्या कष्ट देखना पड़ेगा, कि मैं मन्दभाग्य आज भाइयों को भूमि पर सोए हुए देखता हूं ॥१०॥ तथा कुन्तिराज की बेटी को, जो महात्मा पाण्डु की पत्नी, हमारी जननी बहुमूल्य बिछोनों के योग्य है ॥ ११ ॥ जिस के विषमदर्शी और कुल को दूषित करने वाले ज्ञातिजन (शरीक) हों ही नहीं, वह लोक में अकेला सुखी जीता है, जैसे अकेला ग्रामवृक्ष ॥ १२ ॥ और जिन के बहुत से ज्ञाति हैं, पर शूरवीर हैं, और धर्म पर चलते हैं, वह लोक में सुखी जीते हैं, और कुशल से रहते हैं ॥ १३ ॥ हां वह बलवाले, धनवान्, और मित्र और बान्धवों को प्रसन्न करने वाले हुए, वन में उत्पन्न हुए वृक्षों की भांति एक दूसरे का सहारा बन कर रहते हैं॥१४॥ पर हमें दुरात्मा धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने बे घर बना दिया है, दैववश किसी प्रकार हम दग्ध नहीं हुए ॥ १५ ॥

मूल—सकामो भव दुर्बुद्धे नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः । मयच्छति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः । करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन् दीनमानसः॥१७ भ्रातॄन् महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः । विश्वस्तानिवसंविष्टान् पृथग्जनसमानिव ॥ १८ ॥ जागर्तव्ये स्वपन्तीमे हन्त जागर्म्यहं स्वयम् ॥ १९ ॥ पास्यन्तीमे जलं पश्चात् प्रतिबुद्धा जितक्लमाः । इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा ॥ २० ॥

अर्थ—हे दुर्मति (दुर्योधन) तू अब अपनी आशा पूर्ण कर, तेरे मार डालने की मुझे युधिष्ठिर अनुज्ञा नहीं देते, इस से हे दुर्मते तू जीता है ॥ १६ ॥ क्रोध से तपे हुए मनवाले महाबाहु भीम ने ऐसे कह कर हाथ से हाथ को मरोड़कर,दीनमन हो, लंबा सांस छोड़ा ॥ १७॥ और फिर, साधारण लोगों की तरह भूतल पर विश्वस्त लेटे हुए भाइयों पर दृष्टि डाली ॥ १८ ॥ अहो जागने के स्थान में यह सो रहे हैं, सो मैं स्वयं जागता हूं ॥१९॥ इन की थकावट दूर होने से जब यह जागेंगे, तब जल पियेंगे, यह निश्चय करके भीम स्वयं जागने लगा ॥

अ० २९ (व० १५२) भीम और हिडिम्बा का संवाद

मूल—तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः । अविदूरे वनात् तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥ १ ॥ क्रूरो मानुषमांसादो तानपश्यद् यदृच्छया ॥ २ ॥ ऊर्ध्वांगुलिः स कण्डूयन् धुन्वन् रूक्षान् शिरोरुहान् । जृम्भमाणो महावक्त्रः पुनः पुनरवेक्ष्य च ॥३॥ हृष्टो मानुषमांसस्य भगिनी मिदमब्रवीत् । मानुषोबलवान् गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ।४। हत्वैतान् मानुषान् सर्वा नानयस्वममान्तिकम् अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ॥ ५ ॥ एषामुत्कृत्यमांसानि मानुषाणां यथेष्टतः । भक्षयिष्याव सहितौ कुरु पूर्ण वचोमम ॥

अर्थ—उनके वहां सोते हुए,हिडिम्ब नाम राक्षस, जो उस वन में थोड़ी दूर सालवृक्ष के नीचे रहता था, क्रूर, मनुष्यों का मांसभोजी था, अचानक उसकी दृष्टि इन (सोएहुओं) पर पड़ी ॥ १,२ ॥ अंगुलियें ऊपर उठा कर सिर को खुजलता हुआ, और रूखे बालों को डुलाता हुआ लम्बा चौड़ा मुंह खोल कर जंभाई

लेता हुआ, उन को बार २ देख कर, नरमांस पर रीझा हुआ बहिन से बोला । तेज़ मानुष गन्ध मेरे नाक को तृप्त कर रहा है ॥ ३,४ ॥ इन सब मनुष्यों को मारकर मेरे निकट ला, हमारी हद में सोए हुए हैं, इन से तुझे कोई भय नहीं है ॥ ५ ॥ फिर हम दोनों मिल कर इन मनुष्यों के मांस यथारुचि नोच २ कर खाएंगें, मेरा वचन पूरा कर ॥ ६ ॥

मूल—एवमुक्ता हिडिम्बा तु त्वरमाणेव राक्षसी । जगाम तत्र यत्रस्म पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ७ ॥ ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान् पृथया सह । शयानान् भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोत मिवोद्गतम् । राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ ९ ॥ अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः । कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ॥ १० ॥ नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम् । पतिस्नेहोऽतिबलवान् न तथा भ्रातृ सौहृदम् ॥ ११ ॥ मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद् भ्रातु र्ममैव च । हतैरेतै रहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भरत श्रेष्ठ ! इस प्रकार आज्ञा दी हुई हिडिम्बा राक्षसी झट वहां पहुंची, जहां पाण्डव थे ॥ ७ ॥ वहां जाकर उसने कुन्ति समेत पाण्डवों को सोया हुआ, और अजेय भीमसेन को जागते हुए देखा ॥ ८ ॥ साल के नए वृक्ष की भांति ऊंचे उठे हुए, और सौन्दर्य में अद्वितीय, भीम को देखते ही वह राक्षसी कामवश हो गई ॥ ९ ॥ यह नवयुवा, महाबाहु, शेर के कन्धों वाला, बड़ा तेजस्वी, शंख की सी ग्रीवा वाला, कमल नेत्र, मेरा भर्ता होने योग्य है ॥ १० ॥ मैं अब भाई की वह क्रूरता वाली बात पूरी नहीं करूंगी, पति स्नेह बड़ा बलवान् है, वैसा भाई

का प्यार नहीं ॥ ११ ॥ इन को मार कर थोड़ी देर ही मेरे भाई की और मेरी तृप्ति होगी, और न मारकर सदा आनन्द मनाउंगी ॥ १२ ॥

मूल—उपतस्थे महाबाहुं भीमसेन मथा ब्रवीत ॥ १३ ॥ कुतस्त्वमसि संप्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ । क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः ॥ १४ ॥ वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः । तेनाहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा ॥ १५ ॥ साऽहंत्वा मभिसंप्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम् । नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १६ ॥ एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचर । त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात् पुरुषादकात ॥ १७ ॥ वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममानघ । अतुलामाप्नुहि प्रीतिं तत्र तत्र मया सह ॥ १८ ॥

अर्थ—तब वह महाबाहु भीमसेन के निकट आकर बोली। ॥ १३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तू कौन है और कहां से आया है, और यह दिव्य पुरुष यहां कौन सोए हुए हैं ॥ १४ ॥ यहां पापात्मा हिडिम्ब नाम राक्षस रहता है, उस दुष्ट भावना वाले भाई राक्षस ने मुझे भेजा है ॥ १५ ॥ देव कुमार तुल्य प्रभावाले तुझ को देखकर 'मैं और कोई पति नहीं चाहती हूं' यह मैं आप को सत्य कहती हूं ॥१६॥ यह जान कर हे धर्मज्ञ ! मेरे साथ योग्य वर्ताव कर, मैं तुझे हे महाबाहो ! इस नरभोजी राक्षस से बचाउंगी ॥ १७ ॥ हे निष्पाप आप मेरे भर्ता बनें, हम दोनों पर्वतों के किलों में रहेंगे, वहां २ आप मेरे साथ अतुल खुशी भोगें ॥ १८ ॥

मूल—भीमसेन उवाच—को हि सुप्तानिमान् भ्रातॄन् दत्त्वा राक्षसभोजनम् । मातरं च नरो गच्छेत् कामार्त इव मद्विधः ॥१९॥

अर्थ—भीमसेन बोले—सुखसे सोए अपने भाइयों और माता को राक्षस का भोजन बनाकर कैसे मेरे जैसा पुरुष कामार्त की भांति (अन्धा हो कर) चला जाए ॥ १९ ॥

मूल—राक्षस्युवाच—यत्ते प्रियं तत्करिष्ये सर्वानेतान् प्रबोधय । मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात् पुरुषादकात् ॥ २० ॥

अर्थ—राक्षसी बोली—जो तुझे प्रिय है, वह करूंगी, इन सब को जगादे, मैं निःशंक मनुष्यभक्षक राक्षस से बचाउंगी ॥ २० ॥

मूल—भीमसेन उवाच—सुखसुप्तान् वने भ्रातॄन् मातरं चैव राक्षसि । न भयाद् बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥ २१ ॥

अर्थ—भीमसेन बोला—हे राक्षसि । वन में सुख से सोए भाइयों को और माता को मैं उस दुरात्मा तेरे भाई के डर से नहीं जगाउंगा ॥ २१ ॥

अ० २९ (व० १५३) हिडिम्ब युद्ध

मूल—तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः । अवतीर्य द्रुमात् तस्मादाजगामाशु पाण्डवान् ॥ १ ॥ तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत । वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥ २ ॥ पुंस्कामां शंकमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः । उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ न बिभेपि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता । पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥ ४ ॥ यानिमानाश्रिता कार्षीविप्रियं सुमहन्मम । एष तानद्य वै सर्वान् हनिष्यामि त्वया सह ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः । वधायाभि ययावैतान् दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ ६ ॥

अर्थ—हिडिम्बा को देर की गई हुई जान राक्षसेश्वर हिडिम्ब उस वृक्ष से उतर झट पाण्डवों की ओर आया ॥ १ ॥ हे भारत क्रुद्ध हुए उस मनुष्यभक्षी राक्षस ने वैसी बातें करते हुए भीमसेन की सारी बातें सुनीं ॥ २ ॥ और हिडिम्बा पर यह शंका करके कि इसे पुरुष की कामना हुई है बड़ा क्रुद्ध हुआ, और बड़े २ नेत्र फाड़ कर उस से यह बोला ॥ ३ ॥ हे हिडिम्बे हे सारे राक्षसों पर बट्टा लगाने वाली तू मोह में आई हुई मेरे कोप से नहीं डरती है ॥ ४ ॥ यह, जिन का सहारा लेकर तूने मेरा बड़ा विप्रिय किया है, अभी इन सब को तेरे समेत मारता हूं ॥ ५ ॥ हिडिम्बा को ऐसे कह कर हिडिम्ब लाल आंखें निकाल कर दांतों से दांतों को पीसता हुआ इन के मारने के लिये झपटा ॥६॥

मूल—भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव । भगिनीं प्रति सं क्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुप्तैः प्रबोधितैः । मंगच्छस्व मया सार्धं मेकैनैका नराशन ॥ ८ ॥ क्षणेनाद्य करिष्येऽहमिदं वनमराक्षसम् । पुरा यद् दूषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान् ॥ ९ ॥

अर्थ—बहिन के प्रति क्रुद्ध हुए उस राक्षस को देख कर भीमसेन हंसता हुआ यह वचन बोला ॥ ७ ॥ हे हिडिम्ब आराम से सोए हुए इन को जगाने से क्या लाभ ? मुझ अकेले के साथ हे नरभक्षक तू अकेला जुट ॥ ८ ॥ एक क्षण में आज इस वन को राक्षसशून्य करूंगा, जो कि इस से पहले मनुष्यों को भक्षण करते हुए तूने सदा दूषित कर रक्खा है ॥ ९ ॥

मूल—हिडिम्ब उवाच—न तावदेतान् हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथा सुखम् । एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियंवदम् ॥ १० ॥

पीत्वा तवासृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि । हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम् ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः । भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद् भैरवं रवम् ॥ १२ ॥ पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः । मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति ॥ १३ ॥ अन्योऽन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा । हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम् ॥ १४ ॥ तयोः शब्देन महता विबुद्धास्ते नरर्षभाः । सह मात्रा च ददृशु हिंडिम्बा मग्रतः स्थिताम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हिडिम्ब बोला– (बहुत अच्छा) पहले इन को नहीं मारूंगा, यह सुख से सोए रहें, यह हे कुबुद्धे तुझ अप्रिय वादी को ही पहले मारता हूं ॥ १० ॥ पहले तेरे अंगों से लहू पीकर पीछे इन को भी मारूंगा, और तिस पीछे इस अप्रिय करने वाली (हिडिम्बा) को भी ॥ ११ ॥ यह कह कर भुजा बढ़ा कर भीमसेन को (छाती में) लपेट देकर वह नरभोजी भयंकर गर्ज से गर्जा ॥ १२ ॥ पर महाबली भीम बल पूर्वक इसे दूर खींच लेगया, ताकि सुख से सोए मेरे भाइयों को न सुन पड़े ॥ १३ ॥ हिडिम्ब और भीमसेन एक दूसरे को बल से खींचने लगे, और पूरा पराक्रम दिखलाने लगे ॥ १४ ॥ उन दोनों के उस बड़े शब्द से माता समेत वह पुरुषवर जाग पड़े, और उन्हों ने सामने खड़ी हिडिम्बा को देखा ॥ १५ ॥

अ०३० (व० १५४,१५५) हिडिम्ब वध

मूल—ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसम्पदा । उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥ १ ॥ कस्य त्वं सुरगर्भाभे का-

वाऽसि वर वर्णिनि। केन कार्येण सम्प्राप्ता कुतश्चागमनं तव ।२। आचक्ष्व मम तत्सर्वं किमर्थं चेह तिष्ठसि ॥ ३ ॥

अर्थ—कुन्ती इस की ओर देखकर, रूप की शोभा से विस्मित हो प्रेमपूर्वक धीरे से यह मधुर-वचन बोली ॥ १ ॥ हे देव कन्या तुल्य, हे सुन्दरि ! तुम कौन हो ? किस की हो, किस काम के लिये आई हो और कहां से तुम्हारा आना हुआ है ॥ २ ॥ और किस लिये यहां खड़ी है, यह मुझे सब कहो ।३।

मूल—हिडिम्बोवाच-यदेतत्पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् । निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च ॥ ४ ॥ तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भामिनि । भ्रात्रा संप्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसितुम् ॥ ५ ॥ क्रूरबुद्धे रहं तस्य वचनादागता त्विह । अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम् ॥ ६ ॥ ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे । चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ॥ ७ ॥ ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः । अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ॥ ८ ॥ चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः । स्वयमेवागतो हन्तुमिमान् सर्वा स्तवात्मजान् ॥ ९ ॥ स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता । बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना ॥ १० ॥ विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम् । पश्यैवं युधि विक्रान्तावेतौ च नर राक्षसौ ॥ ११ ॥

अर्थ—हिडिम्बा बोली-यह जो नीले मेघ की भांति बड़ा वन देखती हो, यह हिडिम्ब राक्षस का और मेरा निवास स्थान है ॥ ४ ॥ हे भामिनि ! मुझे तुम इस राक्षसेश्वर की बहिन जानो, हे आर्ये ! भाई ने मुझे पुत्रों समेत तेरे मारने के लिये भेजा था ।५।

क्रूर मति वाले उस भाई के वचन से मैं यहां आई, और कुन्दन सोने की आभा वाले महाबली तेरे पुत्र को देखा ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे शुभे ! जो सब प्राणियों के चित्त मे घूमता है, उस काम से आज्ञा दी हुई मैं आप के पुत्र के वश हुई हूं ॥ ७ ॥ तब मैंने महाबली तेरे पुत्र को अपना भर्ता वर लिया, और उसे निकाल ले जाने का यत्न किया, पर मैं उसे लेजा नहीं सकी ॥ ८ ॥ तब मुझे देर लगाती जान वह नरभोजी तेरे इन पुत्रों को मारने के लिये आप यहां आगया ॥ ९ ॥ उस को मेरा कान्त बुद्धिमान् तेरा पुत्र बल पूर्वक यहां से घसीट कर दूर ले गया है ॥ १० ॥ सो देखो ! वह दोनों युद्ध में पराक्रम दिखलाते हुए, ललकारते हुए, एक दूसरे को बड़े वेग से खींच रहे हैं ॥११॥

मूल—तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः । अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ १२ ॥ तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम् । काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहा विव बलोत्कटौ ।१३

अर्थ—उस के इस वचन को सुनते ही वीर्यवान् युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव उड़कर (झटपट) वहां पहुंचे ॥१२॥ उन्हों ने बल में उत्कट दो शेरों की भांति अपनी २ जय चाहते हुए उन दोनों को आपस में जुटे हुए और खींचते हुए देखा ॥ १३ ॥

मूल—अर्जुन उवाच—साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम् । नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः ॥ १४ ॥

भीम उवाच—उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया । न जात्वयं पुनर्जीवेन्मम बाह्वन्तरमागतः ॥ १५ ॥

अर्थ—अर्जुन बोला—हे पार्थ ! मैं आप की सहायता में आ खड़ा हुआ हूं, मैं इस राक्षस को गिराउंगा, नकुल और

सहदेव माता की रक्षा करेंगे ॥ १४ ॥ भीम बोले-तुम अलग खड़े देखते रहो, काहली न करो, मेरी भुजा के अन्दर आया हुआ यह अब कभी जीता नहीं बचेगा ॥ १५ ॥

मूल—अर्जुन उवाच-गन्तव्ये न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिंदम। त्वरस्व भीम माक्रीड जाहि रक्षो विभीषणम् ॥ १६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः। विनिष्पिष्यैनं बलाद् भूमौ पशुमार ममारयत् ॥ १७ ॥ हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः। अपूजयन् नरव्याघ्रं भीमसेन मरिन्दमम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अर्जुन बोला—हे शत्रुओं के दमन करने वाले! हमें आगे जाना है यहां हम देर नहीं ठहर सकते, हे भीम जल्दी करो, खेल न करो, इस भयंकर राक्षस को मार ही डालो ॥१६॥ उस के इस वचन को सुनकर, अति क्रोधी भीमसेन ने हिडिम्ब को बल से भूमि पर रगड़ कर पशु के मारने की भांति मार-डाला ॥ १७ ॥ हिडिम्ब को मरा देख कर वह बलवान् सभी प्रसन्न हुए, और उस नरश्रेष्ठ शत्रुदमन भीमसेन का आदर करते भए ॥ १८ ॥

मूल—अर्जुन उवाच—न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो। शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात् सुयोधनः ॥ १९ ॥ ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा मात्रा सह महारथाः। प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥ २० ॥ प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम्। अनुरक्तश्च तानासीत् पाण्डवान् स घटोत्कचः ॥ २१ ॥ तेषां च दयितो नित्यमात्मनित्यो बभूव ह ॥ २२ ॥

अर्थ—अर्जुन बोले, जान पड़ता है कि, इस वन से नगर दूर नहीं है, सो हम शीघ्र यहां से आगे चलें, सुयोधन हमें जानने

न पाए ॥ १९ ॥ तब 'तथा' कह कर वह सब महारथी नरवर माता समेत चल पड़े और हिडिम्बा राक्षसी भी (साथ गई) ॥ २० ॥ इस राक्षसी ने भीमसेन से महाबली घटोत्कच नामी पुत्र जना, जो पाण्डवों में बड़ा अनुराग वाला हुआ है, और उन का भी वह प्यारा रहा, और सदा जितेन्द्रिय रहा ॥ २२,२३ ॥

अ० ३१ (व०१५६,१५७,१६५,१८४)

मूल—ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान् बहून् । अपक्रम्य ययू राजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥ १ ॥ मत्स्यां स्त्रिगर्तान् पञ्चालान् कीचकानन्तरेण च । रमणीयान् वनोद्देशान् प्रेक्षमाणः सरांसि च ॥ २ ॥ जटाः कृत्वाऽऽत्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः । ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदांगानि च सर्वशः ॥ ३ ॥ एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः । ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ।४। चेरुर्भिक्षां तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते । बभूवुर्नागराणां च स्वर्गुणैः प्रियदर्शनाः ॥ ५ ॥

अर्थ—वह महारथी एक वन से दूसरे वन में जाते, बहुत से मृग समूहों को मारते, जल्दी २ आगे२ चले गए ॥ १ ॥ मत्स्य, त्रिगर्त, पञ्चाल और कीचक देशों के अन्दर के सुहावने वन प्रदेशों और सरोवरों को देखते हुए गए ॥ २ ॥ (किसी को पता न लगे इस विचार से) सब ने अपनी जटाएं बनालीं, बकले और मृग-चर्म पहन लिये (इस प्रकार) ब्राह्मणों की चाल पर वेद और वेदांगों को पढ़ते हुए * ॥ ४ ॥ हे नरपते ! वह सब भिक्षा मांग

---

* इससे आगे कथा इस प्रकार पाई जाती है। इस प्रकार घूमते हुए पाण्डवों को वन में व्यास जी मिले, उन्हों ने उन को धैर्य दिया

कर खाने लगे, वह महारथी कुन्ती पुत्र एकचक्रा (आरा) में गए और कुछ काल एक ब्राह्मण के घर में रहे। और अपने गुणों से नगर वासियों के प्यारे बन गए ॥ ९ ॥

और अपने साथ एकचक्रा में ले आए, वहां उनको एक ब्राह्मण के घर में छोड़, यह कह कर चले गए, कि तुम एक मास यहीं मेरी प्रतीक्षा करो, मैं फिर आऊंगा। वहां वह ब्राह्मण ब्रह्मचारियों की भांति वेदाध्ययन में लगे रहते और भीख मांग कर खाते थे। जितना वह अन्न पाते, उसका आधा अकेले भीम खाजाते थे, शेष आधा कुन्ती समेत दूसरे चारों भाई खाते थे। वहां उनको रहते हुए बहुत बड़ा काल हो चुका था, कि एक दिन सब भाई भीख के लिये गए हुए थे, भीम और कुन्ती घर में थे, कि कुन्ती को उस घर में आर्तनाद सुनाई दिया। कुन्ती ने भीम से कहा, बेटा! हम इस ब्राह्मण के घर में सुख से रहे हैं, मेरे चित्त में कई बार आया है, कि हम इसका कोई प्रत्युपकार करें, सो हो सके, तो इनका वह दुःख दूर करें, जिस से यह रोरहे हैं, भीम ने उत्तर दिया, जाओ माता, पता लगाओ, इनको क्या दुःख है, जानकर उसके दूर करने का यत्न करूंगा, चाहे बड़ा ही कठिन क्यों न हो। इतने में फिर आर्तनाद उठा, कुन्ती अन्दर गई, उसने ब्राह्मण को अपनी स्त्री कन्या और पुत्र समेत शोक में विकल देखा। ब्राह्मण कह रहा था, मैंने बार २ तुझे कहा था, कि यहां से निकल चलना अच्छा है, पर तूने मेरी बात न सुनी, अब यह बड़ा भारी विनाश सामने आया है। मैं न तुझे राक्षस को दे सकता हूं, न इन बच्चों को, और यदि मैं अपने आप को देता हूं, तो मेरे बिना तुम सब मरोगे। ब्राह्मणी बोली, आप विद्यावान् हो कर क्यों संतप्त हो रहे हैं, मैं स्वयं वहां जाऊंगी, नारी का यही धर्म है, कि प्राण देकर भी पति का प्रिय करे। आप के मरने से तो मुझे भी दुष्टजन धर्म से गिराएंगे, इस कन्या को अयोग्य पुरुष वरना चाहेंगे, और पुत्र शिक्षाहीन रहेगा, पर मेरे मरने में ऐसी कोई हानि नहीं होगी, इसलिये मेरा ही जाना उचित है,

और स्त्री अवध्य होती है, इस धर्म को राक्षस भी मानते हैं, सो कदाचित् मुझे छोड़ ही दें, इससे भी मेरा ही जाना उचित है। कन्या बोली-मैं वहां जाउंगी, सन्तान का धर्म है, माता पिता की रक्षा करना, सो मैं अपने प्राण देकर इस धर्म को पालूंगी। दूसरा यह मेरा भाई अभी छोटा सा है, आप दोनों के बिना इस का पालन नहीं हो सकता, और मेरी भी दुर्दशा ही होगी, किञ्च-पुत्र अपना रूप होता है, स्त्री साथन होती है, और कन्या कष्ट देने वाली कही है, पर मैं अपने आप को देकर आप के सारे कष्ट मिटाउंगी, आप के बिना भी तो मुझे अनाथ बनकर दुःखी ही रहना पड़ेगा, इसलिये मेरा हित भी मेरे ही मरने में है। कन्या से यह वचन सुन माता पिता रोने लग गए, उनके दुःख से कन्या भी रोने लगी, तब उनको रोता देख छोटा बालक एक २ के पास जा २ कहने लगा, माता मत रो, पिता मत रो, बहिन मत रो, यह कहते हुए उसने एक तिनका उठालिया, और हर्षित हो कर बोला, इस तिनके से मैं उस नरभोजी राक्षस को मारडालूंगा। यद्यपि वह दुःख से भरे हुए रो रहे थे, तथापि बालक के इस भोले वचन से वह हंस पड़े। यह अवसर है, ऐसा जान कुन्ती आगे बढ़ी और पूछा, आप के दुःख का क्या मूल है, मैं जानना चाहती हूं, ताकि यदि हो सके तो मैं उसको हलका करूं। ब्राह्मण बोला, हे तपस्विनि! सत्पुरुषों का यही धर्म है, जो तू कहती है, पर यह दुःख किसी से घटाया नहीं जा सकता। इस नगर के पास बक राक्षस रहता है, वह नरभोजी मनुष्यमांसों से पला हुआ है। वह शत्रुओं से इस देश की रक्षा करता है, और इस के पलटे में एक गाडी चावल, दो भैंसे और एक मनुष्य यह भोजन के लिये लेता है, बारी २ से हर एक घर से उसको यह भोजन दिया जाता है, यदि कोई अपनी बारी में अस्वीकार करता है, तो राक्षस उसके सारे परिवार को मारकर खाजाता है, आज दुर्भाग्य से मेरी बारी है। राजा यहां का वेत्रकीय गृह में रहता है, वह कोई इसके मारने का उपाय नहीं करता, सो हम सब दुःख उठारहे हैं, मेरे पास धन भी नहीं, कि कोई पुरुष खरीद कर भेजसकूं, सो मैं उससे बचाव का कोई उपाय नहीं देखती। कुन्ती बोली—ब्राह्मण

शोक न करो, तेरी एक कन्या एक पुत्र है, मेरे पांच पुत्र हैं, उन में से एक चला जाएगा । ब्राह्मण बोला—मैं ऐसा नहीं करूंगा, कि स्वार्थ के लिये ब्राह्मण अतिथि को मरवा डालूं, कुन्ती बोली—ब्राह्मण मेरी भी यही मति स्थिर है, कि ब्राह्मण रक्षा के योग्य हैं, और न ही मुझे पुत्र अप्रिय हैं, चाहे सौ भी पुत्र हों । किन्तु मेरा पुत्र बलवान् मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है, उसको राक्षस मार नहीं सकेगा । मेरे पुत्र ने आगे भी कई राक्षस मारे हैं, हां यह बात किसी को न कहनी, मेरे पुत्र विद्यार्थी हैं, ऐसी बातों में लोग उनका हर्ज करेंगे भीम को राक्षस से प्रबल जान ब्राह्मण ने स्वीकार किया. कुन्ती न आकर भीम को तय्यार किया । इतने में युधिष्ठिर आदि भी भिक्षा लेकर आगए । युधिष्ठिर ने आकार से ही भीम को किसी भारी कार्य के लिये उद्यत हुआ देख माता से बात पूछी, माता ने सारा वृत्तान्त सुनाया, युधिष्ठिर को पहले तो यह बात न रुची, पर माता से यह वचन सुन मान लिया, कि भीम को तो कोई डर है नहीं, और हम ब्राह्मण के उपकार का प्रत्युपकार दे सकेंगे, आधीरात को भीम वह अन्न लेकर बकवन में गया, बक को ऊंचे स्वर से बुला कर आप वह अन्न खाने लग गया, बक आया, और अन्न लाने वाले को स्वयं अन्न खाते देख उसको क्रोध चढ़आया, उसने बल से भीम की पीठ पर दोनों हाथों से मुक्के मारे, पर भीम ने राक्षस की ओर आंख उठा कर भी न देखा और खाता गया, राक्षस का क्रोध और भी बढ़गया, और वह एक वृक्ष उखाड़ कर भीम के मारने को दौड़ा। भीम भी भोजन खाकर उठ खड़ा हुआ। राक्षस से फेंके वृक्ष को भीम ने झट दाएं हाथ से दबोच लिया । थोड़ी देर तक तो दोनों ने वृक्षों से युद्ध किया, फिर आपस में धकम धक्के का युद्ध हुआ, जिस से पृथिवी कांप उठी, और वृक्ष चूर्ण विचूर्ण होने लगे, अन्ततः भीम ने उसे गिरा लिया, और बांए हाथ से उसकी पीठ को दबा कर दाएं से उसकी ग्रीवा मरोड़ डाली राक्षस भयंकर ध्वनि करके मरगया, उसकी ध्वनि सुनकर दूसरे राक्षस बाहर निकले, भीम ने उन सब को डांट कर नियम बांधा कि कभी मनुष्यों को न मारो, मारोगे, तो सब की यही दशा होगी, राक्षसों ने इस नियम को मान लिया, तब राक्षस शान्त हुए । भीम भी उस राक्षस को नगर के द्वार पर फेंक कर बे मालूम चलागया।

मूल—ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः । प्रतिश्रयार्थी तद्वेश्म ब्राह्मणस्याजगामह ॥ ६ ॥ स तत्राकथयद्विप्रः याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वाऽथ प्रयातास्ते पाण्डवा जनमेजय । राज्ञा दाक्षिणपाञ्चालान् द्रुपदेनाभिरक्षितान् ॥ ८ ॥ पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च । तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥ ९ ॥ स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः । आनुपूर्व्येण संप्राप्ताः पञ्चालान् पाण्डुनन्दनाः ॥ १० ॥

अर्थ—कुछ दिन पीछे एक व्रतशील ब्राह्मण (रात) रहने के लिये उस ब्राह्मण के घर आया ॥ ६ ॥ उस ब्राह्मण ने द्रौपदी के स्वयंवर की बात बतलाई ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! यह

सवेरे पुरवासीजन राक्षस को लहू से लिथड़ा हुआ और मरापड़ा देख विस्मित हुए । जिस की बारी थी, उससे पूछने पर पता लगा, कि एक सिद्ध ब्राह्मण ने ऐसा किया है । (यह कथा है,जो वेतालपचीसी की कथाओं जैसी मनोरञ्जक अवश्य है, पर ऐतिहासिक घटना नहीं । पाण्डवों के समय में घोर वनों के अन्दर कहीं २ नरभोजी कोई २ राक्षस तो था, पर नगरों पर उनका कोई प्रभुत्व न था, यह हो भी नहीं सकता था, कि आर्यभूमि पर ऐसा अत्याचार होवे और वीर आर्य उसको चुपचाप सहते रहें । और,यद्यपि भीम बड़ा बलवान् था, पर जिस को भीम अकेला मार सकता था,उसको दूसरे जवान क्या सौ मिलकर भी नहीं मार सकते थे,कथा अत्युक्तियें से भरी है, और कई दूसरे मोटे २ भी दोष हैं । १५७।२ में लिखा है, 'नाति चिरं कालं' थोड़ी देर एकचक्रा में रहे, और वहीं आगे १५७।७ में लिखा है 'अतिचक्राम सुमहान् कालः' जब उनको वहां रहते बहुत बड़ा समय बीत गया, इत्यादि हेतुओं से स्पष्ट है, कि यह अंशप्रक्षिप्त है, इसलिये अलग कर दिया है, यहां ही और भी मनो विनोद के लिये प्रासंगिक कथाएं हैं—संपादक)॥

सुनकर वह पाण्डव राजा द्रुपद से पालित दक्षिण पञ्चालों को गए ॥ ८ ॥ सुहावने वनों और सरोवरों को देखते हुए और वहां २ वास करते हुए वह महारथी धीरे २ गए । स्वाध्याय वाले, शुद्धाचारी, सुन्दराकृति, प्रिय बोलने वाले, वह पाण्डुनन्दन क्रम २ से पाञ्चालों में जा पहुंचे ॥ १० ॥

मूल–ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः । कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा ॥११ ॥ तत्र भैक्षं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः । तान् संप्राप्तांस्तथा वीरान् जज्ञिरे न नराः क्वचित् ॥ १२ ॥ यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने । कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः ॥१३॥ सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय । दृढं धनुरनानम्यं कारयामास भारत ॥ १४ ॥ यन्त्रं वैहायसं चैव कारयामास कृत्रिमम् । तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः ॥१५॥

अर्थ–पाण्डव उस नगर और छावनी को देखकर एक कुम्हार के घर में ठहरे ॥ ११ ॥ वहां वह ब्राह्मणों की वृत्ति पर चलते हुए भीख मांगकर खाने लगे, इस प्रकार वहां आए हुए उन वीरों को मनुष्यों ने कहीं नहीं जाना ॥ १२ ॥ यज्ञसेन (द्रुपद) की सदा यह इच्छा रहती थी, कि पाण्डुपुत्र अर्जुन को द्रौपदी दूं, पर वह यह प्रकट नहीं करता था १३ ॥ हे जनमेजय ! तब उसने अर्जुन को ढूंढने के लिये न झुकने वाला एक दृढ़ धनुष बनवाया ॥ १४ ॥ और (ऊंचा) आकाश में घूमने वाला एक यन्त्र बनवाया, और उस यन्त्र के साथ एक लक्ष्य जुड़वाया * ॥ १५ ॥

* ऐसा धनुष अर्जुन ही झुका सकेगा, और ऐसा लक्ष्य भी

मूल—इदं सज्यं धनुःकृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः । अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥१५॥ इति स द्रुपदो राजा स्वयंवरमघोषयत् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत । ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः ॥ १७ ॥ दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृप । ब्राह्मणाश्च महाभागा देशेभ्यः समुपागमन् ॥ १८ ॥

अर्थ—और तब राजा द्रुपद ने इस प्रकार स्वयंवर की घोषणा दी, कि जो इस धनुष में चिल्ला चढ़ाकर, इन सजेहुए बाणों से, (उस यन्त्र को) पार कर लक्ष्य को वींधेगा, वह मेरी कन्या को पाएगा ॥ १५,१६ ॥ यह सुन हे भारत ! तब राजे इकट्ठे हुए, और स्वयंवर देखने की इच्छा वाले महात्मा ऋषि भी इकट्ठे हुए ॥ १७ ॥ हे राजन् ! कर्ण के सहित दुर्योधनप्रधान कौरव और देशदेशान्तरों से महाभाग ब्राह्मण आए ॥ १८ ॥

मूल—ततोऽर्चिता राजगणा द्रुपदेन महात्मना । उपोपविष्टा मञ्चेषु द्रष्टुकामाः स्वयंवरम् ॥ १९ ॥ प्रागुत्तरेण नगराद् भूमिभागे समे शुभे । समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥२०॥ प्राकार परिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः । वितानेन विचित्रेण सर्वतः समलंकृतः ॥ २१ ॥ तूर्यौघशतसंकीर्णः पराध्यागुरु धूपितः । चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामोपशोभितः ॥ २२ ॥

अर्थ—तब राज द्रुपद से आदर पाकर, स्वयंवर देखने की चाह वाले वह राजगण पास २ मंचों (तख्तों) पर बैठगए ॥१९॥

अर्जुन ही वींध सकेगा, इसलिये यह अर्जुन के ढूंढने का उपाय था। यद्यपि कर्ण भी ऐसा कर सकता था, पर हीनकुल होने से इसको ऐसा करने से रोका जा सकता था ॥

नगर से पूर्व उत्तर की ओर सजेहुए समतल भूभाग पर चारों ओर भवनों से घिरा हुआ वह (राजाओं का) समाजवाट शोभा पारहाथा ॥२०॥ कोट और खाई संयुक्त, वन्दनवार से शोभित, और रंगा रंगे के वितान (चंदोए) से चारों ओर सजा हुआ था ॥२१॥ अनेक वाजों के समूह जिस में बजरहे हैं, उत्तम अगर से सुगन्धित, चन्दन के जल से सिंचाहुआ, फूलों की मालाओं से शोभित ॥२२॥

मूल—तत्रोपविष्टान् ददृशुर्महासत्वपराक्रमान् । राजसिंहान् महाभागान् स्वराष्ट्रपरिरक्षिणः॥२३॥प्रियान् सर्वस्य लोकस्य सुकृतैः कर्मभिः शुभैः । मञ्चेषु च परार्ध्येषुपौरजानपदा जनाः ॥ २४ ॥ कृष्णादर्शन सिद्ध्यर्थं सर्वतःसमुपाविशन् ॥२५॥ ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् । ऋद्धिं पञ्चालराजस्य पश्यन्तस्ता मनुत्तमाम् ॥२६॥

अर्थ—वहां पुरवासी और देशवासी लोग उत्तमोत्तम मंचों के ऊपर वैठे हुए बड़े दिल और पराक्रमवाले, बड़े भागोंवाले, अपने २ देशके रक्षक, अच्छे साधे हुए शुभकर्मों से सब लोगों के प्यारे राजसिंहों को देखते भए ॥ २३,२४ ॥ जो द्रौपदी के देखने के लाभ के लिये चारों ओर वैठगए थे। ॥ २५ ॥ और पाण्डव पञ्चालराज के उस अत्युत्तम ऐश्वर्य को देखते हुए ब्राह्मणों के साथ वैठे ॥ २६ ॥

मूल—आप्लुताङ्गी सुवसना सर्वाभरणभूषिता । मालांच समुपादाय काञ्चनींसमलंकृताम् ॥२७॥ अवतीर्णा ततोरंगं द्रौपदी भरतर्षभ। पुरोहितः सोमकानां मन्त्रविद्ब्राह्मणः शुचिः ।

परिस्तीर्य जुहावाग्निमाज्येन विधिवत् तदा ॥ २८ ॥ संतर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च। वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥२९॥ निःशब्दे तु कृते तस्मिन् धृष्टद्युम्नो विशांपते। कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥३०॥ वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥३१॥

अर्थ—पीछे न्हाधोकर अच्छे वस्त्र पहन, सारे भूषणों से सजधजकर हाथ में सोनेकी सुन्दर माला लिये द्रौपदी रंग भूमि में उतरी ॥२६,२७॥ तब सोमकों के पुरोहित वेदवेत्ता पवित्र ब्राह्मण ने कुण्ड के चारों ओर (कुशा) बिछाकर घी से अग्नि में होम किया ॥ २८ ॥ अग्नि को तृप्त कर और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाकर चारों ओर के बाजों को बन्द किया ॥ २९॥ हे राजन्! उसके चुप होने पर धृष्टद्युम्न यथाविधि द्रौपदी को खड़ाकर मेघ और दुन्दुभितुल्य ध्वनि से यह स्पष्ट मनोहर अर्थयुक्त वाक्य बोला ॥३०,३१॥

मूल—इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः। छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः ॥३२॥ एतन्महत् कर्म करोति यो वै कुलेन रूपेण बलेन युक्तः। तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि॥३३॥

भाषा—हे उपस्थित भूपतियो! सुनो यह धनुष है यह लक्ष्य है और यह बाण हैं, यन्त्र के छिद्र द्वारा आकाशचारी पांच बाणों से इस लक्ष्य को वींधो ॥३२॥ कुल, रूप और बल से युक्त जो पुरुष इस महत्व कार्य को करपाएगा, यह मेरी बहिन द्रौपदी आज उसकी पत्नी होगी, यह मैं मिथ्या नहीं कहता हूं ॥३३॥

अध्याय ३२ (व० १८७) लक्ष्य का बींधना

मूल—तेऽलंकृता कुण्डलिनो युवानः परस्परं स्पर्धमाना नरेन्द्राः। अस्त्रं बलं चात्मनि मन्यमानाः सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥ १ ॥ कन्दर्पबाणाभिनिपीडितांगाः कृष्णागतस्ते हृदयै नरेन्द्राः। रंगावतीर्णा द्रुपदात्मजार्थं द्वेषं प्रचक्रुः सुहृदोऽपि तत्र ॥२॥ ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च। सकर्ण दुर्योधन शाल्व शल्य द्रौणायनिक्राथ सुनीथवक्राः ॥ ४ ॥ कलिंगवंगाधिप पाण्ड्यपौण्ड्रा विदेहराजो यवनाधिपश्च। अन्ये च नाना नृपपुत्र पौत्रा राष्ट्राधिपाः पङ्कजपत्र नेत्राः ॥४॥ तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं सज्यं न शेकुर्मनसापि कर्तुम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अब वह सज धज कर बैठे हुए कुण्डलों वाले युवा नरेन्द्रगण परस्पर स्पर्धा करते हुए, तथा अपने अन्दर अस्त्र और बल देखते हुए वह सब अस्त्र लिये उठ खड़े हुए ॥ १ ॥ काम के बाणों से पीड़ित अंगोंवाले द्रौपदी में लगे मनों से रंग में उतरे हुए वह राजगण द्रौपदी के अर्थ वहां सहृद् भी द्वेष करने लगे ॥२॥ तब राजगणों ने द्रौपदी के निमित्त अपने २ पराक्रम दिखलाए, कर्ण, दुर्योधन, शाल्व, शल्य, द्रोणायनि, क्राथ, सुनीथ, वक्र, कलिंगपति, वंगपति, पाण्ड्य, पौण्ड्र, विदेहराज और यवनपति और भी अनेक राजपुत्र और राजपोते जो स्वयं भी देशों के रक्षक कमल तुल्य नेत्रों वाले थे, (उठे, पर) उस महा कठोर धनुष का मन से भी चिल्ला न चढ़ा सके।३,४,५।

मूल—ते विक्रमन्तः स्फुरता दृढेन विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्राः। गतौजसः स्रस्तकिरीटहारा विनिःश्वसन्तः शमयांबभूवुः ॥६॥ सर्वान् नृपांस्तान् प्रसमीक्ष्य कर्णो धनुर्धराणां प्रवरो जगाम।

उद्धृत्य तूर्णं धनुरुद्यतं तत् सज्यं चकाराशु युयोज बाणान् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चैर्जगाद नाहं वरयामि सूतम् । सामर्षहासं प्रसमीक्ष्य सूर्यं तत्याज कर्णः स्फुरितं धनुस्तत् ॥ ८ ॥

अर्थ—फड़कते हुए (=हाथों में न ठहरते हुए) उस दृढ़ धनुष ने पराक्रम दिखाते हुए उन राजाओं को परे फैंक दिया, उनके उत्साह दूर होगए, मुकुट और हार गिरपड़े, और लंबे सांस भरकर चुप हो बैठे ॥६॥ उन सब राजों को देखकर धनुर्धरों में श्रेष्ठ कर्ण गया, उसने झट धनुष को उठाया, चिल्ला चढ़ाया और बाण जोड़ दिये॥७॥उसको देखकर द्रौपदी ने ऊंचे वाक्य से कहा, मैं सूत को नहीं बरती हूं, तब कर्ण ने क्रोध और हंसी के साथ सूर्य की ओर (ऊपर) ध्यान करके उस चमकते हुए धनुष को छोड़ दिया॥८

मूल—यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणः । अथोदतिष्ठद् विप्राणां मध्याज् जिष्णु रुदारधीः ॥ ९ ॥ उदक्रोशन् विप्रमुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च । दृष्ट्वा संप्रस्थितं पार्थ मिन्द्र केतुसमप्रभम् ॥ १० ॥ के चिदासन् विमनसः के चिदासन् मुदान्विताः । आहुः परस्परं के चिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥११॥ यत् कर्ण शल्य प्रमुखैः क्षत्रियैर्लोकविश्रुतैः । नानतं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥ १२ ॥ तत्कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा । वटु मात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः ॥१३॥ अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु । कर्मण्यस्मिन्नसंसिद्धे चापलादपरीक्षिते ॥ १४ ॥

अर्थ—जब सब राजे धनुष में चिल्ला चढ़ाने से मुख फेर चुके, तब ब्राह्मणों के मध्य में से उदारमति अर्जुन उठ खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ इन्द्रध्वजा के तुल्य शोभा वाले अर्जुन को जाते देख,

ब्राह्मणों के मुखिये अपने मृगचर्मों को हिला २ कर हर्षध्वनि करने लगे ॥१०॥ कइयों के मन घबरा गए, कइयों के मोद से भरगए, कई बुद्धिमान् चतुर आपस में कहने लगे ॥ ११ ॥ कि जो धनुष कर्ण शल्य जैसे लोकविख्यात, धनुष के धनी, बलवान् क्षत्रियों से नहीं झुका ॥ १२ ॥ उस धनुष को हे ब्राह्मणों कैसे एक विद्यार्थी मात्र झुका सकेगा, जो उन जैसा अस्त्र निपुण नहीं, और बल से भी उनसे दुर्बल है ॥ १३ ॥ चपलता से विना सोचे जो यह काम होने लगा है, यदि यह सफल न हुआ, तो ब्राह्मण सब राजाओं में उपहास के योग्य होंगे ।१४।

मूल—केचिदाहुर्युवा श्रीमान् नागराजकरोपमः । पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव ॥ १५ ॥ सिंहखेलगतिः श्रीमान् मत्तनागेन्द्र विक्रमः। संभाव्यमस्मिन् कर्मेदमुत्साहाच्चानुमीयते।१६। शक्तिरस्य महोत्साहा नह्यशक्तः स्वयं व्रजेत् । नावहास्या भविष्यामो न च लाघवमास्थिताः ॥ १७ ॥

अर्थ—कई कहने लगे यह युवा, श्रीमान्, गजराज के सूंड तुल्य (सीधा आकार) मोटे कंधे रानों और भुजाओं वाला, धैर्य में हिमालय के तुल्य ॥ १५ ॥ शेर की खेल की सी चाल वाला, मत्त गजराज के पराक्रम वाला है । इससे इस काम की संभावना होसकती है, और इसके उत्साह से भी ऐसा अनुमान होता है ॥ १६ ॥ इसकी शक्ति बड़ी उमंग से भरी है, क्योंकि शक्तिहीन अपने आप इस तरह नहीं जा सक्ता, सो हम न उपहास के योग्य होंगे, न हल्के बनेंगे ॥ १७ ॥

मूल—एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः । अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥१८॥ स तद्धनुः परिक्रम्य

प्रदक्षिणमथाकरोत् । प्रणम्य शिरसा देवं जगृहे चार्जुनो धनुः॥१९॥ यत्पार्थिवैरुक्म सुनीथवक्रराधेय दुर्योधन शल्यशाल्वैः । तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः कृतं न सज्यं महतोऽपियत्नात् ॥ २० ॥ तदर्जुनो वीर्यवतां सदर्पस्तदैन्द्रि रिन्द्रावरजप्रभावः । सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण शरांश्च जग्राह दशार्धसंख्यान् ॥२१॥ विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च छिद्रेण भूमौ सहसाऽतिविद्धम् । ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः समाजमध्ये च महान् निनादः ॥ २२ ॥

अर्थ—इसप्रकार ब्राह्मणों के भांतिरकी वातें कहते हुए ही अर्जुन धनुष के पास जाकर पर्वत की तरह अचल हो कर खड़ा हुआ ॥ १८ ॥ उसने धनुष के चारों ओर घूमकर उसको प्रदक्षिणा किया, और सिर झुका कर परमात्मा को प्रणाम कर धनुष को हाथ डाला ॥ १९ ॥ जिस पर उस समय धनुर्वेद परायण रुक्म, सुनीथ, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शल्य, शाल्व जैसे वीरवर राजाओं ने बड़े यत्न से भी चिल्ला नहीं चढ़ाया था ॥ २० ॥ उस पर वीर्य वालों में अभिमानी, सूर्य तुल्य प्रभाव वाले इन्द्रपुत्र अर्जुन ने आंख के पलकारे में चिल्ला चढ़ा लिया और पांचों वाण पकड़ लिये ॥ २१ ॥ लक्ष्य को वींध दिया, जो कि वेग से विंधा हुआ (यन्त्र के) छिद्र में से हो कर झट भूमि पर आगिरा, तब अन्तरिक्ष में (लक्ष्य वींधने की) ध्वनि हुई और समाज के मध्य में (वाह की) बहुत बड़ी ध्वनि हुई ॥ २२ ॥

मूल—चैलानि विव्यधुस्तत्र ब्राह्मणाश्च सहस्रशः । शतांगानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन् ॥ २३ ॥ सूतमागधसंघाश्चाप्यस्तुवंस्तत्र सुस्वराः॥ तं दृष्ट्वा द्रुपदःप्रीतो बभूव रिपुसूदनः ॥२४॥ तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।

आवास मेवोपजगाम शीघ्रं सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥२५
विद्धंतुलक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य ।
आदायशुक्लाम्बरमाल्यदाम जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती ॥२६॥
स तामुपादाय विजित्य रंगे द्विजातिभिस्तैरभि पूज्यमानः ।
रंगान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा पत्न्या तया चाप्यनुगम्य मानः ॥२७॥

अर्थ—सहस्रों ब्राह्मण अपने दुपट्टों को हिलाने लगे, और वजेये भांति २ के बाजों को बजाने लगे ॥ २३ ॥ सूत और मागध मीठे स्वर से स्तुति गाने लगे, और शत्रुमर्दी द्रुपद अर्जुन को देखकर प्रीतिमान् हुआ ॥ २४ ॥ उस बड़े कोलाहल में धर्म धारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर,नकुल,सहदेव समेत निवास गृहको चला गया (ताकि वो इकट्ठे पहचाने न जाएं) ॥२५॥ द्रौपदी लक्ष्य को विंधा देख और इन्द्र तुल्य अर्जुन को निहार श्वेतवस्त्र और माला लिये गर्वीली चाल से अर्जुन के पास गई॥२६॥अर्जुन रंगभूमि में उसको जीतकर और स्वीकार कर उन ब्राह्मणों से सत्कृत हुए रंग से बाहर निकले,और वह पत्नी उसके पीछे२ चलने लगी ॥

अध्याय ३३ (व०१९०-१९१) युद्ध और श्रीकृष्ण के दर्शन

मूल—तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे । कोप आसीन्महीपाना मालोक्यान्योन्यमन्तिकात् ॥ १॥ अस्मिन् राज-समवाये देवानामिव सञ्चये । किमयं सदृशं कंचिन्नृपतिं नैव दृष्ट-वान् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः । द्रुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपाद्रवन् ॥ ३ ॥

अर्थ—जब राजा(लक्ष्य भेदी) ब्राह्मण को कन्या देने के लिये तय्यार हुआ, तो निकट बैठे राजाओं का एक दूसरे की ओर देख क्रोध भड़क उठा ॥ १ ॥ देवताओं के समाज तुल्य

इस राजसमाज में से क्या इसको एक भी नरपति योग्य न दीखपड़ा ॥२॥ यह कहकर परिघ (मुंगली) समान भुजाओं वाले वह राजसिंह शस्त्र उठाकर द्रुपद को मारने के लिये दौड़े ॥ ३ ॥

मूल—वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान् । पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ प्रतियातावरिन्दमौ ॥ ४ ॥ ततः कर्णो महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे । भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली ॥ ५ ॥ ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः । कर्णं वैकर्तनं श्रीमान् विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ६ ॥ तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ ।,अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योऽन्य विजिगीषिणौ॥

अर्थ—इधर से शत्रु नाशक, धनुर्धर दोनों पाण्डु पुत्र (भीम और अर्जुन) मदमत्त हाथियों की भांति वेग से आते हुए उन राजाओं की ओर चले ॥ ४ ॥ रण में महातेजस्वी कर्ण अर्जुन के, और मद्रों का स्वामी बलवान् शल्य भीमसेन के सामने हुआ ॥ ५ ॥ तब श्रीमान् अर्जुन ने वेग से धनुष खींच कर आते हुए कर्ण को तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया ॥ ६ ॥ जय पाने वालों में श्रेष्ठ,अचिन्त्य बलवाले, एक दूसरे को जीतने की इच्छा वाले जोश में आए हुए वह दोनों फुर्ती से युद्ध करने लगे ॥७॥

मूल—अपरस्मिन् वनोद्देशे वरौ शल्यवृकोदरौ । पाषाणसंपातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः ॥ ८ ॥ ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे । अपातयत् कुरुश्रेष्ठो नावधीत् बलिनं बली ॥ ९ ॥ तत् कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः कुन्तीसुतौ तौ परिशंकमानः । निवारयामास महीपतींस्तान् धर्मेणलब्धेत्यनुनीय सर्वान् ॥ १० ॥ एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धाद् युद्धविशारदाः । यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः ॥ ११ ॥ वृत्तो ब्रह्मो-

त्तरो रंगः पाञ्चाली ब्राह्मणैर्वृता । इति ब्रुवन्तः प्रययुर्ये तत्रासन् समागताः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नौ रौरवाजिनवासिभिः । कृच्छ्रेण जग्मतुस्तौ तु भीमसेन धनञ्जयौ ॥ १३ ॥

अर्थ—इधर एक दूसरे वनमें वीर शल्य और भीम (एक दूसरे पर) पत्थर गिराने के तुल्य प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ पीछे कुरु-श्रेष्ठ भीम ने अपनी दोनों भुजाओं से शल्य को ऊंचा उठाकर पटक दिया, किन्तु उस बली ने वली को जान से नहीं मारा ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण ने भीम के उस कर्म को देखकर, दोनों कुन्ती पुत्र पहचान लिये, और उन सब राजाओं को यह तसल्ली देकर युद्ध से हटाया, कि धर्म के अनुसार ही (इसने द्रौपदी) लाभ की है ॥ १० ॥ इस प्रकार युद्धनिपुण वह राजवर युद्ध को वन्द कर, विस्मित हुए सब अपने २ घरों को सिधारे ॥ ११ ॥ और दूसरे लोग जो (देखने के लिये) इकट्ठे हुए थे,वह कहते हुए चले गये,कि रंग में ब्राह्मण बढ़ गए,द्रौपदी को ब्राह्मणों ने वरा॥१२ और भीम और अर्जुन हिरणों के मृगान पहने हुए ब्राह्मणों से चारों ओर से घिरे हुए बड़ी कठिनता से (घर की ओर) गए ॥१३॥

मूल—वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरानाशंसमानः सहरौहिणेयः । जगाम तां भार्गवकर्मशालां यत्रास्ते ते पुरुषप्रवीराः ॥ १४ ॥ तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुं ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः । अजातशत्रुं परिवार्य तांश्चाप्युपोपविष्टान् ज्वलनप्रकाशान् ॥ १५॥ ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽभिगम्य कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम् । कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ १६ ॥ तथैव तस्याप्यनु रौहिणेयस्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन् । पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरावगृह्णतां भारतमुख्य पादौ ॥ ७ अजातशत्रुश्च कुरुप्र-

वीरः पप्रच्छ कृष्णं कुशलं विलोक्य । कथं वयं वासुदेव त्वयेह गूढा वसन्तो विदिताश्च सर्वे ॥ १८ ॥ तमब्रवीद् वासुदेवः प्रहस्य गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन् । तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥ १९ ॥ दिष्ट्या सर्वे पावकाद्विप्रमुक्ता यूयं घोरात् पाण्डवाः शत्रुसाहाः । दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत् ॥ २० ॥ भद्रं वोऽस्तु निहितं यद्गुहायां विवर्धध्वं ज्वलन इवेधमानाः । मा वो विदुः पार्थिवाः केचिदेव यास्यावहे शिबिरायैव तावत् ॥ २१ ॥ सोऽनुज्ञातः पाण्डवेनाव्ययश्रीः प्रायाच्छीघ्रं बलदेवेन सार्धम् ॥ २२ ॥

अर्थ—इधर वृष्णि वंश के प्रवीर (श्री कृष्ण जी) उन को कुरु प्रवीर समझ कर बलदेव समेत भार्गव की उस कर्मशाला में गए, जिस में वह पुरुषप्रवीर ठहरे थे ॥ १४ ॥ वहां आकर कृष्ण और बलदेव ने मोटी विशाल भुजा वाले युधिष्ठिर को बैठे हुए, और उसके इर्दगिर्द अग्नितुल्य चमक वाले पास २ बैठे हुए (चारों भाइयों) को देखा ॥ १५ ॥ तब श्रीकृष्ण धर्म धारियों में श्रेष्ठ कुन्ती पुत्र के निकट हो, और उन अजमीढ राजा के वंश वाले युधिष्ठिर के पाओं छूकर कहा, कि मैं कृष्ण हूं। १६। इसी प्रकार उसके पीछे बलदेव ने (चरण छुए), और पाण्डवों ने भी प्रसन्न हो कर उन दोनों का अभिनन्दन किया । और फिर उन यादव प्रवीरों ने फूफी (कुन्ती) के पाओं छुए।१७। कुरुप्रवीर युधिष्ठिर कृष्ण को देखकर कुशल पूछ कर बोले, कि हे वासुदेव ! कैसे आपने यहां गुप्त रहते हम सब को जान लिया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण मुस्करा कर बोले, हे राजन् ! आग ढकी हुई भी जानी जाती है । भला ऐसा पराक्रम पाण्डवों को

छेड़ मनुष्यों में और कौन कर सकता है ॥ १९ ॥ हे शत्रुओं को दबाने वाले पाण्डवो ! भाग्य से आप सब घोर आग से बचे हैं। और भाग्य से धृतराष्ट्र का पापी पुत्र और उसके मन्त्री सफल मनोरथ नहीं हुए ॥ २० ॥ आप का मंगल हो, जो कि गुफा में छुपा है (परदे में है), तुम अग्नि की भांति बढ़ते हुए फैलो, अब आज्ञा दें, कि हम दोनों अपने डेरे को जावें, ताकि और कोई राजे आपको न जान पाएं।२१।तब युधिष्ठिर से आज्ञा दिये अक्षय श्रीयुक्त कृष्ण बलदेव के साथ शीघ्र वहां से चले गए॥२२

अध्याय३४(व० १९३,१९४)युधिष्ठिरादि की परीक्षा

मूल—ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः पुरोहितं प्रेषयामास तेषां । विद्याम युष्मानिति भाषमाणो महात्मनः पाण्डुसुतास्तु काच्चित् ॥ १ ॥ गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा गत्वा प्रशंसामभिधाय तेषाम् । वाक्यं समग्रं नृपतेर्यथावदुवाच चानुक्रमविक्रमेण॥२॥ विज्ञातु मिच्छत्यवनीश्वरो वः पञ्चालराजो वरदो वराहः । लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः ॥ ३॥ आख्यात च ज्ञातिकुलानुपूर्वीं पदं शिरःसु द्विषतां कुरुध्वम् । प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेदं पञ्चालराजस्य च सानुगस्य ॥ ४ ॥ अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञा हृदि स्थितो नित्यमनिन्दितांगाः।यदर्जुनो वै पृथु-दीर्घबाहुर्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अनन्तर प्रसन्न हुए राजा द्रुपद ने उनके पास यह कह कर पुरोहित को भेजा, कि हम आप को जानना चाहते हैं, क्या आप महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं ॥ १ ॥ (राजा का) वाक्य ग्रहण कर राजपुरोहित वहां गया और उनकी प्रशंसा कर

राजा की कही सारी बात को क्रमशः कहने लगा ॥ २ ॥ वर-दाता वर के योग्य भूपति पञ्चाल राज आप को जानना चाहते हैं, वह लक्ष्य के बींधने वाले इस वीर को देखकर हर्ष का पार नहीं पाते हैं ॥ ३ ॥ आप अपनी ज्ञाति और कुल की परम्परा कह कर द्वेषियों के सिरों पर पाओं रक्खें, और पञ्चालराज के, उसके साथियों के और मेरे हृदय को आनन्दित करें ॥ ४ ॥ हे सुन्दर डीलवाले वीरो ! राजा द्रुपद के हृदय में यह इच्छा सदा रहती थी, कि मोटी विशाल भुजा वाला अर्जुन मेरी इस कन्या को धर्म मर्यादा से व्याहे ॥ ५ ॥

मूल—अथोक्तवाक्यं हि पुरोहितं स्थितं ततो विनीतं समुदीक्ष्य राजा । समीपतो भीममिदं शशास प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथाऽस्मै ॥ ६ ॥ भीमस्ततस्तत् कृतवान् नरेन्द्र तां चैव पूजां प्रतिगृह्य हर्षात् । सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तदा युधिष्ठिरो ब्राह्मण मित्युवाच ॥ ७ ॥ पञ्चालराजेन सुता निसृष्टा स्वधर्मदृष्टेन यथा न कामात् । प्रदिष्टशुल्का द्रुपदेन राज्ञा सा तेन वीरेण तथाऽनुवृत्ता ॥ ८ ॥ न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा न चापि शीले न कुले न गोत्रे । कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण विद्धेन लक्ष्येण हि सा विसृष्टा ॥ ९ ॥ सेयं तथाऽनेन महात्मनेह कृष्णा जिता पार्थिव संघमध्ये । नैवं गते सौमकिरद्य राजा संतापमर्हत्यसुखाय कर्तुम् ॥ १० ॥ एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु पञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः । तत्राजगामाशु नरो द्वितीयो निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम् ॥ ११ ॥

अर्थ—इतनी बातें कहकर विनययुक्त खड़े पुरोहित को देखकर, राजा ने निकट स्थित भीम को आज्ञा दी, इनको पाद्य अर्घ्य दीजिये ॥ ६ ॥ हे नरनाथ ! भीमने वह किया, और उस

पूजा को स्वीकार कर हर्ष से सुख पूर्वक बैठे पुरोहित से युधिष्ठिर बोले ॥ ७ ॥ पञ्चालराज ने अपने धर्म दृष्ट मार्ग से कन्या दी है, नाकि इच्छा से (किसीको), राजा द्रुपद ने मूल्य बतलाया, उस मूल्य से इस वीर ने वह कन्या पाई है ॥ ८ ॥ उस समय वर्ण, शील, कुल, गोत्र की कोई इच्छा नहीं प्रकट की, धनुप पर चिल्ला चढ़ाने से और लक्ष्य को बींधने से वह दीजाचुकी ॥ ९ ॥ सो इस महात्मा ने राजसमाज के मध्य में द्रौपदी को जीता है, ऐसी दशा में सोमवंशी राजा को अब सुखके नाश के लिये संताप करना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ युधिष्ठिर जब यह कह रहे थे, तो पञ्चा-लराज के पास से वहां एक दूसरा पुरुष आया, यह बतलाने के लिये कि अन्न तय्यार है ॥ ११ ॥

मूल—दूत उवाच—जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा विवाहहेतो रुपसंस्कृतं च । तदाप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः कृष्णा च तत्रैव चिरं न कार्यम् १२ इमे रथाः काञ्चन पद्मचित्राः सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः । एतान् समारुह्य परैत सर्वे पञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥ १३ ॥ ततः प्रयाताः कुरु पुंगवास्ते पुरोहितं तं परियाप्य सर्वे । आस्थाय या-नानि महान्ति तानि कुन्ती च कृष्णा च सहैकयाने॥ १४ ॥ श्रुत्वा तु वाक्यानि पुरोहितस्य यान्युक्तवान् भारत धर्मराजः । जिज्ञास-येवाथ कुरूत्तमानां द्रव्याण्यनेकाण्युप संजहार ॥ १५ ॥ फलानि माल्यानि च संस्कृतानि वर्माणि चर्माणि तथाऽऽसनानि । गाश्चैव राजन्नथ चैव रज्जूर्बीजानि चान्यानि कृषी निमित्तम् ॥ १६ ॥ अन्येषु शिल्पेषु च यान्यपि स्युः सर्वाणि कृत्यान्यखिलेन तत्र । क्रीडा निमित्तान्यपि यानि तत्र सर्वाणि तत्रो पजहार राजा ॥१७॥ वर्माणि चर्माणि च भानुमन्ति खड्गा महान्तोऽश्वरथाश्च चित्राः ।

धनूंपि चाग्र्याणि शराश्च चित्राः शक्त्यृष्टयः काञ्चनभूषणाश्च १८ प्रासा भुशुंड्यश्च परश्वधाश्च सांग्रामिकं चैव तथैव सर्वम् । शय्यासन्यान्युत्तम वस्तु वन्ति तथैव वासो विविधं च तत्र ॥ १९ ॥

अर्थ--दूत बोला-विवाह के निमित्त राजा द्रुपद ने बरात के लिये अन्न तय्यार किया है । आप अपने सारे नित्य कर्म करके वहां चलें और कृष्णा (द्रौपदी) भी साथ चले, विलम्ब न करें॥१२॥सुवर्ण पद्मों से चित्रे हुए, उत्तम घोड़ों से युक्त, यह राजाओं के योग्य रथ हैं, इन पर चढ़ कर सब पंचालराज के भवन को चलें ॥१३॥ तब वह सब कुरुश्रेष्ठ उस पुरोहित को विदा कर उन बड़े यानों पर चढ़कर चले, कुन्ती और कृष्णा इकट्ठी एक यान पर चढ़ीं ॥१४ ॥ इधर द्रुपद ने पुरोहित की उन बातों को, जो धर्मराज युधिष्ठिर ने कही थीं, सुन करके, पाण्डवों के जानने की इच्छा से अनेक द्रव्य इकट्ठे किये ॥ १५ ॥ सुन्दर सजे हुए फल, मालाएं, कवच, मृगान और आसन (ब्राह्मणों की पहचान के लिये), गौएं, रस्से, और खेती के निमित्त अनेक प्रकार के बीज (वैश्यों की पहचान के लिये) ॥ १६ ॥ और शिल्पों में जितने प्रकार के शस्त्र होते हैं, और जो (भिन्न २ वर्णों के) क्रीडा के साधन होते हैं, वह सब वहां राजा ने इकट्ठे किये ॥ १७ ॥ चमकीले कवच, ढाल, तलवार, बड़े २ और रंग रंगके घोड़े और रथ, उत्तम धनुष, भांति२के बाण, सुवर्ण से सजे बर्छे और दुधारे॥ १८ ॥भाले, बन्दूकें, और कुल्हाड़े, तथा संग्राम के योग्य और सब कुछ,(क्षत्रियों की पहचान के लिये) बहुमूल्य शय्या और आसन, और भांति २ के वस्त्र ॥ १९ ॥

मूल-कुन्ती तु कृष्णां परिगृह्य साध्वी मन्तःपुरं द्रुपदस्या विवेश । स्त्रियश्च तां कौरवराजपत्नीं प्रत्यर्चयामासुरदीन सत्त्वाः २०

तान् सिंह विक्रान्तगतीन् निरीक्ष्य महर्षभाक्षान जिनोत्तरीयान् । गूढोत्तरांसान् भुजगेन्द्रभोगप्रलम्बबाहून् पुरुष प्रवीरान् ॥ २१ ॥ राजा च राज्ञः सचिवाश्च सर्वे पुत्राश्च राज्ञः सुहृदस्तथैव । प्रेष्याश्च सर्वे निखिलेन राजन् हर्षं समापेतुरतीव तत्र ॥ २२ ॥ ते तत्र वीराः परमासनेषु सपादपीठेष्वविशंकमानाः । यथाऽऽनुपूर्व्यं विविशुर्नराग्रया स्तथामहार्हेषु न विस्मयन्तः ॥ २३ ॥ उच्चावचं पार्थिव भोजनीयं पात्रीषु जाम्बूनद राजतीषु । दासाश्च दास्यश्च सुमृष्ट वेषाः संभोजकाश्चाप्युप जह्रुरन्नम् ॥ २४ ॥ ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा यथात्मकामं सुभृशं प्रतीताः । उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि राजन् सांग्रामिकं ते विविशुर्नृवीराः ॥ २५ ॥ तल्लक्षयित्वा द्रुपदस्य पुत्रो राजा च सर्वैः सहमान्त्रिमुख्यैः । समर्थयामासुरुपेत्य हृष्टाः कुन्ती सुतान् पार्थिवराजपुत्रान् ॥ २६ ॥

अर्थ—कुन्ती सती कृष्णा को लेकर द्रुपद के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई, रानियों ने प्रसन्न चित्त से उस कौरव राज (पाण्डु) की पत्नी का सम्मान किया ॥ २० ॥ और सिंह की सी चाल वाले, बड़े बैल समान नेत्रोंवाले. मृगान ओढेहुए, दृढ कन्धों वाले, हस्तिराज के सूंड समान लंबी भुजाओं वाले, उन पुरुषप्रवीरों को देखकर, राजा, राजा के मन्त्री सारे, और सारे सुहृद राजा का पुत्र और सेवक वहां बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ २१, २२ ॥ वह नरश्रेष्ठ वीर वहां बड़े छोटे के क्रम से प्रविष्ट हुए, और बिना विस्मित हुए, पादपीठों समेत, बहुमूल्य उत्तम आसनों पर निःशंक बैठगए ॥ २३ ॥ तब भोजन कराने वाले शुद्ध वेषधारी दास और दासियें राजों के खाने योग्य भांति २ का अन्न सोने चांदी की थालियों में लेआए ॥ २४ ॥ वह पुरुषवर वहां अपनी २ रुचि

के अनुसार खाकर बड़े प्रसन्न हो और सारी वस्तुओं को छोड़कर जहां संग्रामसम्बन्धी वस्तुएं रखी थीं, वहां प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ यह देख द्रुपदपुत्र, द्रुपद और मन्त्रीवर प्रसन्न हुए इस निश्चय पर पहुंचे, कि यह राजाधिराज (पाण्डु) के पुत्र कुन्तीपुत्र हैं॥२६॥

अध्याय ३५ (व० १९४) द्रौपदी और अर्जुन का विवाह

मूल—तत आहूय पांचाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम्। परिग्रहेण ब्राह्मेण परिगृह्य महाद्युतिः ॥ १ ॥ पर्यपृच्छ ददीनात्मा कुन्ती पुत्रं सुवर्चसम्। कथं जानीम भवतः क्षत्रियान् ब्राह्मणानुत॥ २ ॥

अर्थ—तब महातेजस्वी द्रुपद ने राजपुत्र युधिष्ठिर को अलग बुलाकर, ब्राह्मणों के योग्य आदर देकर तेजस्वी कुन्तीपुत्र से पूछा, हम आपको क्या ब्राह्मण जानें वा क्षत्रिय? ॥ १, २ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच-मा राजन् विमना भूस्त्वं पाञ्चाल्य प्रीतिरस्तु ते। ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम् ॥ ३ ॥ वयं हि क्षत्रिया राजन् पाण्डोःपुत्रा महात्मनः । पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्य ह्रदं गता ॥ ४ ॥ ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुल लोचनः। प्रतिवक्तुं मुदा युक्तो नाशकत् तं युधिष्ठिरम् ॥ ५ ॥ यत्नेन तु स तं हर्षं सन्निगृह्य परंतपः। अनुरूपं तदा वाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात्। स तस्मै सर्वं माचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्ती पुत्रस्य भाषितम्। विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं नरेश्वरम॥८॥ आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वरः ॥ ९ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे राजन् आप उदास न हों, हे पंचालनाथ

आप को प्रीति हो, निःसंदेह यह आपका अभीष्ट मनोरथ पूरा हुआ है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! हम क्षत्रिय हैं, महात्मा पाण्डु के पुत्र, पद्मिनी तुल्य आपकी यह कन्या एक झील से दूसरी झील में (ही) गई है ॥ ४ ॥ यह सुन राजा द्रुपदके नेत्रों में प्रेमाश्रु आगए, और इतने आनन्दसे भर गया, कि थोडी देर के लिये युधिष्ठिर को कुछ उत्तर नहीं दे सका ॥ ५ ॥ उस शत्रुतापी ने बड़े यत्न से उस हर्ष को रोककर युधिष्ठिर को समुचित प्रत्युत्तर दिया ॥ ६ ॥ और फिर उस धर्मात्माने उससे पूछा, कि किस तरह वह पुर से भाग निकले? युधिष्ठिर ने उसको सब आनुपूर्वी से बतलाया ॥ ७ ॥ राजा द्रुपद ने युधिष्ठिर की बात सुन कर नरपति धृतराष्ट्र की निन्दा की॥ ८ ॥और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को ढाढस दे उनको राज्य (पर बिठलाने) के लिये प्रतिज्ञा की ॥ ९ ॥

मूल—तत्र ते न्यवसन् राजन् यज्ञसेनेन पूजिताः । प्रत्याश्वस्तस्ततो राजा सहपुत्रै रुवाच तम् ॥ १० ॥ गृह्णातु विधिवत् पाणिं मद्यायं कुरुनन्दनः । पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥ ११ ॥ ततोऽस्य वेश्माग्र्य जनोपशोभितं विस्तीर्णपद्मोत्पल भूषिता जिरम् । बलौघ रत्नौघ विचित्रमावभौ नभो यथा निर्मलतारकान्वितम् ॥ १२ ॥ ततः समाधाय स वेदपारगो जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनम् । प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी परिणाययामास स वेदपारगः ॥ १३ ॥ ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं पुरोहितो राजगृहाद् विनिर्ययौ । कृते विवाहे द्रुपदो धनं ददौ महारथेभ्यो बहुरूप मुत्तमम् ॥ १४ ॥ कृते विवाहे च ततस्तु पाण्डवा प्रभूतरत्ना मुपलभ्य तां श्रियम् । विजह्रुरिन्द्रप्रतिमा महाबलाः पुरे तु पञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥ १५ ॥

अर्थ—यज्ञसेनसे सम्मानित हुए वहां रहनेलगे, अब पुत्रों सहित ढाडस पाया हुआ राजा(द्रुपद) युधिष्ठिर से बोला॥ १० ॥ आज शुभदिन में यह कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुन यथाविधि पाणि ग्रहण करे, और उत्सव करे ॥ ११ ॥ तब नगरके मुख्यों ने राजभवन को शोभित किया, उसके अंगन बड़ी २ पद्म पुष्प की मालाओं से सजगए, सेनासमूह और रत्नसमूह से सजा हुआ वह भवन निर्मल तारों से युक्त आकाश की सी शोभा देनेलगा १२ तब वेदपारग पुरोहित ने अग्नि प्रज्वलित किया, मन्त्रों से होम किया, फिर हाथ पकड़े हुए उन दोनों(पति पत्नी) को(अग्नि के) प्रदक्षिण चलाया ॥ १३ ॥ तब युद्धों में शोभावाले राजा से अनुमति लेकर पुरोहित राजगृह से निकलगया, विवाह होचुकने पर द्रुपद ने उन महारथियों को अनेक प्रकार का उत्तम धन दिया ॥ १४ ॥ और विवाह होचुकने पर उस बड़े रत्नों वाली राज्यश्री को पाकर इन्द्र तुल्य, महाबली पाण्डव पञ्चाल राज के पुर में आनन्द मनाने लगे ॥ १५ ॥

अध्याय ३६ (व०२००) पाण्डवों के जीवित होने का समाचार फैलना

मूल—ततो राज्ञां चैरराप्तैः प्रवृत्तिरुपनीयत । येन तद्धनुरादाय लक्ष्यं विद्धं महात्मना ॥ १ ॥ सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महाबाण धनुर्धरः । यः शल्यं मद्रराजं वै प्रोत्क्षिप्यापातयद्बली ॥ २ ॥ स भीमः भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनांगपातनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मरूप धरान् श्रुत्वा प्रशान्तान् पाण्डुनन्दनान् । कौन्तेयान् मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत ॥ ४ ॥ सपुत्राहि पुरा कुन्ती दग्धा जतुगृहे श्रुता । पुनर्जातानिव च तांस्तेऽमन्यन्त नराधिपाः ॥५॥

धिगकुर्वंस्तदा भीष्मं धृतराष्ट्रं च कौरवम्। कर्मणोऽतिनृशंसेन पुरोचन कृतेन वै ॥ ६ ॥ वृत्ते स्वयंवरे चैव राजानः सर्व एवते। यथागतं विप्रजग्मुर्विदित्वा पाण्डवान् वृतान् ॥ ७ ॥

अर्थ—तब राजाओं के विश्वासी गुप्तचरों ने समाचार दिया, कि जिस महात्मा ने धनुष लेकर लक्ष्य वींधा है ॥ १ ॥ वह जीतने वालों में श्रेष्ठ महावाणधनुर्धारी अर्जुन है, और जिस बली ने मद्रराज शल्य को ऊंचा उठाकर गिराया था, वह कठोर स्पर्श वाला शत्रुसेनाओं को गिराने वाला भीम है ॥ २–३ पाण्डवों को सही सलामत बचे हुए ब्राह्मणों का रूप धारे हुए सुनकर सब राजाओं को बड़ा अचम्भा हुआ ॥ ४ ॥ क्योंकि उन्होंने पहले पुत्रों समेत कुन्ती का जतुगृह में जलमरी सुना हुआ था, सो वह राजा उनको मानों फिर जन्मे मानते भए ॥ ५ ॥ और अतिनिर्दय कर्म जो पुरोचन ने किया था, उसके निमित्त भीष्म और कुरुराज धृतराष्ट्र को धिकारने लगे ॥ ६ ॥ स्वयंवर होचुकने पर वह सभी राजे पाण्डवों को वरा गया जानकर अपने २ स्थान को गए। ७।

मूल—अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह। विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम् ॥ ८ ॥ तंतु दुःशासनो व्रीडन् मन्दं मन्द मिवाब्रवीत। यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद् विन्देत द्रौपदीं न सः ॥ ९ ॥ नहितं तत्वतो राजन् वेद कश्चिद् धनञ्जयम् ॥ १० ॥ दैवंच परमं मन्ये पौरुषंचाप्यनर्थकम् धिगस्तु पौरुषं तात ध्रियन्ते यत्र पाण्डवाः ॥ ११ ॥ एवं संभाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम्। विविशुर्हास्तिनपुरं दीना विगत चेतसः ॥ १२ ॥ त्रस्ता विगतसंकल्पा दृष्ट्वा पार्थान् महौजसः। मुक्तान् हव्यभुजश्चैव संयुक्तान्

द्रुपदेनच ॥ १३ ॥ धृष्टद्युम्नंच सञ्चिन्त्य तथैवच शिखण्डिनम् । द्रुपदस्यात्मजांश्चान्यान् सर्वान् युद्ध निशारदान् ॥ १४ ॥

अर्थ—राजा दुर्योधन यह देखकर, कि द्रौपदी ने अर्जुन को वरा है, अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण, कृप, और भाइयों के साथ उदास हुआ लौटा ॥ १८ ॥ (मार्ग में) दुःशासन लजाता हुआ मन्द २ उस से यह बोला, यदि वह ब्राह्मण न बनता, तो द्रौपदी को न पासकता ॥ १९ ॥ हे राजन् उसको अर्जुन करके कोई भी ठीक २ नहीं जान सका, मैं मानता हूं, दैव सब से बढ़कर है, पौरुष कोई काम नहीं देता, धिक्कार है पौरुष को, जब कि पाण्डव जीते हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार की बातें करते हुए, और पुरोचन को निन्दते हुए दीन हुए मरे हुए चित्त से वह हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके मनोरथ नष्ट हो गए, वह महाबली पाण्डवों को अग्नि से बच निकले और द्रुपद से संयुक्त हुए देखकर, तथा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रुपद के दूसरे भी सारे युद्ध निपुण पुत्रों को सोचकर भयभीत हो रहे थे ॥ १२,१३ ॥

मूल—ततः भीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशापेत । उवाच दिष्ट्या कुरुवोवर्धन्त इति विस्मितः ॥ १४ ॥ वैचित्रवीर्यस्तु नृपो निशम्य विदुरस्य तत् । अब्रवीत् परमप्रीतो दिष्ट्यादिष्ट्येति भारत ॥ १५ ॥ यत्ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः । तेषां सम्बन्धिनश्चान्ये बहवश्च महाबलाः ॥ १६ ॥ कोहिद्रुपदमासाद्य मित्रं क्षतः सबान्धवम् । न बभूषेद् भवेनार्थीगतश्रीरपि पार्थिवः ॥१७॥ तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत । नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतंसमाः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ राजन् विदुरः स्वं निवेशनम् ॥ १९ ॥

अर्थ—तदनन्तर हे नरेश! विदुर प्रसन्नमन और विस्मयान्वित हो धृतराष्ट्र से बोला—'भाग्य से कुरुओं को बधाई है' ॥ १४ ॥ हे भारत! राजा धृतराष्ट्र विदुर के इस वचन को सुनकर परम प्रसन्न हुआ 'भाग्य से, भाग्य से' कहता भया ॥ १५ ॥ जिस से वह वीर पाण्डव कुशल वाले हैं, और मित्रों वाले बने हैं और उनके दूसरे सम्बन्धी भी बहुत हैं और महाबली हैं ॥ १६ ॥ हे विदुर बान्धवों समेत द्रुपद को मित्र बनाकर ऐश्वर्य का अर्थी कौन राजा ऐश्वर्य नहीं चाहेगा, चाहे उसकी राज्यश्री छिन-चुकी हुई भी हो ॥ १७ ॥ उसकी यह बात सुन विदुर ने उत्तर दिया, हे राजन् सदा तेरी ऐसी ही बुद्धि सौवरस तक बनी रहे ॥ १८ ॥ यह कह कर विदुर अपने घर को चलागया ॥१९॥

* विचार—यहां वर्तमान महाभारत में यह बात पाई जाती है, कि द्रौपदी का विवाह पांचों पाण्डवों से हुआ, और वह पांचों की सांझी पत्नी थी। क्या यह बात सत्य है वा मिथ्या? इस पर बड़ी सावधानी से विचार होना चाहिये।

इस बात का निर्णय करने के लिये सब से पहले यह बात निर्णेतव्य है, कि आर्य शास्त्रों में एक स्त्री के लिये अनेक पतियों का विधान है वा नहीं? दूसरा यह, कि आर्य जाति में ऐसा आचार था वा नहीं। क्योंकि इस समय यद्यपि आर्यजाति में यह बात बड़ी निन्दनीय समझी जाती है, तथापि प्राचीन काल में यदि इस का विधान वा आचार हो, तो इसके ऐतिहासिक मानने में एक बड़ी रुकावट दूर होजाती है। पर इन दोनों प्रश्नों का उत्तर हम यह पाते है, कि पुरानी स्मृतियों में, उन से भी पहले के धर्म सूत्रों में, उन से भी पहले के ब्राह्मण ग्रन्थों में और इन सब के मूलाधार मन्त्र

संहिताओं में कहीं भी इसका विधान नहीं है, प्रत्युत निषेध है। अत एव आर्य जाति का आचार भी सदा इस के विरुद्ध ही रहा है। महाभारत में भी, अन्यत्र भी, और यहां पर भी, इस बात को लोक वेद विरुद्ध ही कहा गया है, इस से स्पष्ट है, कि आचार भी इस का विरोधी ही रहा है।

अब विवेचनीय यह रह जाता है, कि लोक-वेद-विरुद्ध होने पर भी ऐसा हुआ है वा नहीं ? इस के लिये महाभारत ही प्रमाण हो सकता है, सो महाभारत में जब पाया जाता है, तो इस के मान लेने में कोई संदेह ही न रहता, यदि महाभारत में प्रक्षिप्त कुछ न होता, वा अन्यत्र प्रक्षिप्त होने पर भी यहां सीधा सरल इतिहास होता, यहां कुछ भी गड़बड़ न होती। पर ऐसा है नहीं, महाभारत में प्रक्षेपक होना प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है, और इस में सभी प्रामाणिक एकमत हैं। और यहां का स्थल इतना गड़बड़ वाला है, कि उस में क्षेपक का होना अवश्य मानना पड़ता है। यहां की लंबी कथा का सारांश यह है। कि, पुत्रों के देर तक न आने से कुन्ती चिन्ता में डूब रही थी, कि कहीं मेरे पुत्र मारे न गए हों, इतने में बहुत से ब्राह्मणों के साथ अर्जुन घर में प्रविष्ट हुआ। भीम और अर्जुन ने बाहर से ही कहा, आज हम यह भिक्षा लाए हैं।

कुन्ती ने बिन देखे अन्दर से ही उत्तर दिया, सब मिलकर भोगो। पीछे द्रौपदी को देख कर उसको अपने इस कथन पर शोक हुआ, और युधिष्ठिर के पास लेजा कर बोली, मैंने प्रमाद से ऐसा कह दिया है, अब तुम ऐसा करो कि न मेरा कहना झूठ हो, और न द्रौपदी को अधर्म हो, न घबराहट हो। तिस पर युधिष्ठिर ने अर्जुन को

कहा, हे अर्जुन तू ने इसे जीता है, सो तू अब आग्नि प्रज्वलित करके यथाविधि इसका पणिग्रहण कर। अर्जुन ने उत्तर दिया, पहले आपका विवाह होना चाहिए, फिर भीम का, फिर मेरा, फिर नकुल और सहदेव का। सो यह सोच कर आप आज्ञा दीजिये, जिसमें धर्म और यश बना रहे, तथा पंचालराज का भी हित हो। तब पांचों ने द्रौपदी पर दृष्टि डाली, और द्रौपदी ने उन पर। वह देख कर सभी कामयुक्त हो गए। युधिष्ठिर ने यह अवस्था देख कहा, कि द्रौपदी हम सब की पत्नी होगी। इतने में कृष्ण और बलराम आगए, और थोड़ी देर बातचीत करके चले गए॥

भीम अर्जुन जब रंगभूमि से आए,तो धृष्टद्युम्न कुछ साथियों समेत उनके पीछे २ आ, लुक कर उनकी बातें सुनता रहा, रात को चारों भाइयों ने भिक्षा लाकर युधिष्ठिर के आगे धरी, कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी ने उसमें से बलिवैश्व किया, और फिर आधा भीम को और शेष आधा सब को बांट दिया। तब वह अपने मृगचर्म बिछाकर लेट गए,द्रौपदी उनके पाओं की ओर लेटी लेटकर वह शूरवीरों की कथाएं और नाना प्रकार के दिव्य अस्त्रों की कथाएं कहते२ सो गए। धृष्टद्युम्न ने यह सारा वृत्तान्त आकर द्रुपद को सुनाया, कि अपनी बातों से तो वह क्षत्रिय प्रतीत होते हैं। तब द्रुपद ने अपने पुरोहित को भेजा, कि वह पता लगाए, क्या यह पाण्डुपुत्र हैं? पुरोहित ने आकर उन से बातचीत की, और पता लगा लिया, इतने में और पुरुष बरात को बुलाने आया। पाण्डव द्रुपद के घर गए, खाना खाया, और पीछे और सारी वस्तुओं को छोड़ कर वह शस्त्र देखने लगे,

इससे भी द्रुपद को उनके क्षत्रिय होने का निश्चय हुआ। फिर एकान्त में द्रुपद ने युधिष्ठिर से पूछ, तो युधिष्ठिर ने अपना ठीक पता देकर द्रुपद के सारे संशय मिटा दिये। अब द्रुपद ने युधिष्ठिर से निवेदन किया, कि आज अर्जुन द्रौपदी का पाणिग्रहण करे, तो युधिष्ठिर बोले, कि पहले मेरा भी स्त्री सम्बन्ध कर लो। द्रुपद ने कहा, कि ऐसा उचित समझते हैं, तो आप से विवाह हो जाए, युधिष्ठिर बोले, हम सब की यह रानी होगी, माता ने ऐसे कहा है, और आपकी पुत्री एक रत्न है, और हमारा नियम यह है, कि रत्न को इकठे मिल कर भोगना, सो हम अपना नियम नहीं तोड़ेंगे। द्रुपद बोले, आप धर्मवेत्ता होकर लोक वेद विरुद्ध अधर्म कैसे कहते हैं, यह आपकी बुद्धि कैसी है। युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, हे राजन्! माता ने ऐसे कहा है, और मेरा मन भी साक्षी देता है, इसमें शंका न कर। दूसरे दिन वह फिर इकट्ठे होकर बात करने लगे, तो वहां व्यास भी आगए॥

द्रुपद ने व्यास से पूछा, कि बहुतों की एक किस तरह धर्मपत्नी हो? व्यास ने कहा, कि इस लोक विरुद्ध और वेद विरुद्ध विषय में पहले मैं तुममें से हरं एक का मत सुनना चहता हूं। तिस पर द्रुपद ने कहा, यह अधर्म है, लोक वेद विरुद्ध है, और न कभी पहले किसी ने ऐसा किया है। धृष्टद्युम्न ने कहा, कि कोई भी सच्चरित्र बड़ा भाई छोटे भाई की पत्नी से संगत नहीं होगा। युधिष्ठिर ने कहा, कि न मेरी वाणी ने कभी झूठ बोला है, न मेरी अधर्म में कभी मति गई है, मेरा मन इसमें साक्षी देता है, कि यह अधर्म नहीं। पुराण में पाया जाता है, कि गौतमी जटिला

सात ऋषियों ने विवाही थी, और मुनिपुत्री वार्क्षी दस प्रचेतसों (प्रचेतानाम के दस भाइयों) से विवाह गई थी। किञ्च गुरुओं की आज्ञा धर्म होती है, माता सब से बढकर गुरू है, उसका वचन है, कि भिक्षावत् भोगो। कुन्ती बोली, जो युधिष्ठिर कहता है, वही ठीक है, मुझे झूठ से बडा डर है, किसी तरह झूठ से बचूं। तब व्यास जी राजा द्रुपद का हाथ पकड कर उसे एकांत में ले गए, और यह कथा सुनाई:—

एक बार नैमिषारण्य में देवताओं ने यज्ञ रचा, वहां यमदेवता भी यज्ञ करने वालों में थे, यम यज्ञ में लग गए, तो अब मारने वाला कोई न रहा, भूमि मनुष्यों से भर गई, तब इन्द्रादि देवता ब्रह्मा के पास गए, और कहा, कि मनुष्य भी अमर होगए हैं, अब हममें और उनमें कोई भेद नहीं रहा, सो भेद होने का प्रबन्ध कीजिये। ब्रह्मा बोले, यम यज्ञ कर रहा है, सो यज्ञ होचुकने पर इनका अन्तकाल आजाएगा। ब्रह्मा के वचन को सुनकर वह उस यज्ञ की ओर गए। गंगा में उन्होंने एक अद्भुत कमल फूल पानी में बहा आता देखा। इन्द्र उसके मूल की खोज में आगे बढा, उसने गंगा में एक स्त्री को रुदन करती हुई देखा, उस के आंसु की एक २ बूंद का सुनहरी पद्म बनता जाता था, इन्द्र ने निकट होकर पूछा, तू कौन है, और क्यों रोती है ? स्त्री बोली, मेरे साथ चलो, तो तुम मेरे रोने का कारण जान पाओगे, तब इन्द्र नें उसके साथ जा महापर्वत की चोटी पर एक युवा को युवति के साथ चौसर खेलते देखा। वह इन्द्र की कुछ परवा न कर चौसर खेलता रहा। तब इन्द्र ने क्रुद्ध हो कर कहा, कि क्या तूं नहीं जानता कि मैं इस देश का मालिक

हूं। तब वह युवा जो कि महादेव था, हंस पड़ा, और इन्द्र की ओर उसने देखा, इन्द्र वहीं जड़ होगया। खेल को समाप्त कर महादेव ने उस रोती स्त्री से कहा, कि इसे ले आओ, तब उसने इन्द्र को एक बड़ी गुफा दिखलाई, जिस में एक जैसे तेजस्वी चार इन्द्र बंद पड़े थे। महादेव ने कहा, तू भी इस गुफा में प्रवेश कर, क्योंकि तू ने बालपने से मेरा अपमान किया है, इन्द्र ने हाथ जोड़ क्षमा मांगी, तब महादेवने कहा, तेरे जैसे यहां नहीं रहसकते, इसगुफा में प्रवेश कर, और तुम पांचों मर्त्यलोक में जन्म लेकर बहुत सा जनसंहार करके फिर इस लोक में आओगे। उन पांचों इन्द्रों ने यह मांगा, कि माता की कुक्षि में हमारा आधान धर्म, वायु, इन्द्र, और अश्वि करें, महादेव ने स्वीकार किया। उन पांचों इन्द्रों के नाम यह हैं, विश्वभुक्, भूतधामा, शिवि, शान्ति, तेजस्वी। वही यह पांचों पांडव हुए हैं, और वह रोने वाली स्त्री स्वर्ग की लक्ष्मी है, जो यह द्रौपदी है। नहीं तो यह भूतल से कैसे उत्पन्न होती, कोस तक इस का गन्ध बहता है। इतना कह व्यास बोले, कि मैं तुझे दिव्यनेत्र देता हूं, तू इनको पूर्व जन्म में देख। तब व्यास की कृपा से द्रुपद को दिव्य नेत्र मिलगए, और उसने उन पांचों को सुवर्ण के मुकट धारे हुए सूर्य तुल्य तेजस्वी विशालरूपों में देखा, और उनके पास बैठी उनकी पत्नी होने के योग्य दिव्य स्त्री को देखा, इस महा आश्चर्य को देखकर उसने व्यास के चरण पकड़ कर कहा, धन्य हो।

(दूसरी कथा) व्यासजी बोले—तपोवन में बड़ी रूपवती एक ऋषिकन्या थी, योग्यपतिके न मिलने से उसने तप करके महादेव को प्रसन्न किया, महादेव ने दर्शन देकर कहा, वर मांग,

उसके मुंह 'पति दे, पति दे' पांच वार निकला, महादेव ने कहा, पांच वार तू ने कहा है,इस से तेरे पांच पति होंगे। उसने हाथजोड़ कर कहा, महाराज मैं तो एक गुणवान् पति चाहतीहूं, महादेव ने कहा, होंगे पांच ही, पर दूसरे जन्म में, सो वह यह स्वर्गलक्ष्मी है, यह पांचों की पत्नी होने के लिये ही जन्मी है, तुम सोच में न पड़ो। तब द्रुपद ने स्वीकार किया,पांचों से पांच दिनमें विवाह हुआ, यह महा आश्चर्य था, कि एक दिन विवाह होकर दूसरे दिन फिर वह कन्या ही होजाती थी॥

यह सारा वृत्तान्त क्षेपक है, इस में प्रमाण यह हैं:—

(१) कुन्ती को स्वयंवर का पता था, उसकी सलाह से ही पाण्डव वहां आए थे, और उसकी सलाह से ही स्वयंवर में सम्मिलित हुए थे, वह यह भी जानती थी, कि अर्जुन आज स्वयंवर की कठिन शर्त पूरी करने गया हुआ है, और फिर जूंही कि अर्जुन ने लक्ष्य वींधा, उसी समय युधिष्ठिर नकुल सहदेव समेत घर चला आया था। अब क्या यह होसकता है, कि युधिष्ठिर ने 'अर्जुन का द्रौपदीको जीतना'कुन्तीको न बतलाया हो,और कुन्तीने भी न पूछा हो, और यह भी न पूछा हो, कि द्रौपदी को किसने जीता,अपितु इतना भी न पूछा हो, कि भीम अर्जुन क्यों नहीं आए। पुत्र माता को शुभ प्रवृत्ति न सुनाए, न यह होसकता है, और माता स्वयं भी न पूछे न यह होसकता है,और युधिष्ठिर ने उत्तर सच्चा न दिया हो,यह विख्यात सत्यवादी युधिष्ठिर से सर्वथा असंभावित है इससे यह अवश्य मानना पड़ता है,कि कुन्ती न केवल इस बातको जानती ही थी, अपितु अर्जुन के द्रौपदी समेत घर आनेकी उदीक्षामें थी। मा की ममता ने उसे अन्दर कहां बैठने दिया होगा, वह तो

बाहर खड़ी उदीक्षा कर रही होगी। इतनी उदीक्षा में (अर्जुन के साथ आए बहुत से) लोगों का शोर सुनकर भी अन्दर ही बैठे रहना, और यह जानकर भी, कि अर्जुन स्वयंवर जीतकर आरहा है, न कि भिक्षा मांगकर, बुद्धिमती और धर्मशील कुन्ती का 'सब मिलकर भोगो' यह कहना किसी प्रकार भी नहीं बनसकता,

(२)कुन्ती ने जो शब्द कहे हैं, वह यह हैं'भुङ्क्तसमेत्य सर्वे' यहां 'भुङ्क्त' यह भुज् धातु का प्रयोग है, भुज् के दो अर्थ हैं, एक पालन, दूसरा खाना वा भोगना। पहले अर्थ में परस्मैपदी होता है, दूसरे अर्थ में आत्मनेपदी (देखो-'भुजोऽनवने' अष्टा० १। ३। ६६) यहां 'भुङ्क्त' परस्मैपदी है, इसलिये अष्टाध्यायी के अनुसार यह अर्थ होगा, 'सब मिलकर पालो' भोगो अर्थ तब होता, यदि 'भुंक्त' के स्थान 'भुङ्ग्ध्वम्' होता। अब यदि यह कहा जाए, कि व्याकरण के नियम से स्वतन्त्र होकर यहां परस्मैपद है, क्योंकि कुन्ती ने पालने के अर्थ में नहीं बोला, तो फिर सीधा कुन्ती के अन्तरीय अभिप्राय पर पहुंचो, उसने भिक्षा के अभिप्राय से कहा है, तो उसको 'खाओ' अर्थ अभिप्रेत है (क्योंकि भिक्षा खाई जाती है) न कि भोगो। यह उभयतोपाशा रज्जु है, परस्मैपद की दृष्टि से 'पालो' अर्थ होना चाहिये, पत्नी अर्जुन की रहे, पालना उसकी पांचों करेंहोंगे, कुन्ती भी सच्ची की सच्ची बनी रही, और पाणिनि का भी आदर बना रहा, और यदि कुन्ती का अभिप्राय लो, तो वह मिलकर खाने में पूरा होता है, भोगने में नहीं (३) कुन्ती स्वयं कहती है, कि 'समेत्यभुंक्त' मैंने प्रमाद से कहा है (देखो १९१।४) प्रमाद से कहा हुआ तो प्रमाण ही नहीं होता, फिर इतना वितण्डा कैसा (४) कुन्ती फिर युधि-

ष्ठिर को कहती है, कि मेरा कहा झूठा न हो, और द्रौपदी को भी पाप न लगे। यह पाप न लगे कहना ही प्रकट करता है,कि अनेक पति होने में पाप लगने का निश्चय है। अस्तु इसका उत्तर तो यही पूरा ढुकता है, कि 'भुंक्त' का अर्थ 'पालो' करलो, कुन्ती भी सच्ची रहेगी, और द्रौपदी को भी पाप नहीं लगेगा, बल्कि साथ ही पाणिनि भी समादृत होगा। अस्तु, युधिष्ठिर ने जो इसका उत्तर दिया है, वह यह है, कि उसने अर्जुन को कहा, कि तुमने इसको जीता है, तुम ही अग्नि प्रज्वलित करके इसका पाणि ग्रहण करो। युधिष्ठिर ने यह ठीक कहा है, द्रौपदी तो पाप से इसी तरह बच सकती है। पर आगेचलकर युधिष्ठिर भी इससे फिसल गया है। और युधिष्ठिर का यह कथन भी मर्यादा के विपरीत है, विवाह सम्बन्धी होम और पाणिग्रहण स्वयंवर के पीछे भी पिता के घर में होता है, जैसे कि सीता का हुआ और यहां भी द्रौपदी का हुआ। सो कवि का युधिष्ठिर के मुंह में यह वचन डालना भी इसके प्रक्षिप्त होने का ही साधक है (९) अर्जुन ने युधिष्ठिर को उत्तर दिया, कि पहले आप का विवाह होना चाहिये पीछे भीम का, पीछे मेरा। अर्जुन का कहना इस अभिप्राय से ठीक हो सकता है, कि धर्मशास्त्र की मर्यादा यही है, कि बड़े भाई का पहले विवाह होना चाहिये, पर इस मर्यादा का वेद में कोई मूल नहीं मिला, और यहां ही युधिष्ठिर के विवाहे बिना भीम का विवाह तो हिडिम्बा से हो चुका है, फिर इस मर्यादा का बल यहां है क्या? स्मृति के अनुसार इस मर्यादा के होते हुए भी बड़े की अनुमति से छोटा पहले विवाह कर सकता है। जैसा कि भीम के विषय में उत्तर बन सकेगा। तो

यहां भी अर्जुन का भाई की अनुमति तक अभिप्राय रहना चाहिये, इसीलिये अर्जुन आगे (१९१।१०) कहता है 'ऐसी अवस्था में जो बात धर्म वाली और यशवाली हो और जिसमें राजा द्रुपद का हित हो,वह विचार कर कहिये,'सो धर्मवाली बात भी यही है, कि अर्जुन उसे विवाहे, यशवाली भी यही है, और राजा द्रुपद का हित भी इसीमें है, उसने अर्जुन को विवाह देने के लिये ही तो यह उपाय रचा था (६) इसके आगे लिखा है, कि इसके अनन्तर पांचों द्रौपदी को देखने लगे,और द्रौपदी उन को देखने लगी,और देखते ही पाण्डव सारे कामातुर हो गए,युधिष्ठिर ने यह अवस्था देखकर सोचा, कि कहीं आपस में फूट ही न होजाए, इस डर से यह कहा,'कि द्रौपदी सब की पत्नी होगी (१९१।११-१६) आश्चर्य यह पाण्डवों पर कैसा अनुचित कटाक्ष है, यह पाण्डवों के चरित्र पर बड़ा कलंक लगाना है, वह ऐसे गिरे हुए न थे, कि जो न्याय से अर्जुन की पत्नी हो चुकी है, एक ही दृष्टि में उस पर उनका मन चलाजाए और वह भी इतनी बुरी तरह, कि पास बैठे हुए भी ताड़जाएं (७) जब द्रुपद ने युधिष्ठिर से यह कहा, कि अर्जुन इसका पाणिग्रहण करे, तब युधिष्ठिर ने कहा, अभी मैं भी नहीं व्याहा,और भीमसेन भी नहीं व्याहा। और तेरी कन्या रत्न है, हमारा यह नियम है, कि रत्न को सब मिलकर भोगेंगे, इसको हम तोड़ नहीं सकते।

युधिष्ठर के मुंह में एक तो यह झूठ डाला है,कि भीम अभी नहीं व्याहा गया, क्यों कि भीम हिडिम्बा को वर चुका है। दूसरा रत्न को मिल कर भोगने का नियम भी अपने २ स्थान पर ही होता है, क्या सुभद्रा रत्न न थी, यह अतीव तुच्छ हेतु

दिया है(८)अचानक ही बिन बुलाए यहां व्यास जी भी आगए, व्यास जी से पूछा गया, तो उन्हों ने इसे लोक वेद विरुद्ध कहा, फिर उनके मत पूछने लगे (१९६ । ६) भला जब लोक वेद विरुद्ध था, तो मत पूछने का क्या काम ? फिर लोक वेद विरुद्ध कह कर भी किसी को एक वार भी इस अनुचित काम से न रोका। वही व्यास जो कि जरदुश्त को वेद सिद्धान्त पर लाने के लिये ईरान जा पहुंचा था, वही यहां आर्यजाति के पवित्र सर्वमान्य धर्म पातिव्रात्य को पाददलित होते देखता है, और एक वार भी किसी को इससे नहीं रोकता, क्या यह वेद व्यास से संभावित है, कदाचित् नहीं। फिर यहां व्यास को लाया इस लिये गया है,कि उसके मुंह से इसे धर्म ठहराएं, पर व्यास किसी के सामने ऐसा कहने से हिचकचाता है, और राजा को अलग लेजा कर दो बनावटी कथाएं सुना देता है, जिससे सिद्ध करता है, कि इसके पांच पति महादेव के वर से हुए। आश्चर्य है, कि यहां प्रक्षेपक करने वाले ने महादेव की भी महिमा घटाई है, एक कन्या के मुंह से पांच वार 'पति दे, निकलने से महादेव ने पांच पति दे दिये। उसके मन की बात को समझे ही नहीं, उसका अभिप्राय तो एक ही पति से था, चाहे पांच वार छोड़ कर दस वार कहती, अर्थी वार २ कहा ही करते हैं। ऐसी भूल महादेव तो दूर रहे, हम भी नहीं करते। महादेव को योगी मानो वा ईश्वर, सर्वथा उनसे ऐसा अनुचित धर्म-विरुद्ध वर मिलना असंभव है। धर्म मर्यादा के बांधने वाले ही यदि धर्मविरुद्ध काम कराने लगे, तो मर्यादा चल निकली। फिर जब वह कन्या चिल्लाई, कि यह क्या वर दिया, तो महादेव

कहते हैं, अब होंगे तो पांच ही पति, पर अच्छा इस जन्म नहीं, अगले जन्म में होंगे ? भला जब होने ही हैं, तो क्या दूसरे जन्म में दोष न रहेगा। अगले जन्म पर बात डालनी थी, तो अगले पांच जन्मों पर डालते, सारा दोष दूर हो जाता। पूर्व जन्म की कथाएं भी दो अलग २ दे दी हैं, क्या एक से काम नहीं चलता था। प्रतीत होता है, कि पहले दूसरी कथा सीधी सादी घड़ी, पीछे जटिल विचार मिलाकर पहली कथा रची गई है। इसी तरह की इस सम्बन्ध में और भी अद्भुत बातें ही हैं, द्रौपदी के कई वर्ष तक तो कोई पुत्र नहीं हुआ, हुए तो एक २ वर्ष के पीछे पांचों से पांच हुए, न चार न छः, क्योंकि हिसाब ठीक नहीं बैठता था, इत्यादि अनेक दोष इस बनावट में हैं, जिससे बनावट सत्यता का स्थान नहीं ले सकी, और इसके विरुद्ध यह बात और भी बड़ी प्रबल है, कि यदि पाण्डव तय्यार भी होते, तो भी द्रुपद कब मान सकता था, बनावट बनाने वाले को भी यह ध्यान अवश्य है, अत एव द्रुपद को मनवाने के लिये यहां तक दूर पहुंचा है, कि व्यास ने उनको पिछले जन्म के रूप में प्रत्यक्ष दिखला दिया, तब उसने माना है। पर यह कोरे श्रद्धालु के लिए तो ठीक हो, प्रामाणिक ऐतिहासिक के लिये न होने के बराबर है। इत्यादि हेतुओं से यह भाग स्पष्ट प्रक्षिप्त सिद्ध होता है॥

दूसरी ओर महाभारत के अन्दर ही इस बात के साधक स्पष्ट प्रमाण हैं, कि द्रौपदी अर्जुन की ही स्त्री थी (१) राजा द्रुपद की इच्छा अर्जुन को द्रौपदी विवाह देने की थी, उस ने यह एक आश्चर्य निशाना मारने की परीक्षा अर्जुन के ढूंढने के लिये ही रखी थी (देखो १८५।८-१०) घोषणा भी यही दी

थी, कि जो इस लक्ष्य को वींधेगा, वह मेरी पुत्री को वरेगा (देखो १८५।११-१२)(२) स्वयंवर में भी धृष्टद्युम्न ने यही प्रतिज्ञा की थी. कि जो यह निशाना वींधेगा, मेरी वहिन उस की पत्नी होगी (देखो १८५।३४-३६) (३) स्वयंवर की शर्त अर्जुन ने ही पूरी की (४) द्रौपदी ने भी उसी के गले में वरमाला डाली, और उसी के पीछे पत्नी के तौर पर चली (५) द्रुपद के पुरोहित ने भी पाण्डवों से यही कहा, कि द्रुपद की इच्छा अर्जुन को कन्या देने की थी (६) उत्तर में युधिष्ठिर ने भी यही कहा, कि द्रुपद ने लक्ष्य वींधने वाले के लिये कन्या देनी कही थी, सो राजाओं के मध्य में अर्जुन ने शर्त पूरा करके जीती है।और साथ ही यह तसल्ली दी,कि द्रुपद की इच्छा पूरी होगी। द्रुपद की इच्छा तो अर्जुन को देनेकी ही थी । सो युधिष्ठिर अब यदि इस के विरुद्ध कहे तो वह अपने आप को झूठा बनाएगा, जिससे वह सारी आयु बचता रहा है । (७) दुर्योधन जब घर को लौटा है, तो वहां कवि ने स्पष्ट कहा है ' विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम्' 'द्रौपदी ने अर्जुन को वरा है, यह देखकर लौटा । यह स्मरण रहे, कि दुर्योधन विवाह होजाने के पीछे लौटा है (८) जब अर्जुन सुभद्रा को विवाह लाया है, तब द्रौपदी ने कोप किया है, उसको सौतिनडाह हुई है, और किसी के विवाह में नहीं (९) भीष्म आदि माननीय कौरवों ने कभी पाण्डवों को नहीं जितलाया, कि तुम पांचों ने एक नारी क्यों विवाही (१०) दुर्योधन आदि विरोधियों ने कभी पांचों को एक पत्नी रखने का न ताना दिया,न कभी उनकी हंसी उड़ाई (११) द्रौपदी पतिव्रताओं में गिनी गई है ।

प्राचीन आचार्यों में कुमारिल भट्टाचार्य ने भी इस विषय पर विचार किया है, कुमारिल भट्टाचार्य के समय भी यह बात महाभारतमें विद्यमान थी, और सारा महाभारत श्रद्धा की दृष्टि से देखाजाता था। सो उन्होंने यह प्रश्न उठा कर, कि पाण्डवों ने सदाचारके विरुद्ध काम क्यों किया, श्रद्धालुओं और परीक्षकों दृष्टि से तीन उत्तर दिये हैं—

(१) 'यौवनस्थैव कृष्णा हि वेदिमध्यात् समुत्थिता। सा च श्रीः श्रीश्च भूयोभिर्भुज्यमाना न दुष्याति ॥१॥ अतएव चोक्तम्— इदं च तत्राद्भुत रूप मुत्तमं जगाद विमर्षिरतीत मानुषम्। महानु भावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥ २ ॥ इति। नहि मानुषीष्वेव मुपपद्यते, तेनातीतमानुष मित्युक्तम्। अतएव वासुदेवेन कर्ण उक्तः 'षष्ठे च त्वामहनि द्रौपदी पर्युपस्थास्याति' इति। इतरथाहि कथं प्रमाणभूतः सन्नेवं वदेत्—अर्थ—कृष्णा यौवन चढ़ी हुई ही वेदिके अन्दर से निकली थी, और वह श्री (स्वर्ग श्री) थी, और श्री बहुतोंसे भोगी हुई भी दूषित नहीं होती (राज्य श्री आदि को बहुत भोगते ही हैं) इसी लिये कहागया है, कि वहां ब्रह्मऋषि (व्यास) ने यह बड़ी अद्भुत बात कही है, जो मनुष्यों से ऊपर की बात है, कि वह महानुभावा अगले२ दिन कन्या ही होजाती थी ॥ २ ॥ यह बात मानुषी स्त्रियों में नहीं बन सकती, इस हेतु से 'अतीत मानुषम्—मनुष्यों की पहुंच से परेकी बात' कहा है। इसी लिये श्रीकृष्ण ने कर्ण को कहा था, कि 'छटे दिन द्रौपदी तेरी सेवा में आया करेगी' इतरथा (यदि द्रौपदी मानुषी होती तो) कैसे प्रमाणभुत श्रीकृष्ण इस तरह की बात कहते। (यह पक्ष सारी बातों पर पूरी श्रद्धा करने वालों का है—सम्पादक)

(२) अथवा बह्वय एव ताः सदृशरूपा द्रौपद्य एकत्वेनोपचरिता इति व्यवहारार्थापत्त्या गम्यते—अर्थ—अथवा बहुतसी ही वह समान रूपवाली द्रौपदियें (द्रुपदकी पुत्रियें) एकत्व के तौर पर लक्षणा से कही गई हैं, यह व्यवहारार्थापत्ति से जाना जाता है ।

(३) यद्वा—नार्यर्जुनस्यैव केवलस्य भविष्यति । साधारणा प्रसिद्धिस्तु निश्छिद्रत्वाय दर्शिता=अर्थ—अथवा पत्नी वह निरी अर्जुन की होगी, सांझी है यह प्रसिद्धि इस प्रयोजन के लिये की, कि पाण्डवों में फूटका कोई छिद्र किसी के मन में न बैठे ।

यहां कुमारिलने पहले पक्ष में संतुष्ट न होकर दूसरा कहा, उसमें भी संतुष्ट न होकर तीसरा पक्ष कहा, यही अन्तिम पक्ष कुमारिल भट्टाचार्य को अभिमत है, उससे हमारा भेद यही है, कुमारिल ने उस प्रसिद्धि का प्रयोजन बतलाया है, प्रक्षिप्त नहीं कहा ।

कइयों का विचार है, कि एक स्त्री के बहुत पति होना भी कई प्राचीन जातियों में प्रचालित था, और अब भी कहीं २ है, इस लिये द्रौपदी के पांच पति माने जासकते हैं । इस का उत्तर यह है, कि यद्यपि अन्य असभ्य जातियों में कहीं ऐसा प्रचार भी रहा हो, वा हो, पर आर्यजाति में ऐसे प्रचार का कहीं गन्ध नहीं पाया जाता, प्रत्युत इसका निषेध पाया जाता है । इसी प्रक्षिप्त भाग में जो गौतमी जटिला और वार्क्षी के उदाहरण दिये हैं, वह भी ऐतिहासिक नहीं । वार्क्षी की कथा तो विष्णुपुराण १।१४–१५ में में इस प्रकार दी है, कि प्रचेतस दस हजार वर्ष समुद्रमें तपस्या करतेरहे, जब वह बाहर निकले, तो उन्होंने देखा, कि पृथिवी पर सारे वृक्ष ही वृक्ष भर गए हैं, मनुष्य कोई नहीं रहा, उन्होंने क्रोध से अपने मुंह से वायु और अग्नि निकाला, उस वायु ने वृक्षों को जड़ से

उखाड दिया, और अग्नि ने भस्म कर दिया, थोडे वृक्ष शेष बच रहे, तब राजा सोमने उनसे प्रार्थना की, कि यह कन्या वार्क्षी जो वन वृक्षों से उत्पन्न हुई है, इसको आप लेकर संतान बढाएं. और वृक्षों पर क्रोध न करें, यह वार्क्षी की कथा है, ऐसी ही कोई जटिला की भी होगी।

अब यह प्रश्न शेष रहता है, कि महाभारत में यह बात डाली क्यों कर गई, संभवतः इसके कई कारण हो सकते हैं (१) पातिव्रत्य धर्म के विरोधी किसी वाममार्गी ने डाली हो, (२) वा हो सकता है, कि दुर्योधन के पक्षवालों ने ऐसा झूठा अपवाद फैलाया हो, और उनकी किसी सन्तान परम्परा में बना रहा हो, जो पीछे किसी ने संगृहीत किया हो, और इस अपवाद के फैलने का बीज यह हो सकता है, कि द्रौपदी वन में भी पाण्डवों के साथ रही, उनको उकसाती रही।

अध्याय ३७ (२०१-२०२) दुर्योधन और कर्णकी धृतराष्ट्रसे मन्त्रणा

मूल—ततो दुर्योधनश्चापि राधेयश्च विशांपते। धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोब्रूतामिदं तदा ॥ १ ॥ सन्निधौ विदुरस्य त्वां दोषं वक्तुं न शक्नुवः। विविक्तमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितम् ॥ २ ॥ सपत्नवृद्धिं यत् तात मन्यसे वृद्धि मात्मनः। अभिष्टौषि च यत्क्षत्तुः समीपे द्विषतांवर ॥३॥ अन्यास्मिन् नृप कर्तव्येत्वमन्यत् कुरुषेऽनघ। तेषां बलविघातोहि कर्तव्यस्तात नित्यशः ॥४॥ ते वयंप्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे। यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥५॥

अर्थ—हे नरेश! अनन्तर दुर्योधन और राधापुत्र कर्ण धृतराष्ट्र के पास आकर यह वचन बोले ॥ १ ॥ विदुर के सामने आप को कोई दोष नहीं कह सके, अब एकान्त पाकर कहते हैं, हे

राजन् ! यह आप क्या करना चाहते हैं, हे तात ! जो शत्रु की वृद्धि को अपनी वृद्धि समझते हैं, और विदुर के सामने शत्रुओं की स्तुति करते हैं ॥ २,३ ॥ हे राजन् ! हे निष्पाप ! अब कर्तव्य कुछ और है, और आप कर कुछ और रहे हैं, हे तात ! हमें सदा उनका बल घटाना चाहिये ॥ ४ ॥ सो हमें अब समय के योग्य करने का विचार करना चाहिये, जिससे कि वह हमें पुत्र सेना और बान्धवों समेत ग्रस न लें ॥ ५ ॥

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तद्ब्रवीहि सुयोधन । राधेय मन्यसे यच्च प्राप्तकालं वदाशु मे ॥६ ॥

दुर्योधन उवाच—अद्य तान् कुशलैर्विप्रैः सुगुप्तैराप्तकारिभिः । कुन्तीपुत्रान् भेदयामो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ७ ॥ अथवा द्रुपदो राजा महद्भिर्वित्तसंचयैः । पुत्राश्चास्य प्रलोभ्यन्ताममात्यश्चैव सर्वशः ॥ ८ ॥ परित्यजेद् यथा राजा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥९॥ अथ तत्रैव वा तेषां निवासं रोचयन्तु ते । इहैषां दोषवद्वासं वर्णयन्तु पृथक् पृथक् ॥१०॥ भीमसेनस्य वा राजन्नुपायः कुशलैर्नरैः । मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः ॥११॥ अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे । तमृते फाल्गुणो युद्धे राधेयस्य न पादभाक् ॥ १२ ॥ ते जानानास्तु दौर्बल्यं भीमसेनमृतेमहत् । अस्मान् बलवतो ज्ञात्वा न यतिष्यन्ति दुर्बलाः ॥ १३ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले, हे सुयोधन ! जिस काम के करने का समय आपड़ा तू समझता है, वह कहो, और हे राधापुत्र जो तू समझता है, तूभी कहो ॥ ६ ॥ दुर्योधन बोला अब हमारे पूरे विश्वासी निपुण गुप्तचर जावें, जो कुन्तीपुत्रों को और माद्री पुत्रों को आपस में फोड़ दें ॥ ७ ॥ अथवा राजा द्रुपद,को उसके

पुत्रों और मन्त्रियों को बहुत से धनों से लुभावें, जिससे कि द्रुपद कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को छोड़दे ॥ ८,९ ॥ अथवा वह (हमारे चर) अलग २ उनके यहां रहने को दोषों वाला बतलाकर वहीं उनका वास पसन्द करवाएं ॥ १० ॥ अथवा हे राजन् ! उपाय जानने वाले निपुण चरों से भीम को मरवा डालें, वह उनमें से बल से बड़ा है ॥ ११ ॥ अर्जुन युद्ध में अजेय होजाता है, जब भीम उसका पृष्ठरक्षक हो, उसके बिना अर्जुन युद्ध में राधापुत्र का चतुर्थांश भी नहीं॥१२॥ भीमसेन के विना वह अपनी बड़ी दुर्बलता जानते हुए और हमें बलवान् जानते हुए (राज्य के लिये) यत्न नहीं करेंगे ॥ १३ ॥

मूल–कर्ण उवाच–दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः । न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुवर्धन ॥ १४ ॥ पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मै रुपायैर्यतितास्त्वया । विग्रहीतुं तदा वीर नचैव शकितास्त्वया ॥ १५ ॥ इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव । अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम् ॥ १६ ॥ जातपक्षाविदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते।नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युत ॥ १७॥ परस्परेण भेदश्च नाधातुं तेषु शक्यते । आर्यव्रतश्च पाञ्चाल्यो नस राजा धनप्रियः ॥ १८ ॥ न संत्यक्ष्यति कौन्तेयान् राज्य-दानैरपि ध्रुवम् । तथाऽस्य पुत्रो गुणवाननुरक्तश्च पाण्डवान् ॥ १९ ॥ तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथञ्चन । इदं त्वद्य क्षमं कर्तु मस्माकं पुरुषर्षभ ॥ २० ॥

अर्थ-कर्णबोला–हे दुर्योधन मेरी समझ में तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं, क्योंकि हे कुरुवर्धन ! पाण्डव उपाय से बस नहीं हो सकते ॥ १४ ॥ पहले ही तूने सूक्ष्म उपायों से उनको दबाने का

यत्न किया, पर हे वीर तुम कर नहीं सके ॥ १५ ॥ हे भूपते ! जब वह यहां ही आप के पास थे, विन पंखों के (विन सहायकों के) छोटे बच्चे थे, तब तुम उनको नहीं मारसके ॥ १६ ॥ अब तो वह बड़े होगए, उनके पंख निकल आए और विदेश में हैं, अब वह उपाय से बस नहीं आसकते, यह मेरा निश्चय है ॥१७॥ आपस में उन में फूट डाली जाही नहीं सकती, पंचालराज भी आर्यव्रत है, वह धनका प्यारा नहीं ॥ १८ ॥ वह राज्य देने से भी पाण्डवोंको नहीं त्यागेगा। तथा उसका पुत्र भी गुणवान् है और पाण्डवों में अनुरागवाला है, इसलिये मैं उनको किसी प्रकार भी उपायसाध्य नहीं समझता हूं। सो हे पुरुषवर ! हमें अब यह करना चाहिये, कि ॥ २० ॥

मूल—यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशांपते । तावत् प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥ २१॥ यावच्च राजा पांचाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः । सहपुत्रैर्महावीर्यैस्तावद् विक्रम पार्थिव॥ २२ ॥ यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन् यादववाहिनीम् । राज्यार्थं पाण्डवेयानां पांचालयसदनं प्रति ।२३।वसूनि विविधान् भोगान् राज्यमेव च केवलम् । नात्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे कथंचन ॥२४ ॥ नहि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः । शक्याः साधयितुं तस्माद् विक्रमेणैव तान्जहि ॥२५॥ तान् विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुङ्क्ष्व मेदिनीम् । अतोनान्यं प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप॥२६।

अर्थ—हे नरेश!जब तक पाण्डव जड़ नहीं पकडते,उससे पहले ही प्रहार करो, सोचो नहीं ॥२१॥ जब तक पंचाल राज महाबली पुत्रों समेत (युद्ध के) उद्योग में मन नहीं लगाते, उससे पहले

ही विक्रम दिखाओ ॥ २२ ॥ जब तक यादवसेना को लेकर कृष्ण पाण्डवों के राज्य के लिये द्रुपद के स्थान पर नहीं आते (उससे पहले ही प्रहार करो) ॥२३॥ धन, भांति २ के भोग और राज्य भी कृष्ण को पाण्डवों के लिये किसी प्रकार भी अदेय नहीं है ॥ २४ ॥ पाण्डव न साम से, न दाम से, न भेद से वश में आसकते हैं,इसलिये विक्रम से ही उनको मार॥२५॥उनको विक्रम से जीत कर इस सारी पृथिवी को भोग, इससे भिन्न हे नरेश ! मैं और कोई उपाय नहीं देखता हूं ॥२६॥

मूल श्रुत्वा तु राधेयवचो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् । अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमब्रवीत् ॥२७॥ उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूत नन्दने । त्वयि विक्रमसम्पन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥२८॥
भूयएवतु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च । युवां च कुरुतं बुद्धिं भवेद् या नः सुखोदया ॥२९॥ तत आनाय्य तान् सर्वान् मन्त्रिणः सुमहायशाः । धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥३०॥

अर्थ—राधापुत्र के वचन को सुन, और उसका आदर करके, प्रतापी धृतराष्ट्र यह वचन बोले ॥ २७ ॥ हे सूतपुत्र तुम जो महापण्डित, अस्त्रनिपुण हो, तुम्हारे लिये यह ऐसा विक्रम वाला वचन युक्त ही है ॥ २८ ॥ किन्तु फिर भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों मिलकर सोचो, जो हमारे मंगल के लिये हो ॥ २९ ॥ तब हे महाराज ! महायशस्वी धृतराष्ट्र उन सब मन्त्रियों को बुला कर उनके साथ सोचने लगे ॥३०॥

अध्याय ३८ (२०३-२०५) भीष्म, द्रोण और विदुर की सम्मति ।

मूल—भीष्म उवाच—न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथञ्चन । यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डु रसंशयम् ॥ १ ॥ गान्धार्याश्च यथा पुत्रा

स्तथा कुन्तीसुता मम । यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव ॥२॥ यथा च मम राज्ञश्च तथा दुर्योधनस्य ते । तथा कुरूणां सर्वेषाम न्येषामपि पार्थिव ॥३॥ एवंगते विग्रहं तै र्नरोचये सन्धाय वीरैर्दीयता मर्धभूमिः । तेषामपीदं प्रपितामहानां राज्यं पितुश्चैव कुरूत्तमानाम् ॥ ४ ॥ यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेया यशस्विनः । कुतएव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित् ॥५॥ मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम् । एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च ॥ ६ ॥ अतोऽन्यथा चेत् क्रियते न हितं नो भविष्यति ॥७॥ कीर्तिरक्षण-मातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् । नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—भीष्म बोले, पाण्डवों के साथ विग्रह करना मुझे किसी प्रकार भी पसन्द नहीं, मुझे जैसे धृतराष्ट्र है, वैसे ही पाण्डु है ॥ १ ॥ मुझे जैसे गान्धारी के पुत्र हैं, वैसे ही कुन्ती के पुत्र हैं, और जैसे उनकी मुझे रक्षा करनी चाहिये, वैसे हे धृतराष्ट्र तुझे भी रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥ और हे राजन् ! जैसे वह मेरे अपने हैं, वैसे ही राजा दुर्योधन के भी हैं, और सब कुरुओं के हैं ॥ ३ ॥ ऐसी अवस्था में मुझे उन से विग्रह करना अभीष्ट नहीं है, उन वीरों के साथ मेल करके उन्हें आधी भूमि दे देनी चाहिये । उन कुरुवरों के भी यह बड़ों का तथा पिता का राज्य है ॥ ४ ॥ यदि वह यशस्वी पाण्डव राज्य के अधिकारी नहीं, तो फिर कैसे आप का भी तथा और किसी भी कौरव का अधिकार है ॥ ५ ॥ सो प्रसन्नता से ही उनको आधा राज्य दे देना चाहिये, इस में हे पुरुषवर ! सब का भला है ॥ ६ ॥ इस से यदि उलट हुआ, तो हमें अभिमत नहीं होगा ॥ ७ ॥ कीर्ति की रक्षा

करो, कीर्ति परम बल है, जिस की कीर्ति नष्ट हो गई, ऐसे पुरुष का जीना निष्फल है ॥ ८ ॥

मूल—तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम् । अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥ ९ ॥ दिष्ट्या ध्रियन्ते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा । दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामो ऽत्ययंगतः ॥ १० ॥ नचापि दोषेण तथा लोको मन्येत पुरोचनम् । यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छति ॥ ११ ॥ तदिदं जीवितं तेषां तव किल्बिषनाशनम् । संमन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम् ॥ १२ ॥ यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे । क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥ १३ ॥

अर्थ—सो कुरुकुल के योग्य धर्म का अनुष्ठान कर, हे महाबाहो ! अपने बड़ों के सदृश काम कर ॥९॥ भाग्य से पाण्डव जीते हैं, भाग्य से पृथा जीती है । भाग्य से पापी पुरोचन सफल नहीं हुआ, और नाश को प्राप्त हुआ है ॥ १० ॥ हे पुरुषवर लोग पुरोचन को ऐसा दोष नहीं लगाते, जैसा तुझे लगाते हैं ॥ ११ ॥ सो यह उनका जीवित रहना, और (यहां) दर्शन, तेरी अपकीर्ति का नाशक बनेगा ॥ १२ ॥ यदि तूने धर्म करना है और यदि मेरा प्रिय करना है, और सब की भलाई करनी है, तो उनका आधा देदो ॥ १३ ॥

मूल—द्रोण उवाच—ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः । संविभाज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥ १४॥ प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चित् प्रियंवदः । बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ १५ ॥ वृद्धिं च परमां ब्रूयात् तत्संयोगोद्भवां तथा । संप्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद् राजन् दुर्योधनं तथा ॥ १६ ॥

उचिततवं प्रियत्वं च योगस्यापि वर्णयेत् । पुनः पुनश्च कौन्तेयान् माद्रीपुत्रौ च सान्त्वयन् ॥१७॥ एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह । उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्रूयात् तेषामागमनं प्रति ॥१८॥ अनुज्ञातेषु वीरेषु बलं गच्छतु शोभनम् । दुःशासनो विकर्णश्चाप्यानेतुं पाण्डवानिह ॥ १९ ॥ एतत् तव महाराज पुत्रेषु तेषु चैवहि । वृत्तमौपायिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥ २० ॥

अर्थ—द्रोणबोले—हे तात ! मेरा भी यही विचार है, जो भीष्म का है, पाण्डवों का भी भाग देना ही चाहिये,यह सनातन धर्म है ॥ १४ ॥ हे भारत ! प्रिय बोलने वाला कोई पुरुष द्रुपद की ओर भेजिये, जो पाण्डवों के लिये बहुत से रत्न लेजाए॥१५॥ जो उस सम्बन्ध की बड़ी बधाई दे और यह कहे, कि तुम और दुर्योधन बड़े प्रसन्न हुए हो ॥१६॥ इस सम्बन्ध का उचित होना और हम सबों को इसका प्रिय होना बतलाए, कुन्ती पुत्रों और माद्री पुत्रों को बार २ तसल्ली दे ॥ १७ ॥ द्रुपद और पाण्डवों को इस प्रकार तसल्ली के वाक्य कहकर फिर उनके आने के लिये कहे ॥ १८ ॥ उन वीरों के अनुज्ञा देने पर पाण्डवों को लाने के लिये दुःशासन और कर्ण के अधीन सजी हुई सेना जाए॥१९॥ हे महाराज ! पुत्रों में और उन में तुम्हारा ऐसा वर्ताव मैं और भीष्म उचित समझते हैं* ॥ २० ॥

---

* इस से आगे कर्ण की वक्तृता का आशय यह है,कि यह आप के मन्त्री तेरी भलाई नहीं चाहते, इन की भावना दुष्ट है, हे राजन् ! इन पर भरोसा न करें, जो भाग्य में है, वह होता है, सुना है, कि मगध का राजा अम्बुवीच राजगृह में रहता था,राजा सारे इन्द्रियों (नेत्र आदि) से हीन था, उस का एक महाकर्णी नामक मन्त्री था,

मूल—विदुर उवाच—चिन्तयंश्च न पश्यामि राजन् तव सुहृत्तमम्। आभ्यां पुरुषसिंहाभ्यां यो वा स्यात् प्रज्ञयाऽधिकः॥२१॥ इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च। समौ च त्वयि राजेन्द्र तथा पाण्डुसुतेषु च ॥ २२ ॥ न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः कथं सत्य पराक्रमौ। एतद्धि परमं श्रेयो मन्येऽहं तव भारत ॥ २३ ॥ दुर्योधन प्रभृतयः पुत्रा राजन् यथा तव। तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन् न संशयः ॥२४॥ तेषु चेद् हितं किञ्चिन्मन्त्रयेयुर तद्विदः। मन्त्रिणस्ते न च श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः ॥ २५॥

अर्थ—हे राजन् ! मैं सोचता हुआ इन दोनों (भीष्म द्रोण) पुरुष वीरों से बढ़ कर तेरा कोई सुहृद् नहीं जानता हूं, और न प्रज्ञा में इनसे अधिक किसी को समझता हूं ॥ २१ ॥ यह दोनों अवस्थासे, प्रज्ञा और शास्त्र से वृद्ध हैं, और हे राजेन्द्र आपके विषय में और पाण्डवों के विषय में समान हैं ॥२२॥ कैसे होसकता है, कि सच्चे पराक्रम वाले यह दोनों आपका मंगल न सोचें, हे भारत ! मैं आपका यह परम मंगल समझता हूं ॥ २३ ॥

राजा का सारा भरोसा उसी पर था, उसका बल इतना बढ़ा, कि वह राजा को अपमान करने लगा, और राजा की स्त्रियें रत्नधन सब आप भोगने लगा, उसने राज्य छीनने की भी चेष्टा की पर वह छीन नहीं सका। इसमें और क्या कारण होसकता है यही, कि उसने राजा बना ही रहना था, सो तेरी भी यदि प्रारब्ध में राज्य है, तो टिका रहेगा, नहीं तो, यत्न करने पर भी नहीं रहेगा, ऐसा जानकर दुष्ट अदुष्ट मन्त्रियों की बात को जानें। (परन्तु कर्ण इसप्रकार भीष्म और द्रोणको दुष्ट कह नहीं सकता था, और नही यह वीरोचित वचन है, जिस में प्रारब्ध पर भरोसा दिखलाया है —सम्पादक)

हे राजन् जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव हैं, इस में संशय नहीं ॥ २४॥यदि इस बातके न जानने वाले कोई मन्त्री उनके विषय में अहित की बात कहते हैं, तो वह आप के मंगल पर विशेष दृष्टि नहीं डालते ॥ २५ ॥

मूल—इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचन कृतं महत् । तेषा मनुग्रहेणाद्य राजन् प्रक्षालयात्मनः ॥ २६ ॥ तेषा मनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले । जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम् ॥२७॥ द्रुपदोऽपि महान् राजा कृतवैरश्च नः पुरा । तस्य संग्रहणं राजन् स्वपक्षस्य विवर्धनम् ॥२८॥ बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशाम्पते । यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ २९ ॥ यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप । को दैव शप्तस्तत्कार्यं विग्रहेण समाचरेत् ॥ ३० ॥ श्रुत्वा च जीवतः पार्थान् पौरजानपदा जनाः । बलवद् दर्शने हृष्टास्तेषां राजन् प्रियं कुरु ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे राजन् ! पुरोचन का किया जो आप पर बड़ा अपयश लगा है, उन पर अनुग्रह करके आज उसको धो डालें॥२६॥ यह उनपर अनुग्रह हम सब के वंशमें जीवन है,परम मंगल है और क्षत्र के बढ़ाने वाला है ॥२७॥ राजा द्रुपद भी जो एक बड़ा राजा है, उससे हम पहले वैर करचुके हैं, उसका मिलाना भी हे राजन् अपने पक्ष का बढाना है ॥२८॥ हे नरेश ! यादव भी बहुत हैं और बली हैं, वह सब उधर होंगे, जिधर कृष्ण होंगे, और जिधर कृष्ण होंगे, उधर विजय होगा ॥ २९ ॥ जो काम हे नरेश ! साम से ही सिद्ध होसके, कौन दैवसे शाप दिया हुआ उस कार्य को युद्ध से साधना चाहेगा ॥ ३० ॥ पाण्डवों को जीता सुन कर पुर और देश के लोग, उनको देखने के लिये बड़ी प्रसन्नता मना रहे हैं, हे

राजन् ! उन का प्रिय करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अध्याय ३९ (व० २०६) विदुर का पाण्डवों के पास जाना

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—भीष्मः शान्तनवो विद्वान्, द्रोणश्च भगवानृषिः । हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम् ॥ १ ॥ यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः । तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥ २ ॥ यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते । तथैव पाण्डु पुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥ ३ ॥ क्षत्तरानय गच्छैतान् सह मात्रा सुसत्कृतान् । तया च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत ॥ ४ ॥ दिष्ट्या जीवन्ति ते पार्था दिष्ट्या जीवति सा पृथा । दिष्ट्या द्रुपदकन्यां च लब्धवन्तो महारथाः ॥ ५ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—विद्वान् भीष्म भगवान् ऋषि द्रोण, और आप मेरे पूरे हितकी और सच्ची बात कहते हैं ॥ १ ॥ जैसे वह वीर महारथी पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे वह सब धर्म से मेरे पुत्र हैं, संशय नहीं ॥ २ ॥ जैसे मेरे पुत्रों का यह राज्य है, वैसे पाण्डु के पुत्रों का राज्य है, संशय नहीं ॥ ३ ॥ हे विदुर तुम जाओ और उनको बड़े आदर के साथ माता के और देवी कृष्णा के साथ यहां ले आओ ॥ ४ ॥ भाग्य से पाण्डव जीते हैं, भाग्य से पृथा जीती है, भाग्य से वह महारथ द्रुपद कन्या को लाभ किये हैं ५

मूल—ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात् । सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥ ६ ॥ समुपादाय रत्नानि वसूनि विविधानि च । द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव हि ॥ ७ ॥ तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्व शास्त्र विशारदः । द्रुपदं न्यायतो राजन् संयुक्त मुपतस्थिवान् ॥ ८ ॥ सचापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः । चक्रतुश्च यथान्यायं कुशलप्रश्नसंविदम् ॥ ९ ॥ ददर्श पा-

ण्डवांस्तत्र वासुदेवं च भारत । स्नेहात् परिष्वज्य स तान् पप्रच्छानामयं तदा ॥ १० ॥ तैश्चाप्यमितबुद्धिः स पूजितोऽहि यथा क्रमम् । प्रददौ चापि रत्नानि वसूनि विविधानि च॥ ११ ॥ पाण्डवानां च कुन्त्याश्च द्रौपद्याश्च विशांपते । द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः ॥ १२ ॥ प्रोवाच चामितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः । द्रुपदं पाण्डुपुत्राणां सन्निधौ केशवस्य च ॥ १३ ॥

अर्थ—हे भारत ! तब धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर पाण्डवों के, द्रौपदी के, और यज्ञसेन के लिये भांति २ के रत्न और धन ले कर, यज्ञसेन और पाण्डवों के पास गये ॥ ६, ७ ॥ वहां जाकर सारे शास्त्रों में निपुण धर्मज्ञ विदुर यथा विधि सम्बन्धी द्रुपद के पास गया ॥ ८ ॥ उसने भी विदुर को यथाविधि स्वीकार किया, पीछे वह दोनों यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछते भए ॥ ९ ॥ वहां विदुर ने पाण्डवों को और कृष्ण को भी देखा, और प्रेमसे गले लगा कर उनसे आरोग्य पूछा ॥ १० ॥ उन्होंने भी उस महामति का यथाक्रम सम्मान किया, तब उसने हे नरेश! भांति २ के वह रत्न और धन पाण्डवों को, कुन्ती को, द्रौपदी को, और द्रुपद के पुत्रों को दिये, जैसे कौरवों ने दिये थे ॥ ११, १२ ॥ और वह महामति नम्र होकर पाण्डवों के और कृष्ण के सामने द्रुपद से यह नम्र वाक्य बोले॥ १३ ॥

मूल—विदुर उवाच—राजञ्छृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम । धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः ॥ १४ ॥ अब्रवीत् कुशलं राजन् प्रीयमाणः पुनः पुनः । तथा भीष्मः शान्तनवः कौरवैः सह सर्वशः ॥ १५ ॥ भारद्वाजो महाप्राज्ञस्त्वां कुशलं परि पृच्छति ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया सम्बन्ध मीयि-

वान् । कृतार्थं मन्यतेत्मानं तथा सर्वेपि कौरवाः ॥ १७ ॥ न तथा राज्य संप्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता । यथा सम्बन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥ १८ ॥ एतद् विदित्वा तु भवान् प्रस्थापयतु पाण्डवान् । द्रष्टुं हि पाण्डु पुत्रांश्च त्वरान्ति कुरवो भृशम् ॥ १९ ॥ विप्रोषिता दीर्घकाल मेते चापि नरर्षभाः । उत्सुका नगरं द्रष्टुं भाविष्यन्ति तथा पृथा ॥ २० ॥ कृष्णामपि च पांचालीं सर्वाः कुरुवर स्त्रियः । द्रष्टु कामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयाश्च ्नः ॥ २१ ॥

अर्थ—विदुर बोले—हे राजन् ! आप मन्त्रियों और पुत्रों समेत मेरा वचन सुनें, धृतराष्ट्र ने पुत्रों मित्रों और बान्धवों समेत, बहुत प्रसन्न हो बार २ आप का कुशल पूछा है, तथा शान्तनव भीष्म ने और दूसरे सारे कौरव और महाप्राज्ञ द्रोण आपको कुशल पूछते हैं ॥ १४, १५, १६ ॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्र आप के साथ सम्बन्ध लाभ कर अपने आपको कृतकृत्य मानता है, वैसे और भी सभी कौरव ॥ १७ ॥ हे यज्ञसेन उनको राज्य का मिलना वैसा प्रीतिकारी नहीं, जैसी आप से सम्बन्ध पाकर प्रीति हुई है ॥ १८ ॥ यह जान आप पाण्डवों को भेजने योग्य हैं, पाण्डु के पुत्रों को देखने के लिये कौरव अत्यन्त त्वरा करा रहे हैं ॥ १९ ॥ यह नरवर भी दीर्घकाल बाहर रहे हैं, नगर देखने की उत्कण्ठा वाले होंगे और पृथा भी ॥ २० ॥ कौरवों की सब स्त्रियें तथा पुर और देशके लोग कृष्णा को देखने की इच्छा से बाट जोह रहे हैं ॥ २१ ॥

अ० ४० (व० २०७) पाण्डवों का हस्तिनापुर आना

मूल—द्रुपद उवाच—एवमेतन्महाप्राज्ञ यथात्थ विदुराद्यमाम् । ममापि परमो हर्षः सम्बन्धेऽस्मिन् कृते प्रभो ॥ १ ॥ गमनं

चापि युक्तं स्याद् दृढ मेषां महात्मनाम् । यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥ भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ च पुरुषर्षभौ । राम कृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः ॥ ३ ॥

अर्थ—द्रुपद बोले—हे महाप्राज्ञ विदुर ! यह इसी तरह है, जैसा कि तुम मुझे कहते हो, हे प्रभो ! मुझे भी इस सम्बन्ध के होने पर बड़ा हर्ष हुआ है ॥ १ ॥ वहां जाना भी इन महात्माओं का निःसंदेह उचित ही है, किन्तु जब कुन्तीपुत्र वीर युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा धर्मज्ञ राम कृष्ण (जाना उचित) समझें, तब पाण्डव जाएं ॥ ३ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—परवन्तो वयं राजं स्त्वायि सर्वे सहानुगाः । यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या तव करिष्यामहे वयम् ॥ ४ ॥ ततोऽब्रवीद् वासुदेवो गमनं रोचते मम । यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्व धर्म वित् ॥ ५ ॥ द्रुपद उवाच—यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः । प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥ ६ ॥ न तद् ध्यायति कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । यथैषां पुरुषव्याघ्रः श्रेयो ध्यायति केशवः ॥ ७ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे राजन् ! हम सब साथियों समेत आप के अधीन है,जो आप प्रसन्नता से कहेंगे,वही हम करेंगे॥४॥ तब कृष्ण बोले, मुझे इनका जाना पसंद है, आगे जैसा सब धर्मों के जानने आप समझते हैं ॥ ५ ॥ द्रुपद बोले— जैसे महाबाहु पुरुषवर वीर दाशार्ह इस समय के योग्य समझता है, वही मेरी निश्चित बुद्धि है ॥ ६ ॥ पाण्डु पुत्र कौन्तेय युधिष्ठिर वैसा चिन्तन नहीं करता है, जैसा पुरुष वर कृष्ण इन का कल्याण चिन्तन करता है ॥ ७ ॥

मूल—ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना । पाण्डवाश्चैव कृष्णश्च विदुरश्च महीपते ॥ ८ ॥ आदाय द्रौपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम् । सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा चाप्यागतान् वीरान् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥ १० ॥ विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारत । द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥ ११ ॥

अर्थ—अनन्तर हे नरेश ! महात्मा द्रुपद से अनुज्ञा दिये हुए पाण्डव, कृष्ण ॥ ८ ॥ द्रुपदसुता कृष्णा और यशस्विनी कुन्तीको लेकर सैर करते हुए आनन्द से हस्तिनापुर पहुंचे ॥९॥ उन वीरों को आया सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के स्वीकार के लिये कौरवों को भेजा ॥ १० ॥ तथा धनुर्धारी विकर्ण, चित्रसेन, द्रोण और गौतमवंशी कृप को भेजा ॥ ११ ॥

मूल-तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः । नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥ १२ ॥ कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाभवत् ॥ १३ ॥ तत उच्चावचा वाचः पौरैः प्रियचिकीर्षुभिः। उदीरिता अशृण्वंस्ते पाण्डवा हृदयंगमाः ॥ १४ ॥ ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः । अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम् ॥ १५ ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण च । न्यविशन्ताथ वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १६ ॥विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः । आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेण च ॥ १७ ॥

अर्थ—उनसे युक्त हुए सजे हुए वह महाबली वीर शनैः २ हस्तिनापुरमें प्रविष्ट हुए ॥ १२ ॥ आनन्द से सारा नगर प्रकाशमान सा होगया ॥ १३ ॥ वहां वह पाण्डव शुभचिन्तक पुरवासियों

की भांति २ की मीठी २ वाणियां सुनते भए ॥ १४ ॥ अनन्तर वह धृतराष्ट्र महात्मा भीष्म और दूसरे योग्य पुरुषों के पादवन्दन करते भए ॥ १५ ॥ सारे नगर से कुशल प्रश्न करने के अनन्तर धृतराष्ट्र की आज्ञा से वासगृहों में प्रविष्ट हुए ॥ १६ ॥ वह महात्मा महाबली जब कुछ काल विश्राम पाचुके, तो एक दिन राजा धृतराष्ट्र और भीष्म ने उन्हें बुलाया ॥ १७ ॥

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम । पुनर्नो विग्रहो माभूत् खाण्डवप्रस्थ माविश ॥ १८ ॥ न च वो वसतस्तत्र कश्चिच्छक्तः प्रबाधितुम् । अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थ माविश ॥ १९ ॥ प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः । अर्द्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थ माविशन् ॥ २० ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—हे कुन्तीपुत्र ! भाइयों के साथ फिर तुम्हारा झगड़ा न हो, इसलिये मेरी बात मानो, खाण्डवप्रस्थ में जा रहो ॥ १८ ॥ वहां रहते हुए आप को कोई तंग नहीं कर सकता, इसलिये आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थ में जा रहो ॥१९॥ तब वह पुरुषवर आधा राज्य पाकर उस घोर वन* की ओर चले, और खांडवप्रस्थ में जारहे ॥ २० ॥

मूल—ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः । मण्डयां चक्रिरे तद्वै परं स्वर्ग वदच्युताः ॥ २१ ॥ ततः पुण्ये शिवे देशे शान्ति कृत्वा महारथाः । नगरं मापयामासुर्द्वैपायन पुरोगमाः २२ सागरप्रतिरूपाभिःपरिखाभिर लङ्कृतम् । प्राकारेण च संपन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥ २३ ॥ द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैः सौधैश्च

---

* घोर वन कहने से यह स्पष्ट है, कि भूमि का वह भाग पाण्डवों को दिया, जो बंजर पड़ा था ।

शोभितम् ! गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरै र्मन्दरोपमैः ॥ २४ ॥ शक्तिभिश्चावृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः । तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम् ॥ २५ ॥ तक्ष्णांकुशशतघ्नीभि र्यन्त्र जालैश्च शोभितम् । आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत् पुरोत्तमम् ॥ २६ ॥

अर्थ—उन अच्युत पाण्डवों ने कृष्ण सहित वहां पहुंच कर उस स्थान को स्वर्ग की भांति सजाया ॥ २१ ॥ फिर उन महारथों ने व्यास की आज्ञानुसार शुभ पुण्य स्थान पर शान्ति करके नगर बसाया ॥ २२ ॥ वह नगर सागरसमान खाइयों से भूपित और गगनभेदी कोट से युक्त, दोनों पंख फैलाए हुए गरुड़ समान किवाड़ों से और मन्दरों से शोभित, मेघमालासमान, मन्दर पर्वत तुल्य ऊंचे प्रधान द्वारों से रक्षित, दो जिह्वाओं वाले सांपों की सी बर्छियों से युक्त, अस्त्राभ्यास के लिये बने बड़े २ भवनों से युक्त, योधाओं से रक्षा किया हुआ बड़ी शोभा पाने लगा ॥ २३–२५ ॥ तीक्ष्ण अंकुश, शतघ्नी (एक वार ही सैंकड़ों को मारने वाली तोपों) यन्त्रजालों से और लोहे के बड़े२चक्रों से वह पुर शोभा वाला हुआ ॥ २६ ॥

मूल—सुविभक्त महारथ्यं दैवतावाधवर्जितम् । विरोचमानं विविधैः पाण्डुरै र्भवनोत्तमैः ॥ २७ ॥ तत् त्रिविष्टप संकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत । मेघवृन्द मिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम् ॥ २८ ॥ तत्र रम्ये शिवे देशे कौरव्यस्य निवेशनम् । शुशुभे वन सम्पूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ॥ २९ ॥ तत्राऽऽगच्छन् द्विजा राजन् सर्ववेदविदांवराः । निवासं रोचयन्तिस्म सर्वभावविदस्तथा ॥ ३० ॥ वणिजश्चा ययुस्तत्र नाना दिग्भ्यो धनार्थिनः । सर्व शिल्पविदस्तत्र वासायाभ्यागमंस्तदा ॥ ३१ ॥

अर्थ—ठीक हिसाब से उसकी बड़ी चौड़ी गलियें बनाई गईं। सो देवताओं (आंधी अति दृष्टि आदि) की बाधाओं से सुरक्षित, भांति २ श्वेत ऊंचे भवनों से चमकता हुआ वह इन्द्रलोक समान इन्द्रप्रस्थ शोभा पाने लगा। वहां सुहावने शुभ स्थान में कुवेर-भवन के समान युधिष्ठिर का निवासभवन चारों ओर से वन से घिरा हुआ आकाश में बिजली से युक्त मेघमाला की भांति शोभा पा रहा था॥२७-२९॥वहां हे राजन् ! समग्र वेदोंके और सारी भाषाओं के जानने वाले ब्राह्मण आबसे ॥ ३० ॥ व्यापारी सारी दिशाओं से धन कमानेके लिये आए, और सब प्रकार के शिल्प (हुनर, कला कौशल) जानने वाले वहां आबसे ॥ ३१ ॥

मूल—उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः । आम्रैरा म्रातकैर्नीपै रशोकैश्चम्पकै स्तथा ॥ ३२ ॥ पुन्नागै र्नागपुष्पैर्ल-कुचैः पनसैस्तथा । शाल ताल तमालैश्च वकुलैश्च सकेतकैः ॥३३॥ करवीरैः पारिजातै रन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः । नित्यपुष्पफलोपेतै र्नानाद्विजगणायुतैः ॥ ३४ ॥ मत्तबर्हिणसंघुष्टकोकिलैश्च सदा मदैः । गृहैरादर्श विमलै र्विविधैश्च लतागृहैः ॥ ३५ ॥ मनोहरै-श्चित्रगृहैस्तथाऽजगतिपर्वतैः । वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा ॥ ३६ ॥ सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पल सुगन्धिभिः । हंसकारण्डव युतैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ३७ ॥ रम्याश्च विविधा-स्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः । तडागानि च रम्याणि बृहन्ति सुव-हूनि च ॥ ३८ ॥ तेषां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमाविशतां महत् । पाण्ड-वानां महाराज शश्वत् प्रीतिरवर्धत॥ ३९ ॥ तत्र भीष्मेण राज्ञा च धर्मप्रणयने कृते । पाण्डवाः समपद्यन्त खाण्डवप्रस्थवासिनः ॥ ४० ॥ पञ्चभिस्तैर्महेष्वासै रिन्द्र कल्पैः समान्वितम् । शुशुभे

तव् पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ४१ ॥ तान्निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः । ययौ द्वारवतीं राजन् पाण्डवानुमते तदा ४२

अर्थ—नगर के चारों ओर सुहावने बगीचे, आम, आम्रा-तक, कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुंनाग, नागकेसर, ढेउ, पनस, शाल, ताल, तमाल, मौलसरी, केवड़ा, कनेर, पारिजात तथा और नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त, सदा फूलों फलोंमे भरे हुए, भांति२ के पक्षिगणों से युक्त, सदा मस्त मोर और कोइलों से मनोहर ध्वनि वाले, दर्पण समान निर्मल घरों और लतागृहों से सुहावने, चित्र गृहों (अजायव घरों और तस्वीरें गृहों) क्रीड़ा पर्वतों, जलसे भरी भांति २ की वावड़ियों, श्वेत और लाल कमलों की सुगन्धि वाले बड़े सुहावने सरोवरों से, तथा हंस, कारण्डव और चकवों से पूरी २ शोभा वाले (वगीचे थे) ॥ ३२—३७ ॥ वहां वनों से घिरी हुई बड़ी सुहावनी भांति २ की झीलें, और बहुत लंबे चौड़े तथा सुहा-वने बहुत तालाव वने ॥ ३८ ॥ धर्मात्मा पुरुषों से युक्त उस बड़े देश में रहते हुए हे महाराज ! पाण्डवों का आनन्द दिन पर दिन बढ़ने लगा ॥ ३९ ॥ पाण्डवों के लिये राजा धृतराष्ट्र और भीष्म की यह व्यवस्था कर देनेपर पाण्डव आनन्द से खाण्डव-प्रस्थ में रहने लगे ॥ ४० ॥ इन्द्रसदृश महाधनुर्धारी पाण्डवों से युक्त वह पुरश्रेष्ठ नागों से युक्त भोगवती (पुरी) की भांति शोभा पाने लगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार उनको राज्य पर बैठा कर वीर कृष्ण बलदेव सहित द्वारका को गए* ॥ ४२ ॥

---

* यहां फिर एक बनावटी कहानी द्रौपदी के सम्बन्ध में कही है । जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा, कि मेरे पूर्व पिता मह पांचों जब एक द्रौपदी में वर्ताव रखते थे, तो उनमें फूट कैसे

न हुई ? (वाह, यह प्रपोते का अपने प्रपितामहों के विषय में प्रश्न है—सम्पादक) उत्तर में वैशम्पायन कहते हैं, कि एक दिन पाण्डवों के पास नारद आए, उन्होंने पाण्डवों से कहा, कि तुम्हारी पांचों की द्रौपदी सांझी पत्नी है, ऐसी नीति पर चलो, कि तुममें फूट न पड़े, न हो, कि तुम सुन्द उपसुन्दकी भांति आपस में लड़ मरो। युधिष्ठिर बोले, हे तपोधन ! सुन्द उपसुन्द का इतिहास हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। नारद बोले—सुनिये, हिरण्यकशिपु के वंश में एक निकुम्भ हुआ है, सुन्द उपसुन्द उस के पुत्र थे। दोनों भाई आपस में दो कलेवर एक-प्राण थे, इकट्ठा खाते पीते, इकट्ठा फिरते चलते, एक सुख दुःख, एक शील और एक आचार व्यवहार वाले थे। वह दोनों त्रिलोकी को जीतने का निश्चय करके तप करने विन्ध्याचल पर गए। उन्होंने बड़े लंबे समय तक वायु से अतिरिक्त कुछ भक्षण न करते हुए, अपने मांस होमते हुए, पाओं के अंगूठे पर खड़े रहकर, भुजाएं ऊंची कर, विना आंख फरके घोर तपस्या की, उनके तपःप्रभाव से विन्ध्याचल से धुआं निकलने लगा। उनके तप से देवता भयभीत हुए विघ्न करने लगे, देवताओं ने उनको रत्नों और स्त्रियों के वार २ लालच दिये, पर वह अपने तप से न डिगे। फिर देवताओं ने उनके सामने माया दिखलाई, कि उन दोनों की बहिनें, माताएं, स्त्रियें, और आत्मीयजन वाल खुले रोते पीटते उनके सामने दीख पड़े, जिनको एक राक्षस त्रिशूल से मार रहा था, और वह 'त्राहि २' कहकर इन दोनों को पुकारने लगीं, तौ भी यह अपने ध्यान में ही मग्न रहे, डिगे नहीं, तब वह सारी माया लीन होगई, और ब्रह्मा ने

दर्शन देकर कहा ' वरंब्रूहि ' । वह बोले आप प्रसन्न हुए हैं, तो हम दोनों माया के जानने वाले, अस्त्रों के जानने वाले, बल वाले, कामरूपी और अमर हों । ब्रह्मा बोले, तुमने लोगों को दबाने के लिये तप किया है, इस लिये ' अमरत्व ' नहीं मिलता और जो चाहो मांगलो (वस्तुतः यदि उनका दुष्ट आशय जान लिया था, तो कुछ भी नहीं देना चाहिये था—सम्पादक) । तब वह बोले, कि हमें आपसके विना और किसी चर अचर से भय न हो । ब्रह्मा यह वर देकर ब्रह्मलोक को चले गए, और वह दैत्य अपने घर गए, वहां जाकर राजमुकट धारण किया, और बहुत दिनों तक बड़ा उत्सव मनाया, जिसमें खाना पिना गाजे बाजे राग रंग सबके लिये राज्य की ओर से था । उत्सव के अनन्तर वह सेना सजाकर आकाश को फलांग कर देवलोक में गए, देवता वहां से भागगए,इन्द्रलोक को जीतकर यक्ष राक्षस और आकाशचारी सृष्टिको और भूमि के अन्दर बसने वाले नागों को जीतकर समुद्रवासी सारी म्लेच्छ जातियों को जीता। फिर समुद्र के पूर्वी तट पर आकर यज्ञ करने कराने वालों को कष्ट दिये, उनके आश्रम गिरा दिये, अग्निहोत्र फैंक दिये, तंगआए मुनि जो शाप देते वह ब्रह्मा के वर के सामने लगते न थे, तब मुनि स्थान छोड़ २ भागे । तब वह कभी मत्त हाथी, कभी शेर कभी भेड़िये बन २ कर जंगलों और गुफाओं में छुपेहुए ऋषि मुनियों को ढूंढ२ कर मारने लगे । पृथिवी में से यज्ञ और स्वाध्याय का लोप होगया, उत्सव बन्द होगए, खेती और गौओं की रक्षा न रही, हाहाकार मच गया, पृथिवी अस्थिपञ्जरों से भर गई, जगत् सारा डरावना बन गया । सारी दिशाओं को

जीत कर वह दोनों कुरुक्षेत्र में रहने लगे॥ यह विनाश देख देवता और ऋषियोंने ब्रह्मा के पास जा पुकार की, तब ब्रह्माने विश्व-कर्मा को आज्ञा दी, कि एक अतीव सुन्दर नारी की रचनाकर, उसने एक ऐसी रूपवती नारी की सृष्टि रची, जो हरएक देखने वाले की आंखों को हर लेती थी, विश्वकर्मा ने रत्न २ से तिल २ लेकर उसकी रचना की थी, इससे ब्रह्माने उस का नाम तिलोत्तमा रखा। तिलोत्तमा ने हाथ जोड़ ब्रह्मा से आज्ञा मांगी, ब्रह्माने कहा, कि सुन्द उपसुन्द के पास जाओ, और अपने रूप से दोनों को लुभाकार उनमें फूट डलवाओ। ब्रह्मा की आज्ञा मान तिलोत्तमा जाने के लिये देवताओं की प्रदक्षिणा करने लगी। प्रदक्षिणा करती हुई वह जब महादेव के दाहिनी ओर आई, तो देखने की चाहसे महादेव का दाहिनी ओर एक मुख निकल आया, जब वह पीछे आई, तो एक पिछली ओर निकल आया, जब वह बाईं ओर आई, तो एक बाईं ओर निकल आया, इस प्रकार महादेव उस समय चतुर्मुख हुए,और इन्द्र के तो तिलोत्तमा के घूमते समय आगे, दाएं, पीछे बाएं सारे शरीर पर आंखें ही आंखें निकल आईं, इससे इन्द्र सहस्राक्ष हुआ। और जो देवता और ऋषि थे, वह अपने मुखों को तिलोत्तमा के घूमने के साथ घुमाते गए। उसके रूप को देखकर सबने जाना, कि अब काम सिद्ध हुआ।

इधर सुन्द उपसुन्द अब त्रिलोकी को जीत चुके थे, भोगों से अतिरिक्त अब उनके सामने कोई लक्ष्य न था। वह रमणीय स्थानों में आनन्दोत्सव मनाते फिरते थे। इसी क्रमसे वह बिन्ध्या-चल की एक चोटी पर सैर करने गए, वहां किसी सुहावने स्थान

में एक सम शिलातल पर बहुमूल्य आसनों के ऊपर वह बैठ गए, उनके सामने राग रंग होने लगा, जब वह रूपवती युवति स्त्रियों के नाच और गीतसे और सुरापान से मदमत्त होरहे थे, उस समय तिलोत्तमा उन के सामने सारे शृंगार धारे हुए एक पतली लाल साढी सारे शरीर पर ओढ़े हुए सामने की वेलों से फूल चुनती हुई प्रकट हुई, उसको देखते ही दोनों का मन डोलगया, वह दोनों उठ कर उसके पास आए, और अपना प्रेमभाव जितलाते हुए सुन्द ने उसका दायां हाथ और उपसुन्द ने बायां हाथ पकड़ा। वरदान के मद, बल मद, धन मद, राज्य मद और सुरा-मद, इन सब मदों से मत्त हुए काम और मद के आवेश से एक दूसरे पर तीउढ़ी चढा कर बोले। 'मेरी पत्नी तेरी गुरु है' यह सुन्द ने कहा, 'मेरी पत्नी तेरी स्नुषा है' यह उपसुन्दने कहा, यह तेरी नहीं, मेरी है, इस प्रकार झगड़ते हुए उन में क्रोध का आवेश हुआ, उसके रूप से मत्त हुओं से भ्रातृस्नेह और सौहार्द सब दूर होगया, दोनोंने अपनी २ गदा उठाली, परस्पर गदा प्रहारों से दोनों की हड्डियां चूर २ होगईं, और लहूलहान हो गिर पड़े और मरगए, तब ब्रह्माने आकर तिलोत्तमा को वर दिया, कि तू आदित्य लोकों में विचरेगी। नारद बोले, इस प्रकार सब बातों में पूरा मेल रखनेवाले भीसुन्द उपसुन्द ने तिलोत्तमा के लिये एक दूसरे को मार डाला, इस लिये मैं तुम्हें हित बुद्धि से कहता हूं, कि द्रौपदी के लिये तुम में फूट न पड़े, इसके लिये कोई नियम बांधो। तब उन्होंने नारद के सामने ही यह नियम बांधा, कि हममें से जब कोई द्रौपदी के पास बैठा हो, तो यदि कोई दूसरा वहां आकर उसे देखे, तो वह बारह बरस

ब्रह्मचारी बनकर वन में रहे। वैशम्पायन जनमेजय से कहते हैं, इस प्रकार नियम बांधने से उनमें फूट न पड़ी।

इससे आगे नई कथा इस प्रकार आरम्भ होती है, पाण्डव इस नियम पर चलने लगे, एक दिन किसी ब्राह्मण की गौओं को चोर लेगए, उसने खाण्डवप्रस्थ में आकर पुकार की, उसकी पुकार को अर्जुन ने सुना, अर्जुन उसकी सहायता को तय्यार हुआ, पर जहां उसके शस्त्र पड़े थे, वहां उस समय युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ बैठे थे। अब अर्जुन वहां जाए, तो नियम भंग होकर वन में रहना पड़े। और न जाए, तो चोरों से लूटी जाती प्रजा की रक्षा न करने से पाप हो। उसने शरीर के नाश और धर्म-रक्षा इन दोनों में से धर्मरक्षा को बढ़कर जाना, अन्दर जाकर शस्त्र ले आया, ब्राह्मण की गौएं छुड़ादीं, और युधिष्ठिर के पास आकर नियम तोड़ने का दण्ड बारह वर्ष का वनवास अपने आप स्वीकार किया, युधिष्ठिर के रोकने पर भी वह वनको चलागया। इस वनवास में एक तो अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से विवाह कर उससे ऐरावत पुत्र उत्पन्न किया, दूसरा मणिपुर के राजा की कन्या से विवाह कर उस से एक पुत्र उत्पन्न किया, तीसरा सुभद्रा से विवाह किया।

इनमें से पहली कथा में तो बनावट ही बनावट है, उसमें यदि कोई इतिहास अंश छुपा है, तो केवल इतना होसकता है, कि सुन्द उपसुन्द दो असुर किसी समय बड़ा बल पकड़ गए थे, और थे भी वह दोनों एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करने वाले, पर अधिक सुरापान और विषयासक्ति का फल उन में यह हुआ, कि शत्रुओंने उनका छिद्र ढूंढ निकाला, और बड़ी आसानी के साथ

स्त्रीद्वारा उनको मरवा डाला। पर इस कथा का यहां कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरी कथा में भी बनावट अवश्य है। पाण्डवों के राज्य का क्या यही प्रबन्ध था, कि जहां कहीं किसी की चोरी हो, वहां खाण्डवप्रस्थ में आकर पुकार करे, और वह भी उन के किसी अन्य प्रबन्धकर्ताओं के सामने नहीं, सीधा पाण्डवों के सामने। और पाण्डवों का भी और कोई प्रबन्ध नहीं था, आप ही चोरों के पीछे दौड़ते थे। लोग आपस में कोई किसीकी सहायता नहीं करता था, जो ब्राह्मण की सहायता को और कोई न उठा। और चोर भी रस्तेरजाते थे, जो वह ब्राह्मण खाण्डवप्रस्थ में आ, अर्जुन को साथ लेकर फिर चोरों को जा मिला। और, क्या अर्जुन के पास और कोई शस्त्र न थे, जिनसे उसको नियम भंग करना पड़ा। अच्छा, क्या अर्जुन यह नहीं करसकता था, कि अन्दर न जाकर बाहर से आवाज़ दे, वा किसी दूसरे पुरुषको अन्दर भेज दे, ताकि नियमभंग भी न हो। अच्छा आगे देखिये, अर्जुन ने नियम भंग का दण्ड तो अपने आप स्वीकार किया, और युधिष्ठिर के रोकने पर वनको चला गया, पर क्या नियम पूरा किया, नियम तो यह था, कि बारह वर्ष वन में रहे, और ब्रह्मचारी रहे। पर अर्जुन माणिपूर आदि नगरों में भी रहा, और ब्रह्मचारी भी न रहा, अर्जुन जैसे आर्यवीर से यह असंभावित है, कि वह अपनी प्रतिज्ञा को ऐसी बुरी तरह पालता, कि यूं तो बारह वर्ष पूरे करता, पर ब्रह्मचारी न रहता, और नगरों में भी चलाजाता। इस लिये यह कथा इस रूप में पीछे बनी है, किसी राजनैतिक प्रयोजन को लक्ष्य रख कर अर्जुन का वन जाना

ठीक प्रतीत होता है, और वह प्रयोजन मणिपूर आदिके राजाओं से सम्बन्ध गठन प्रतीत होता है, जो फल कि इस यात्रा से पाण्डवों के मिले हैं, राजनैतिक रहस्य जान कर यतः यह बात प्रकट नहीं कीगई होगी, इस लिये कविने भी इस रहस्य को रहस्यरूप में प्रकट किया,* जो पीछे की मिलावटों से रूपान्तर धारण कर गया। इसलिये मैं यहां यथामति इतिहासांश को रखता हूं—

अ० ४१ (२१३—२१४) अर्जुन वनवास और उलूपी से समागम

मूल—वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु। व्यवर्धन् कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विताः ॥ १ ॥ अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशाम्पते। कस्य चित् तस्करा जह्रुः केचिद् गा नृपसत्तम ॥ २ ॥ ह्रियमाणे धने तस्मिन्नुदक्रोशत् स पाण्डवान्। तानि वाक्यानि शुश्राव कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ३ ॥ सोऽनुसृत्य महाबाहुर्वर्मी धन्वी रथी ध्वजी। शरैर्विध्वस्य तांश्चौरानवजित्य च तद् धनम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणं समुपाकृत्य यशः प्राप्य च पाण्डवः। आजगाम पुरं वीरः सव्यसाची धनञ्जयः ॥ ५ ॥ सोऽभिवाद्य गुरून् सर्वान् सर्वैश्चाप्यभिनन्दितः। वने द्वादश मासांस्तु वासायानुजगाम ह ॥ ६ ॥ तं प्रयान्तं महाबाहुं कौरवानां यशस्करम्। अनुजग्मुर्महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ७ ॥

अर्थ—महात्मा पाण्डवों के धर्म पर चलते हुए सभी कौरव दोषों से बच कर सुखपूर्वक वृद्धि पानेलगे ॥ १ ॥ इस तरह लंबा काल वीतने पर हे राजन्! किसी ब्राह्मण की गौओं को चोर हरलेगए ॥ २ ॥ उस धनके हरे जाने पर उसने पाण्डवों की दुहाई दी, उसके वचन कुन्ती पुत्र अर्जुन ने सुने ॥ ३ ॥ उस महाबाहु

* देखो १।६१।४०—४१

ने कवच पहन, धनुष धारे हुए, रथ पर चढ, ध्वजा फहराते हुए (उन लुटेरों का) पीछा किया, और बाणों से उन चोरों का विध्वंस कर, और उस धनको जीत, ब्राह्मण को प्रसन्न कर यश ले, वह सव्यसाची वीर अर्जुन पुर में आया ॥ ४-५ ॥ सब बड़ों को प्रणाम किया, उन सबोंने भी हर्ष से स्वागत किया, तिस पीछे बारह महीने वन*में रहने के लिये गया ॥ ६ ॥ कौरवों के यश बढाने वाले उस महाबाहु के साथ वेदपारग महात्मा ब्राह्मण भी गए ॥ ७ ॥

मूल—रमणीयानि चित्राणि वनानि च सरांसि च । पुण्यान्यपि च तीर्थानि ददर्श भरतर्षभः ॥ ८ ॥ स गंगाद्वार माश्रित्य निवेश मकरोत् प्रभुः । अभिषेकाय कौन्तेयो गंगामवततार ह॥९॥ उत्तितीर्षुर्जलाद् राजन्नाग्नि कार्यं चिकीर्षया । अपकृष्टो महाबाहुर्नागराजस्य कन्यया ॥ १० ॥ अन्तर्जले महाराज उलूप्या कामयानया । कौरव्यस्याथ नागस्य भवने परमार्चिते ॥ ११ ॥ अग्निकार्यं स कृत्वा तु नागराजसुतां तदा । प्रहसन्निव कौन्तेय इदं वचनं मब्रवीत् ॥ १२ ॥ किमिदं साहसं भीरु कृतवत्यसि भाविनि। कश्चायं सुभगे देशः का च त्वं कस्य वात्मजा ॥ १३ ॥ उलूप्युवाच—ऐरावत कुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः । तस्यास्मि दुहिता राजन्नुलूपी नाम पन्नगी ॥ १४ ॥ अनन्यां नन्दयस्वाद्य प्रदाने-

* मुम्बई वेंकटेश्वर से मुद्रित महा भारत में यह वनवास बारह वर्ष का लिखा है। निर्णयसागर से मुद्रित महाभारत में सर्वत्र बारह १२वर्ष के स्थान १२ मास कहे हैं। महाभारत १।६१।६२ में भी स्पष्ट एक वर्ष और एक मास वनवास लिखा है। इस लिये हमने निर्णय सागर वाला पाठ ही स्वीकार किया है।

नात्मनोऽनघ । भक्तां च भज मां पार्थ सतामेतन्मतं प्रभो ॥ १९ ॥ याचे त्वां चाभिकामाऽहं तस्मात् कुरु मम प्रियम् । स त्वमात्म प्रदानेन सकामां कर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पन्नगेश्वर कन्यया । कृतवांस्तत् तथा सर्वं धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥१७॥ आगतस्तु पुनस्तत्र गंगाद्वारं तया सह । परित्यज्य गता साध्वी उलूपी निज मन्दिरम् ॥ १८ ॥

अर्थ—(वनमें) उस भरतश्रेष्ठ ने सुहावने, भांति २ के वन, सरोवर और पुण्यतीर्थ देखे ॥ ८ ॥ गंगाद्वार पर पहुंच कर (कुछ देर के लिये) टिके, वहां स्नान के लिये अर्जुन गंगामें उतरा ॥ ९ ॥ और जल से निकल कर अग्निहोत्र करने की उस की इच्छा थी, कि नागराज की कन्या उलूपी जो जलके अन्दर ही स्थित को अपना पति बना चुकी थी—उसे (अपने पिता) कौरव्य के बड़े सुहावने मन्दिर में ले आई ॥ ११ ॥ अग्निहोत्र करके अर्जुन ने हंसकर नागराज की कन्या से यह वचन कहा ॥ १२ ॥ हे सुन्दरि ! तूने यह क्या साहस किया है, हे सुभगे ! यह कौन स्थान है, तू कौन है और किसकी कन्या है ॥ १३ ॥ उलूपी बोली—ऐरावत के कुल में जो कौरव्य नाम नाग है, हे राजन ! मैं उसकी कन्या उलूपी हूं ॥ १४ ॥ हे निष्पाप ! मैं कुमारी हूं, आप आत्मदान से मुझे आनन्दित करें, हे पृथाके पुत्र मुझ को भक्ति वाली जान भजो, हे प्रभो यह सत्पुरुषों का निश्चय है ॥ १९ ॥ कामना करती हुई मैं आपकी याचना करती हूं, इसलिये मेरा प्रिय करें, आप आत्मदान से मेरी कामना पूरी करने की कृपा करें ॥ १६ ॥ नाग राज की पुत्री से ऐसे बात कहने पर अर्जुन ने धर्म को कारण मान उस

का सारा मनोरथ पूरा किया ॥ १७ ॥ फिर उसके साथ गंगा-द्वार पर आया, उसको वहां छोड़ पतिव्रता उलूपी अपने मन्दिर को चली गई ॥ १८ ॥

अ०४२(व०२१५-२१७) तीर्थयात्रा और चित्रांगदा से विवाह

मूल—कथयित्वा च तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यः स भारत । प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मजः ॥ १ ॥ दृष्टवान् पाण्डव श्रेष्ठः पुण्यान्यायतनानि च । अवतीर्य नरश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सह भारत ॥ २ ॥ प्राचीं दिश मभिप्रेप्सुर्जगाम भरतर्षभः । नदीं चोत्पलिनीं रम्या मरण्यं नैमिषं प्रति ॥ ३ ॥ नन्दा मपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम् । महानदीं गयां चैव गंगामपि च भारत ॥ ४ ॥ अंग वंग कलिंगेषु यानि तीर्थानि कानिचित् । जगाम तानि सर्वाणि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ५ ॥ कालिंग राष्ट्र द्वारेषु ब्राह्मणाः पाण्डवानुगाः । अभ्यनुज्ञाय कौन्तेय मुपावर्तन्त भारत ॥ ६ ॥ सतु तैरभ्यनुज्ञातः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । सहायै रल्पकैः शूरः प्रययौ यत्र सागरः ॥ ७ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों को वह सारा वृत्तान्त बतलाकर हे भारत ! फिर अर्जुन हिमालय पर गया ॥ १ ॥ वहां पाण्डव श्रेष्ठ ने पुण्य स्थानों को देखा, और फिर ब्राह्मणों के साथ उतर कर ॥ २ ॥ वह भरतश्रेष्ठ पूर्व दिशा को देखने के लिये गया । नैमिष अरण्य में सुहावनी उत्पलिनी नदी, फिर नन्दा, अपरनन्दा, कौशिकी, महानदी, गया, गंगा ॥ ३–४ ॥ अंग, वंग और कलिंग में जो कोई तीर्थ और पुण्य स्थान हैं, उन सब में पहुंचा ॥ ५ ॥ कलिंग देश के दरों में पहुंचकर अर्जुन के साथी अर्जुन की अनुमति से लौट आए ॥ ६ ॥ और अर्जुन उनकी अनुज्ञा लेकर कुछ थोड़े से साथी साथ

लेकर आगे समुद्र की ओर गया ॥ ७ ॥

मूल—स कलिंगानतिक्रम्य देशाना यतनानि च । हर्म्याणि रमणीयानि प्रेक्षमाणो ययौ प्रभुः ॥ ८ ॥ महेन्द्र पर्वतं दृष्ट्वा तापसै रुपशोभितम् । समुद्रतीरेण शनैर्मणि पूरं जगाम ह ॥ ९ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्याय तनानि च । अतिगम्य महाबाहु रभ्यगच्छन्महीपातिम् ॥ १० ॥ मणिपूरेश्वरं राजन् धर्मज्ञं चित्र वाहनम् । तस्य चित्रांगदा नाम दुहिता चारु दर्शना ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहिनीम् । अभिगम्य च राजान मवदत् स्वं प्रयोजनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वह कलिंग देशको लंघकर रमणीय स्थान आश्रम और मन्दिरों को देखता हुआ गया ॥ ८ ॥ तपस्वियों से सुशोभित महेन्द्र पर्वत को देखकर धीरे २ समुद्र के किनारे २ मणिपुर*को गया ॥ ९॥ वहां सारे तीर्थ और पुण्य आश्रमों में जाकर मणिपुर के राजा धर्मज्ञ चित्रवाहन के पास आया,राजा की अतीव सुन्दरी चित्रांगदा नाम पुत्री थी, उसको देखकर अर्जुन को उस को व्याहने की इच्छा हुई, और उसने राजा की सेवामें जाकर अपना अभिप्राय स्पष्ट कहदिया ॥ १०–१२ ॥

मूल—तमुवाचाथ राजा स सान्त्वपूर्व मिदं वचः । एका च मम कन्येयं कुलस्योत्पादनी भृशम् ॥ १३ ॥ पुत्रिका हेतु विधिना संज्ञिता भरतर्षभ । तस्मादेकः सुतो योऽस्यां जायते भारत त्वया ॥ १४ ॥ एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुल कृज्जायतामिह । एतेन समयेनेमां प्रतिगृह्णीष्व पाण्डव ॥ १५ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय तां कन्यां प्रतिगृह्य च । उवास नगरे तस्मिन् मासांस्त्रीन् स तया सह॥ १६ ॥

---

* निर्णयसागर वाले में मणिपुर के स्थान सर्वत्र मणलूर है ।

अर्थ—राजा प्रेमपूर्वक उससे यह वचन बोला, कि मेरा वंश बढ़ाने वाली मेरी यह एक मात्र कन्या है ॥ १३ ॥ हे भरतश्रेष्ठ मर्यादानुसार मैं इस को पुत्रिका माने हुए हूं, इसलिये हे भारत ! इसमें से जो तुझसे पुत्र हो, वह मेरा वंश बढ़ाने वाला हो. यह इसका शुल्क (मूल्य) है, इस नियम से हे पाण्डुपुत्र इसको स्वीकार कर ॥ १५ ॥ उसने 'तथास्तु' कहकर उस कन्याको स्वीकार किया, और उसके साथ तीन मास उस नगर में वास किया१६

मूल—चित्रांगदां पुनर्वाक्य मब्रवीत् पाण्डुनन्दनः । इन्द्रप्रस्थ निवासं मे त्वं तत्रागत्य रस्यसि ॥ १७ ॥ कुन्तीं युधिष्ठिरं भीमं भ्रातरौ मे यवीयसौ । आगत्य तत्र पश्येथा अन्यानपि च बान्धवान् ॥ १८ ॥ विप्र योगेन संतापं माकृथास्त्वं मनिन्दिते । चित्रांगदा मेवमुक्त्वा गोकर्ण मभितोऽगमत् ॥ १९ ॥

अर्थ—अनन्तर अर्जुन चित्रांगदा से यह वाक्य बोला । इन्द्रप्रस्थ जो मेरा निवास है, वहां आकर तू आनन्द मनाएगी॥१७॥ वहां आकर तू कुन्ती, भीम, मेरे दोनों छोटे भाइयों और दूसरे बान्धवों को भी देखेगी ॥ १८ ॥ सो हे भली तू इस वियोगसे संताप न करना, चित्रांगदा को यह कह कर वह गोकर्ण को गया१९

अ०४३ (व० २१८) तीर्थयात्रा और द्वारिका वास

मूल—सोऽपरान्तेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । सर्वाण्येवानु पूर्व्येण जगामामितविक्रमः ॥ १ ॥ समुद्रे पश्चिमे यानि तीर्थान्यायतनानि च । तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभास मुपजग्मिवान् ॥ २ ॥ प्रभासदेशं सम्प्राप्तं शुश्राव मधुसूदनः । ततोऽभ्यगच्छत् कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः ॥ ३ ॥ तौ विहृत्य यथा

कामं प्रभासे कृष्ण पाण्डवौ । महीधरं रैवतकं वासायाभिजग्मतुः ॥ ४ ॥ पूर्वमेव तु कृष्णस्य वचनात् तं महीधरम् । पुरुषा मण्डयांचक्रु रुपजह्रुश्च भोजनम् ॥ ५ ॥ प्रतिगृह्यार्जुनः सर्व मुपभुज्य च पाण्डवः । सहैव वासुदेवेन दृष्टवान् नटनर्तकान् ॥ ६ ॥ अभ्यनुज्ञाय तान् सर्वानर्चयित्वा च पाण्डवः । सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महामतिः ॥ ७ ॥

अर्थ—वहांसे वह महावीर पश्चिमी किनारे के सारेही तीर्थों और पुण्य आश्रमों में गया ॥ १ ॥ पश्चिमी समुद्र के सारे तीर्थों और आश्रमों को देखकर वह प्रभास में आया ॥ २ ॥ प्रभास देश में आए को श्रीकृष्ण ने सुना, तो वह अपने सखा अर्जुन को लेने गए॥ ३ ॥ प्रभास में कृष्ण और अर्जुन यथेष्ट सैर करके रात्रिवास के लिये रैवतक पर्वत पर गए ॥ ४ ॥ (उनके आनेसे) पूर्व ही कृष्ण की आज्ञासे नौकरों ने पर्वत को सजा दिया था और भोजन तय्यार किया हुआ था ॥ ५ ॥ अर्जुन सब प्रकार के भोजनों का आदर और खाकर कृष्ण के साथ नटों और नर्तकों को देखने लगे ॥ ६ ॥ उन सबको अनुज्ञा देकर और पारितोषिक देकर महामति अर्जुन सजीहुई दिव्य शय्या पर गया ॥ ७ ॥

मूल—मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव हि । प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मंगलैस्तथा ॥ ८ ॥ स कृत्वाऽवश्यकार्याणि वार्ष्णेयेनाभिनन्दितः । रथेन काञ्चनांगेन द्वारकामभि जग्मिवान् ॥ ९ ॥ अलंकृता द्वारका तु बभूव जनमेजय । कुन्तीपुत्रस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि ॥ १० ॥ दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारिकावासिनो जनाः । नरेन्द्रमार्ग माजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः ॥ ११ ॥ अव-

लोकेषु नारीणां सहस्राणि शतानि च । भोजवृष्ण्यन्धकानां च समवायो महानभूत् ॥ १२ ॥ स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः । अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः ॥ १३ ॥ समानवयसः सर्वानाश्लिष्य पुनः पुनः ॥ १४ ॥ कृष्णस्य भवने रम्ये रत्न भोज्य समावृते । उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः १५

अर्थ—(प्रभात समय) मधुर गीत से, वीणा के शब्द से, स्तुति पाठ और मंगल पाठ से जगाया हुआ वह जगा ॥८॥ आवश्यक कार्यों को करके कृष्ण से आदृत हुआ सुनहरी अंगोंवाले रथ पर चढ़कर द्वारका को गए ॥ ९ ॥ हे जनमेजय ! अर्जुन की पूजा के लिये द्वारका सजाई गई, यहांतक, कि घरों के बगीचे भी सजाए गए ॥१०॥ द्वारकावासी अर्जुन को देखने के लिये सैंकड़ों सहस्रों के झुंड वेगसे राज मार्ग पर आने लगे ॥ ११ ॥ झरोंकों में नारियें बैठगईं, इस प्रकार भोज, वृष्णि और अन्धकों की बड़ी भीड़ होगई ॥ १२ ॥ इस प्रकार भोज, वृष्णि और अन्धकों के कुमारों से पूजित हुआ अर्जुन प्रणाम के योग्यों को प्रणाम करताहुआ और सबसे असीसें और प्रीति वचन लेता हुआ, समान अवस्था वाले सब कुमारों को बार २ आलिंगन करके रत्न और भोग्य वस्तुओं से भरे कृष्णके सुन्दर भवन में कई दिन रहा ॥१५॥

अ० ४४ (व०२१९) रैवतक पर यादवों का मेला

मूल—ततः कतिपयाहस्य तस्मिन् रैवतके गिरौ । वृष्ण्यन्धकानाम भवदुत्सवो नृप सत्तम ॥ १ ॥ तत्र दानं ददुर्वीरा ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः । भोजवृष्ण्यन्धकाश्चैव महे तस्य गिरेस्तदा ॥ २ ॥ प्रासादै रत्न चित्रैश्च गिरेस्तस्य समन्ततः । स देशः शोभितो राजन्

कल्पवृक्षैश्च सर्वशः ॥ ३ ॥ वादित्राणि च तत्रान्ये वादकाः समवादयन् । ननृतुर्नर्तकाश्चैव जगुर्गेयानि गायनाः ॥ ४ ॥ अलंकृता कुमाराश्च वृष्णीनां सुमहौजसाम् । यानैर्हाटक चित्रैश्च चंचूर्यन्तेस्म सर्वशः ॥ ५ ॥ पौराश्च पादचारेण यानै रुचा वचैस्तथा । सदाराः सानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥ ततो हलधरः क्षीवो रेवती सहितः प्रभुः । अनुगम्यमानो गन्धर्वै रचरत तत्र भारत ॥ ७ ॥ तथैव राजा वृष्णीनामुग्रसेनः प्रतापवान् । रौक्मिणेयश्च साम्बश्च क्षीवौ समर दुर्मदौ ॥ ८ ॥ अक्रूरः सारणश्चैव गदोबभ्रुर्विदूरथः । निशठश्चारुदेष्णश्च पृथुर्विपृथुरेव च॥९॥ सत्यकः सात्यकिश्चैव भंगकार महारवौ । हार्दिक्य उद्धवश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ १० ॥ एते परिवृताः स्त्रीभिर्गन्धर्वैश्च पृथक् पृथक् । तमुत्सवं रैवतके शोभयां चक्रिरे तदा ॥ ११ ॥

अर्थ—कुछ दिन पीछे उस रैवतक पर्वत पर वृष्णि और अन्धकों का बड़ा उत्सव होने लगा ॥ १ ॥ भोज वृष्णि और अन्धक उस उत्सव में ब्राह्मणों को सहस्रों दान देनेलगे ॥ २ ॥ उस पर्वत के चारों ओर रत्नजटित मन्दिरों से और कल्पवृक्षों से वह देश नई शोभा वाला वन गया ॥ ३ ॥ वजैये वहां वाजे वजाने लगे, नर्तक नाचने लगे, और गायक गाने लगे ॥ ४ ॥ महाशक्ति वृष्णियोंके कुमार सज धज कर सुनहरी रंगोंके रथों पर सब ओर टहलने लगे ॥ ५ ॥ पुरवासी सैंकड़ों सहस्रों कई पैदल, कई भांति २ के यानों से पत्नियों और साथियों समेत घूमने लगे ॥ ६ ॥ तव रेवती समेत प्रभु वलदेव मत्त हो गवैयोंके साथ वहां विचरने लगे ॥ ७ ॥ तथा वृष्णियों का राजा प्रतापी उग्रसेन, और युद्ध में दुर्मद रुक्मिणी का पुत्र और उग्रसेन ॥ ८ ॥

अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भंगकार, महारव, हार्दिक्य, उद्धव, तथा और भी जो कहे नहीं, यह सब अलग२ स्त्रियों से और गन्धर्वों से घिरे हुए रैवतक पर उस उत्सव की शोभा बढ़ाते भए ॥९–११॥

मूल–वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥ १२ ॥ तत्र चंक्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम् । अलंकृतां सखी मध्ये भद्रां ददृशतुस्तदा ॥ १३ ॥ दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत । तं तदैकाग्र मनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥ १४ ॥ अब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः प्रहसन्निव भारत । ममैषा भगिनीपार्थ सारणस्य सहोदरा ॥ १५ ॥ यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कृष्ण और अर्जुन दोनों इकट्ठे वहां गए॥१२॥वहां घूमते फिरते हुए उन्होंने उत्तम वस्त्र भूषण पहने हुई वसुदेव की पुत्री सुभद्रा को सखियोंके मध्य में देखा ॥ १३ ॥ उसे देखते ही अर्जुन को काम उत्पन्न हुआ, तब उसमें लगे मनवाले अर्जुन को कृष्णने जान लिया ॥ १४ ॥ और वह पुरुषवर हंसता हुआ बोला, हे अर्जुन! यह मेरी बहिन सारण की सगी बहिन है॥१५॥ यदि आपका विचार हो, तो मैं स्वयं पिता को कहूं ॥ १६ ॥

मूल–अर्जुन उवाच—कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद् ध्रुवम् । यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव॥१७॥ प्राप्तौ तु क उपायः स्यात् तं ब्रवीहि जनार्दन ॥ १८ ॥वासुदेव उवाच— स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ । स च संशयितः पार्थ स्वभावस्या निमित्ततः ॥ १९ ॥ प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते । विवाह हेतुः शूराणा मिति धर्म विदो विदुः ॥ २० ॥ सत्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम । हर स्वयंवरे ह्यस्याःकोवै वेद

चिकीर्षितम् ॥ २१ ॥ ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येति कृत्य-ताम् । शीघ्रगान् पुरुषानन्यान् प्रेषयामास तुस्तदा ॥ २२ ॥ धर्म-राजाय तत् सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै । श्रुत्वैव च महाबाहु रनुजज्ञे स पाण्डवः ॥ २२ ॥

अर्थ—अर्जुन बोला—निःसंदेह आप द्वारा यह मेरा पूरा कल्याण किया जाए, यदि यह वार्ष्णेयी (वृष्णिवंशीया) आप की भगिनी मेरी रानी हो ॥ १७ ॥ इां प्राप्ति में क्या उपाय हो-सकता है, वह कहो हे जनार्दन ॥ १८ ॥ कृष्ण बोले—हे पुरुष श्रेष्ठ ! स्वयंवर क्षत्रियों का विवाह है, पर वह संशय वाला है, क्योंकि स्वभाव का कुछ पता नहीं होता ॥ १९ ॥ धक्के से हर-लेना भी क्षत्रियों में प्रशंसा किया जाता है, वह भी शूर वीरोंके विवाह का निमित्त होता है, यह धर्मवेत्ता जानते हैं ॥ २० ॥ इसलिये हे अर्जुन ! मेरी इस कल्याणी बहिन को बलपूर्वक हर-लेजा, स्वयंवर में कौन इसके अभिप्राय को जानता है ॥२१॥तब अर्जुन और कृष्ण दोनोंने क्या करना है यह निश्चय करके,शीघ्र-गामी अन्य पुरुषों को यह सब बतलाने के लिये इन्द्रप्रस्थ में यु-धिष्ठिर के पास भेजा, सुनते ही महाबाहु युधिष्ठिर ने इसमें अनु-मति देदी ॥२२॥

अ० ४५ (व०२२०) सुभद्रा हरण और बलदेव का क्रोध

मूल—ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनञ्जयः । गतां रैव-तके कन्यां विदित्वा जनमेजय ॥ १ ॥ कृष्णस्य मतमादाय प्रय-यौ भरतर्षभः । रथेन काञ्चनांगेन कल्पितेन यथाविधि ॥ २ ॥ सन्नद्धः कवची खड्गी बद्धगोधां गुलित्रवान् । मृगयाव्यपदेशेन

प्रययौ भरतर्षभः ॥ ३ ॥ तामभिद्रुत्य कौन्तेयः प्रसह्यारोपयद्रथम् । सुभद्रां चारु सर्वांगीं प्रययौ स्वपुरं प्रति ॥ ४ ॥

अर्थ—तब इसमें एक संमति होजाने से अर्जुन को (भाई की) अनुज्ञा मिल गई, और हे जनमेजय वह भरतवर कन्या को रैवतक पर गया जान कृष्ण के विचार को ग्रहण कर, यथायोग्य सजे हुए सुनहरी रथ से चला ॥ १–२ ॥ तय्यार हो, कवच पहने, तलवार लटकाए, गोधा चर्मका अंगुलित्र पहने शिकार के बहाने से गया ॥ ३ ॥ वहां जाकर अर्जुन ने वेगसे जाकर सुन्दर अंगों वाली सुभद्रा को बलसे रथ पर चढ़ा लिया, और अपने पुर को प्रयाण किया ॥ ४ ॥

मूल—ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः । विक्रोशन्तोऽद्रवन् सर्वे द्वारकामभितः पुरीम् ॥ ५ ॥ ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम् । सभापालस्य तत्सर्वं माचख्युः पार्थविक्रमम् ॥ ६ ॥ तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सान्नाहिकीं ततः समाजघ्ने महाघोषां जाम्बूनद परिष्कृताम् ॥ ७ ॥ क्षुब्धास्तेनाथ शब्देन भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा । अन्नपान मपास्थाय समापेतुः समन्ततः ॥ ८ ॥ तेषां समुपविष्टानां देवानामिव सन्नये । आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः ॥ ९ ॥

अर्थ—सुभद्रा का हराजाना देखकर सैनिकजन सब दुहाई मचाते हुए द्वारका की ओर दौड़े ॥ ५ ॥ और सुधर्मा सभा में पहुंच कर सभापाल को अर्जुन का वह सारा साहस कह सुनाया ॥ ६ ॥ सभापाल ने उनकी बात को सुनते ही तय्यारी का नगारा बजाया, जो बड़ी ध्वनि वाला सुवर्ण से मढ़ा हुआ था ॥ ७ ॥ उस शब्द से क्षुब्ध हुए भोज, वृष्णि, अन्धक खाना पीना छोड़

कर चारों ओर से आ इकट्ठे हुए ॥ ८ ॥ जब वह देवसमुदाय की भांति वहां आकर बैठ गए, तब सभापाल और उसके साथियों ने अर्जुन की वह चेष्टा कही ॥ ९ ॥

मूल—तच्छ्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मद संरक्त लोचनाः । अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतु रहंकृताः ॥ १० ॥ रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च । वनमाली ततः क्षीब इदं वचन मब्रवीत् ॥ ११ ॥ किमिदं कुरुथा प्राज्ञास्तूष्णीं भूते जनार्दने । एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः ॥ १२ ॥ यदस्य रुचितं कर्तुं तत्कुरुध्व मतन्द्रिताः ॥ १३ ॥

अर्थ—यह सुनतेही मद से लाल नेत्रोंवाले अहंकारी वह वृष्णि वीर अर्जुन के उस साहस को न सहते हुए उठ खड़े हुए ॥ १० ॥ उस समय जब कि अपने २ रथ, कवच, और ध्वजाएं वह मंगवारहे थे, तब मत्त हुआ बलराम यह वचन बोला॥ ११ ॥ क्या यह अनजानपना करते हो, जब कृष्ण चुप है, यह महामति पहले अपना अभिप्राय कहे ॥ १२ ॥ जो इसको करना पसंद है, वही अप्रमत्त होकर करो ॥ १३ ॥

मूल—ततोऽब्रवीद् वासुदेवं वचो रामः परंतपः । किमवाग्उपविष्टोसि प्रेक्षमाणो जनार्दन ॥ १४ ॥ सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभि रच्युतः । न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥ १५ ॥ सोऽवमन्य तथाऽस्माक मनादृत्य च केशवम् । प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्यु मात्मनः ॥ १६ ॥ कथं हि शिरसो मध्ये कृतं तेन पदं मम । मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्श मिवोरगः ॥ १७ ॥ अद्य निष्कौरवा मेकः करिष्यामि वसुन्धराम् । नहि मे मर्षणीयोऽय मर्जुनस्य व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥ तं तथा गर्ज-

मानं तु मेघ दुन्दुभिं निःस्वनम् । अन्वपद्यन्त ते सर्वे भोजवृष्ण्य-न्धकास्तदा ॥ १९ ॥

अर्थ—तब शत्रुतापी राम कृष्ण से बोले, हे जनार्दन! देखते हुए तुम कैसे चुपचाप बैठे हो ॥ १४ ॥ तेरे निमित्त हम सबने अर्जुन का मान किया, वह दुर्बुद्धि कुल कलंक उस पूजा का पात्र नहीं था ॥ १५ ॥ वह हम सबका और आपका अप-मान करके बलसे सुभद्रा को-अपनी मौत को-हरलेगया है॥१६॥ हे कृष्ण! कैसे मैं अपने सिर पर रखे उसके पाओं को सहारूं, सांपकी भांति पाओं के स्पर्श को ॥ १७ ॥ आज मैं अकेला पृथिवी को कौरवों से शून्य करूंगा, अर्जुन का यह अपराध मुझे असहनीय है॥१८॥ इस प्रकारं मेघ और दुन्दुभि के तुल्य गर्जते हुए बलरामका सब भोजवृष्णि और अन्धकों ने साथ दिया ॥ १९ ॥

अ० ४६ (व०२२१) अर्जुन का सुभद्रा से विवाह

मूल—उक्तवन्तौ यथावीर्य मसकृत् सर्ववृष्णयः । ततोऽब्र-वीद् वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थ संयुतम् ॥ १ ॥ नावमानं कुलस्यास्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान्। संमानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयं न संशयः ॥ २ ॥ अर्थ लुब्धान् नवः पार्थो मन्यते सात्वतान् सदा । स्वयं-वर मनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ॥ ३ ॥ विक्रयं चाप्यपत्य-स्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि ॥ ४ ॥ एतान् दोषांस्तु कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः । अतः प्रसह्य हृतवान् कन्यां धर्मेण पाण्डवः ॥ ५ ॥ उचितश्चैव सम्बन्धः सुभद्रां च यशस्विनीम् । एप चापी दृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥ ६ ॥ भरतस्यान्वये जातं शान्त-नोश्च यशस्विनः ।कुन्तिभोजात्मजा पुत्रं कोवभूषेत नार्जुनम् ॥७॥

तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनञ्जयम्। न्यवर्तयत संहृष्टा ममैषा परमा मतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—जब सब वृष्णि बार२अपने२उत्साहके सदृश कहचुके, तब श्रीकृष्ण धर्म और नीतियुक्त वचन बोले॥ १ ॥ अर्जुन ने इस कुलका अपमान नहीं किया, वास्तव में उसने यह हमारा बढ़कर सम्मान किया है॥ २ ॥ अर्जुन हम सात्वतों (यदुवंशियों) को धनका लालची कभी नहीं समझता, और समझता है कि स्वयंवर में अपना वश नहीं रहता ॥ ३ ॥ और पृथिवी पर कौन ऐसा पुरुष है, जो सन्तान को बेचदेवे ॥ ४ ॥ इस लिये मेरा निश्चय है, कि अर्जुन ने इन दोषों को देखकर क्षात्र धर्मानुसार बलात् कन्या को हरा है (और कोई कारण नहीं) ॥५॥ सम्बन्ध उचित ही है, इसलिये यशस्विनी सुभद्रा को यशस्वी अर्जुन ने बलसे हरालिया है ॥ ६ ॥ भरतके वंश, यशस्वी शान्तनु के वंश में उत्पन्न हुए, कुन्तिभोज सुता के पुत्र अर्जुन को कौन नहीं पाना चाहेगा ॥ ७ ॥ सो उसके पीछे जाकर पूरे प्रेमके साथ प्रसन्नता पूर्वक उसे लौटा लाओ, यह मेरा दृढ निश्चय है॥८॥

मूल—तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप। निवृत्तश्चार्जुनस्तत्र विवाहं कृतवान् प्रभुः ॥ ९ ॥ विहृत्य च यथाकामं खाण्डवप्रस्थ मागतः। अभिगम्य च, राजानं नियमेन समाहितः ॥ १० ॥ अभ्यर्च्य ब्राह्मणान् पार्थो द्रौपदी मभिजग्मिवान्। तं द्रौपदी प्रत्युवाच प्रणयात् कुरुनन्दनम् ॥ ११ ॥ तत्रैव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा। सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबन्धः श्लथायते ॥ १२ ॥ तथा बहुविधां कृष्णां विलपन्तीं धनञ्जयः। सान्त्वयामास भूयश्च क्षमयामास चासकृत् ॥ १३ ॥

अर्थ—कृष्ण की बात को सुनकर हे राजन्! उन्होंने वैसे किया, अर्जुन वहां लौट आया, और विवाह किया ॥ ९ ॥ यथा रुचि वहां सैरकर खाण्डवप्रस्थ में आया, पहले वह सावधान हो नियमानुसार राजा (युधिष्ठिर) के पास गया, फिर ब्राह्मणों का सत्कार किया, फिर द्रौपदी के पास गया। प्रणयकोप से द्रौपदी उससे बोली ॥ ११ ॥ वहीं जाओ हे कौन्तेय जहां वह सात्वत सुता है, भलीभांति बन्धेभार का भी पहला बन्धन ढीला होजाता है ॥ १२ ॥ इस प्रकार बहुविध विलपती कृष्णा को अर्जुन ने धीरज दिया, और बार २ क्षमा मांगी *॥ १३ ॥

मूल—सुभद्रां त्वरमाणश्च रक्तकौशेयवासिनीम् । पार्थः प्रस्थापयामास कृत्वा गोपालिकावपुः ॥ १४ ॥ साऽधिकं तेन रूपेण शोभमाना यशस्विनी । ववन्दे पृथुताम्राक्षी पृथां भद्रा यशस्विनी ॥ १५ ॥ तां कुन्ती चारुसर्वांगी मुपाजिघ्रत मूर्धनि॥१६॥ ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसदृशानना । ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याहमिति चाब्रवीत् ॥ १७ ॥ प्रत्युत्थाय तदा कृष्णा स्वसारं माधवस्य च । परिष्वज्या वदत् प्रीत्या निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः १८ तथैव मुदिता भद्रा तामुवाचैव मस्त्विति ॥ १९ ॥

अर्थ—फिर जल्दी अर्जुन ने रेशमी लाल वस्त्र पहने हुए सुभद्रा को गोपी का वेष बनाकर घरमें प्रवेश कराया* ॥ १४ ॥

---

* द्रौपदी का प्रणयकोप, अर्जुन का द्रौपदी को धीरज देना और क्षमा मांगना भी इस बातका ज्ञापक है, कि द्रौपदी का पति अर्जुन ही था।

*पटरानी के वेष से प्रवेश कराने में द्रौपदी को कोप न हो, इस कारण गोप कृष्ण के सम्बन्ध से गोपी वेष दिया 'नीलकण्ठ,

वह उस रूपसे अधिक शोभा वाली हुई विशाल लाल नेत्रों वाली यशस्विनी सुभद्रा कुन्तीके चरणवन्दन करती भई ॥१५॥ कुन्तीने उस सुन्दर सारे अंगोंवाली का माथा चूमा ॥ १६ ॥ तब वह पूर्ण चन्द्रमुखी सुभद्रा द्रौपदी के पास गई, उसकी वन्दना कर कहा, तेरी दासी हूं ॥ १७ ॥ द्रौपदी आगे से उठकर कृष्ण की वहिन को गले लगाकर बोली, 'तेरा पति शत्रु रहित हो'* ॥१८॥ वैसे ही हर्षित हुई सुभद्रा ने उसे कहा 'एवमस्तु' † ॥ १९ ॥

मूल—अर्जुनं पाण्डवश्रेष्ठ मिन्द्रप्रस्थ गतं तदा । आजगाम विशुद्धात्मा सह रामेण केशवः ॥ २० ॥ वृष्ण्यन्धक महामात्रै सहवीरैर्महारथैः ॥ २१ ॥ तांश्च वृष्ण्यन्धकश्रेष्ठान् कुन्ती पुत्रो युधिष्ठिरः । प्रतिजग्राह सत्कारै र्यथाविधि यथागतम् ॥२२॥ तेषां ददौ हृषीकेशो जन्यार्थे धनमुत्तमम् । हरणे वै सुभद्राया ज्ञातिदेयं महायशाः ॥ २३ ॥ प्रतिजग्राह तत् सर्वं धर्मराजो युधिष्ठिरः २४ एवमुत्तमवीर्यास्ते विहृत्य दिवसान् बहून् । पूजिताः कुरुभिर्जग्मुः पुनर्द्वारवतीं प्रति ॥ २५ ॥

अर्थ—पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में पहुंच गए, तो शुद्धात्मा कृष्ण बलरामके साथ तथा और वृष्णि और अन्धकों के मुखिया महारथी वीरों के साथ वहां आए ॥ २०–२१ ॥ उन वृष्णि और अन्धक वीरों का कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने यथायोग्य सत्कार से स्वागत किया ॥ २२ ॥ महायशस्वी श्रीकृष्ण ने विवाह के नि-

*सुभद्रा का द्रौपदी के प्रति यह वचन भी द्रौपदी को अर्जुन की पत्नी सिद्ध करता है †यह सुभद्रा का द्रौपदी को उपहासयुक्त उत्तर भी 'तेरा पति शत्रु रहित हो' इस आसीस को सांझी ठहराता हुआ द्रौपदी को अर्जुन की पत्नी सिद्ध करता है ॥

मित्त सुभद्रा के दहेज में ज्ञातियों से देने योग्य उत्तम धन दिया, और धर्मराज युधिष्ठिर ने वह सब स्वीकार किया ॥ २३–२४॥ इस प्रकार वह बड़ी शक्तिवाले बहुत दिन वहां आनन्द मनाकर कुरुओं से पूजित हुए फिर द्वारवती को चलेगए ॥ २५ ॥

मूल–वासुदेवस्तु पार्थेन तत्रैव सह भारत । उवास नगरे रम्ये शक्रप्रस्थे महात्मना ॥ २६ ॥ सुभद्रा सुषुवे वीर मभिमन्युं नरर्षभम् । जन्म प्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाःशुभाः ॥ २७ ॥ स चापि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी । अर्जुनाद् वेद वेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम् ॥ २८ ॥ विज्ञानेष्वापि चास्त्राणां सौष्ठवे च महाबलः । क्रियास्वपि च सर्वासु विशेषानभ्य शिक्षयत् ॥ २९ ॥

अर्थ–पर कृष्ण महात्मा अर्जुन के साथ वहीं रमणीय इन्द्र-प्रस्थ में ही रहे ॥ २६ ॥ सुभद्रा से वीर अभिमन्यु का जन्म हुआ, जन्मसे लेकर जिसके शुभकर्म श्रीकृष्ण ने किये ॥ २७ ॥ वह बालक शुक्लपक्ष में चन्द्र की भांति बढ़ा, और वेदोंको पढ़कर अर्जुन से सम्पूर्ण दिव्य मानुष अस्त्रज्ञान सीखा ॥२८॥ महाबली अर्जुन ने उनको अस्त्रों की विशेष विद्याओं में, और उत्तम प्रयोग करने में, और सारी क्रियाओं में, जो २ विशेष हैं, वह सब उस को सिखलाए * ॥ २९ ॥

---

*वर्तमान महाभारत में इससे आगे पाया जाता है, कि द्रौपदी के पांच पतियों से पांच पुत्र हुए—युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक, सहदेव से श्रुत-सेन। यह सब एक दूसरे से एक २ वर्ष छोटे थे. अर्जुनके वनवास में द्रौपदी के घर कोई लड़का लड़की न होना, तो उसे अर्जुन की पत्नी सिद्ध करता है। और पुत्र जन्म के तीन ही महीने पीछे फिर

अ० ४७ (व० २२२) खाण्डव दाह

मूल—ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत् । उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छावो यमुनां प्रति ॥ १ ॥ आमन्त्र्यतौ धर्मराज मनुज्ञाप्य च भारत । जग्मतुः पार्थगोविन्दौ सुहृज्जन वृतौ ततः ॥ २ ॥ विहारदेशं संप्राप्य नाना द्रुम मनुत्तमम् । समीपं जग्मतुः कंचिदुद्देशं सुमनोहरम् ॥ ३ ॥ सर्वतः परिवार्याथ सप्तार्चिर्ज्वलनस्तथाददाह खाण्डवं दावं युगान्तमिव दर्शयन् ॥ ४ ॥ तौ रथाभ्यां रथिश्रेष्ठौ दावस्यो भयतःस्थितौ ॥ ५ ॥ खाण्डवे दह्यमाने तु विनदन्तःसमन्ततः । तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते विनश्यन्तः शरीरिणः ॥ ६ ॥

अर्थ—तब कुछ दिन पीछे अर्जुनने कृष्ण से कहा हे कृष्ण! उष्ण दिन हैं, चलो यमुना पर चलें ॥ १ ॥ तब हे भारत धर्मराज से पूछकर और अनुज्ञा लेकर अर्जुन और कृष्ण सुहृदजनों समेत गए ॥ २ ॥ भांति २ के वृक्षों वाले अत्युत्तम सैरस्थान पर

गर्भस्थिति होजाना, और वह भी एकवार दैवयोग से नहीं, पांच बार लगातार ऐसा ही होना, और फिर कई वर्षों में भी एक भी लड़का लड़की न होना सिद्ध करता है, कि यह बनावट है। वस्तुतः बात यह है, कि अभिमन्यु से ही आगे पाण्डव वंश चला है, इस लिये सुभद्रा के विवाह के अनन्तर सुभद्रासे अभिमन्यु का जन्म बतलाया। द्रौपदी के कौन २ पुत्र थे, उसकी यहां आवश्यकता न थी, इसलिये नहीं कहा, पर द्रौपदी के पांच पति बनाने वालेने अवसर देख पांच पतियों की पुष्टि करने के लिये पांचों से अलग २ पांच पुत्र भी कहडाले। इसके आगे समाप्ति तक खाण्डववन के जलाने का वर्णन है, वह भी रूपक और अत्युक्ति और बनावटों से भरा है, अतः उसमें से इतिहासांश ही हम आगे संकलन करेंगे-सम्पादक

पहुंच कर, पास ही एक बड़े मनोहर स्थान में गए ॥ ३ ॥ अनन्तर सात लाटों वाली आग चारों ओर घेरकर मळयका दृश्य दिखलाती हुई खाण्डव वन को जलाने लगी ॥ ५ ॥ वह दोनों राथिश्रेष्ठ अपने दोनों रथों से वनसे बाहर जा खड़े हुए ॥ ५ ॥ खाण्डव के दग्ध होते हुए चारों ओर वहां पुकारते हुए शरीरधारी नष्ट होतेहुए दिखलाई देनेलगे ॥ ६ ॥

मूल—अभिधावेत्सर्जुने त्येवं मयस्त्राहीति चाब्रवीत् । तं न भेतव्यमित्याह मयं पार्थो दयापरः ॥ ७ ॥ तं पार्थेनाभयेदत्ते पावको न ददाह च ॥ ८ ॥ अर्जुनो वासुदेवश्च दानवश्च मयस्तथा। रमणीये नदीकूले सहिताः समुपाविशन् ॥ ९ ॥

अर्थ—वहां मय दानव अर्जुन को देखकर मेरी ओर दौड़ो मुझे बचाओ, ऐसे बोला । दया परायण अर्जुन ने मय को कहा, मत डरो ॥ ७ ॥ अर्जुन ने उसे अभय दिया और अग्निने उसको नहीं जलाया ॥ ८ ॥ तब अर्जुन कृष्ण और मय दानव तीनों मिलकर नदी के किनारे बैठ गए ॥ ९ ॥

आदिपर्व समाप्त हुआ ॥

सभापर्व ॥

अ० १ (व०१-३) मय का पाण्डवों के लिये सभा बनाना

मूल—ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य सन्निधौ । त्वया त्रातोऽस्मि कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥ अर्जुनउवाच—कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्तिगच्छ महाऽसुर । प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते ॥ २ ॥ मय उवाच—युक्तमेतत् त्वयि विभो यथाऽऽत्थ पुरुषर्षभ । प्रीतिपूर्वमहं किञ्चित् कर्तुमिच्छामि भारत ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच—प्राणकृच्छ्राद् विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया । एवं गते न शक्ष्यामि किञ्चित् कारयितुं त्वया ॥ ४॥ नचापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव । कृष्णस्य क्रियतां किञ्चित् तथा प्रतिकृतं मयि ॥ ५ ॥

अर्थ—तब मय ने कृष्ण के सम्मुख अर्जुनसे कहा, हे अर्जुन तूने मेरी रक्षा की है, कहिये आपका क्या कार्य करूं ॥ १ ॥ अर्जुन बोले—हे महादानव ! आप का सब किया हुआ ही है, आप कल्याण से जाइये, सदा हम पर प्रीतिमान् रहना, हम सदा तुझसे प्रीतिमान् रहेंगे ॥ २ ॥ मय बोला—हे पुरुषवर ! जो आप कहते हैं-यह आपके लिये उचित ही है, हे भारत ! पर मैं प्रीतिपूर्वक कुछ करना चाहता हूं ॥ ३ ॥ अर्जुन बोले—हे दानव ! तुम समझते हो, मैंने तुम्हें प्राणसंकट से बचाया है, ऐसी अवस्था में मैं आपसे कुछ करवा नहीं सकता ॥ ४ ॥ पर तेरा संकल्प भी हे दानव मैं व्यर्थ करना नहीं चाहता हूं, आप कृष्ण का कोई कार्य करें, इससे मेरे ऊपर प्रत्युपकार होगा ॥ ५ ॥

मूलचोदितो वासुदेवस्तु मयेन भरतर्षभ । चोदयामास तं

कृष्णः सभा वै क्रियतामिति ॥ ६ ॥ धर्मराजस्य दैतेय यादृशी मिह मन्यसे । यां कृतां नानुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्य विस्मिताः । तादृशीं कुरुवै सभाम्॥ ७ ॥ यत्र दिव्यानभिप्रायान् पश्येम हि कृतांस्त्वया । आसुरान् मानुषांश्चैव सभां तां कुरु वै मय ॥ ८ ॥

अर्थ—हे भरतवर ! तब मयने कृष्ण से पूछा, कृष्णने उसे आज्ञादी, एक सभा बनाओ ॥ ६ ॥ हे दैतेय ! धर्मराज की एक सभा यहां बनाओ, जिसका अनुकरण दूसरे लोक न करसकें ॥ ७ ॥ जिसमें तुझसे बनाए, (चितरे) देव, मनुष्य और असुरों की मनोवृत्तियों को हम देखसकें, वैसी सभा हे मय बनावें ॥८ ॥

मूल—प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं संप्रहृष्टो मयस्तदा । विमानप्रतिमां चक्रे पाण्डवस्य शुभां सभाम् ॥ ९ ॥सर्वर्तुगुण सम्पन्नां दिव्यरूपां मनोरमाम् । दशकिष्कु सहस्रान्तां मापयामास सर्वतः॥१०॥ उषित्वा खाण्डवप्रस्थे सुखवासं जनार्दनः । स्यन्दनेनाथ कृष्णोऽपि त्वरितं द्वारकामगात् ॥ ११ ॥ अथाब्रवीन्मयः पार्थ मर्जुनं जयतांवरम् । उत्तरेण तु कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ॥ १२ ॥ यियक्षमाणेषु पुरा दानवेषु मया कृतम् । चित्रं मणिमयं भाण्डं रम्यं बिन्दुसरः प्रति ॥१३॥ सभायां सत्यसन्धस्य यदासीद् वृषपर्वणः॥१४॥ आगमिष्यामि तद्गृह्य यदि तिष्ठति भारत । ततः सभां करिष्यामि पाण्डवस्य यशस्विनीम् ॥ १५ ॥

अर्थ—उस वचन को स्वीकारकर प्रसन्न हुए मयने युधिष्ठिर के लिये विमान सदृश सुन्दर सभा बनाना स्वीकार किया ॥ ९ ॥ और सारे ऋतुओं में सुख देने वाली सुन्दर मन भावनी चारों ओर दससहस्र हाथ लंबी चौड़ी सभा भूमि मापी ॥ १० ॥ इतना समय श्रीकृष्ण खाण्डवप्रस्थ में आनन्द पूर्वक वास कर रथ से

जल्दी द्वारका को गए ॥ ११ ॥ अब विजयवालों में श्रेष्ठ अर्जुन से मय बोला, कि कैलास के उत्तर की ओर मैनाकपर्वत पर, दानवों के यज्ञकाल में विन्दुसर के पास मैंने एक विचित्र सुन्दर मणिजटित भाण्ड (चित्र आदि बनाने के सूक्ष्म अति सूक्ष्म विविध हथियारों का बक्स) बनाया था । जो वहां सच्ची प्रतिज्ञा वाले वृषपर्वा की सभा में था ॥ १२–१४ ॥ हे भारत ! यदि वह वहां पड़ा है, तो पहले उसे लाता हूं, तब युधिष्ठिर की यशवाली सभा बनाऊंगा ॥ १५ ॥

मूल–इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थं प्रागुदीचीं दिशं गतः । अथोत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ॥ १६ ॥ रम्यं विन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः । द्रष्टुं भागीरथीं गंगा मुवास बहुलाः समाः ॥ १७ ॥ तत्र गत्वा स जग्राह गदां शंखं च भारत । स्फाटिकं च सभाद्रव्यं यदासीद् वृषपर्वणः ॥ १८ ॥ तदाहृत्य च तां चक्रे सोऽसुरोऽप्रतिमां सभाम् । गदां च भीमसेनाय प्रवरां प्रददौ ततः ॥१९॥देवदत्तं चार्जुनाय शंखप्रवर मुत्तमम् ॥ २० ॥

अर्थ—अर्जुन से यह कहकर वह असुर पूर्वोत्तर दिशा को गया, और कैलास से निकट उत्तर ओर मैनाक पर्वत पर, सुन्दर विन्दुसर पर पहुंचा, जहां राजा भगीरथ भागीरथी गंगाके देखने के लिये बहुत वर्ष रहा था ॥ १६—१७ ॥ वहां जाकर उसने वृषपर्वा के अधिकार में जो गदा, शंख, और सभा बनाने का बिल्लौरी द्रव्य था, वह सब ले लिया ॥ १८ ॥ उसे लाकर उसने एक अनुपम सभा बनाई, वह उत्तम गदा भीमसेन को दी, और वह देवदत्त नामी उत्तम शंख अर्जुन को दिया ॥ २० ॥

मूल—सभा च सा महाराज शातकुम्भमयद्रुमा । प्रबभौ

ज्वलमानेव दिव्या दिव्येन वर्चसा ॥ २१ ॥ तस्यां सभायां नलिनीं चकाराप्रतिमां मयः । वैदूर्यपत्रविततांमणिनालोज्ज्वलाम्बुजाम् ॥ २२ ॥ हेम सौगंधिकवतीं नानाद्विजगणायुताम् । पुष्पितैः पंकजैश्चित्रां कूर्मैर्मत्स्यैश्च काञ्चनीम् ॥ २३ ॥ चित्रस्फटिकसोपानां निष्पंकसलिलांशुभाम् । मन्दानिल समुद्धूतां मुक्ता बिन्दु भिराचिताम् ॥ २४ ॥ महामणिशिलापट्टबद्धपर्यन्तवेदिकाम् ॥ २५ ॥ मणिरत्नचितां तां तु केचिदभ्येत्य पार्थिवाः । दृष्ट्वाऽपि नाभ्यजानन्त तेऽज्ञानात्प्रपतन्त्युत ॥ २६ ॥

अर्थ—हे महाराज! सुवर्णमय वृक्षों (बेल बूटों) वाली वह दिव्य सभा दिव्य तेजसे जलती हुई की भांति शोभा देने लगी ॥ २१ ॥ उस सभामें मय ने एक अनुपम नलिनी (कमलों वाला छोटा सरोवर) बनाई, जो सब्ज मणि के पत्तों वाली, मणियों की नालों पर स्वच्छ कमलों वाली ॥ २२ ॥ सुनहरी कल्हारों (अधिक सुगन्धि वाले पद्म विशेष) वाली, भांति २ के पक्षिगणों से युक्त, फूले हुए कमलों से तथा सुनहरी कछुए और मछलियों से विचित्र ॥ २३ ॥ अद्भुत बिल्लौर की सीढियों वाली, मलशून्य (अति स्वच्छ) जलवाली*सुहावनी । मन्द वायु से आन्दोलित, अतएव (नलिनी के पत्तों पर) मोतियों की सी जल—बूंदों से युक्त ॥ २४ ॥ जिस के चारों ओर की वेदि महामणियों की पट्टशिलाओं से बनी

---

* अति स्वच्छ होने से जल निचलेतल और सीढियों के रूपमें भासता था, न कि अपने रूपमें, जैसे कि बिल्लौर के सामने लाल फूल रखनेसे बिल्लौर फूल रूप से ही भासता है। इस से वहां जलमें भी स्थल का भ्रम होजाता था।

है ॥ २५ ॥ मणि रत्नों से जटित उस नलिनी के पास आकर कई राजे देखकर भी न जानते,और भूल से उसमें गिरपड़ते*॥२६

मूल—तां सभामभितो नित्यं पुष्पवन्तो महाद्रुमाः । आसन् नानाविधा लीलाः शीतच्छाया मनोरमाः ॥ २७ ॥ काननानि सुगन्धीनि पुष्करिण्यश्च सर्वशः । हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोप शोभिताः ॥ २८ ॥ ईदृशीं तां सभां कृत्वा मासैः परि चतुर्दशैः । निष्ठितां धर्मराजाय मयो राजन् न्यवेदयत् ॥ २९ ॥ ततः प्रवेशनं तस्यां चक्रे राजा युधिष्ठिरः । तर्पयामास विप्रेन्द्रान् नाना दिग्भ्यः समागतान् ॥ ३० ॥ सभायामृषयस्तस्यां पाण्डवैः सह आसते । आसां चक्रुर्नरेन्द्राश्च नानादेशसमागताः ॥ ३१ ॥

अर्थ—उस सभाके चारों ओर सदा फूलों वाले,ठंडी छाया वाले, भांति २ के मनोरम वृक्ष थे ॥ २७ ॥ सुगन्धों वाले बगीचे, तथा हंस, जलकुक्कड और चकवों से शोभित तालाव थे॥ २८॥ चौदह महीनों से कुछ अधिक में ऐसी पूरी सभा बनाकर मय ने धर्मराज को समाचार दिया ॥ २९ ॥ तब उसमें राजा युधिष्ठिरने प्रवेश किया, नाना दिशाओं से आए ब्राह्मणों को तृप्त किया ॥ ३० ॥ उस सभामें पाण्डवों के साथ ऋषि बैठते थे,और नाना दिशाओं से आए राजे बैठते थे ॥ ३१ ॥

---

*पहले न देखे हुए पत्तों नालों वाले कमल आदि देखकर 'यह मणि रत्नों से जटित कृत्रिम कमल आदि फर्श के ऊपर बने हुए हैं, सो यह कमल मछलियों आदिके चित्रों वाली भूमि ही है, नलिनी नहीं' ऐसा जान स्थल के भ्रम से जल में गिरते थे ।

अ० २ (व० ५) नारद-कृत राजधर्मोपदेश

मूल—अथ तत्रोपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु। वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः ॥ १ ॥ वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान् नयवित् कविः। परापरविभागज्ञः प्रमाणकृतनिश्चयः॥ २ ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु यथावत् कृतनिश्चयः। युद्धगान्धर्वसेवी च सर्वत्राप्रतिघस्तथा ॥ ३ ॥ लोकाननुचरन् सर्वानागमत् तां सभां नृप। नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥ ४ ॥ सोऽर्चितः पाण्डवैः सर्वैर्महर्षि र्वेदपारगः। धर्मकामार्थसंयुक्तं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरम् ॥ ५ ॥

अर्थ—एक बार महात्मा पाण्डव सभा में बैठे थे, कि वहां वेद उपनिषदोंके ज्ञाता देवगणोंके पूज्य ॥ १ ॥ उत्तम बोलने वाले, प्रगल्भ, मेधावी, स्मृतिमान्, नीतिज्ञ, कवि, ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड का विभाग जाननेवाले, प्रमाणों से (हरएक वस्तु के तत्त्व का) निश्चय किये हुए ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में यथार्थ निश्चय किये हुए, युद्ध औरगान्धर्व के प्यारे, सारी विद्याओं में न रुकने वाले ॥ ३ ॥ बहुत बड़े तेजस्वी ऋषि नारद और कई ऋषियों के साथसब लोकों में घूमते हुए उस सभा में आए ॥ ४ ॥ और सब पाण्डवों से पूजे जाकर वह वेदपारग महर्षि युधिष्ठिर से धर्म अर्थ काम युक्त यह पूछने लगे ॥ ५ ॥

मूल—कच्चिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः। सुखानि चानुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते ॥ ६ ॥ कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतांवर। विभज्य काले कालज्ञःसमं वरद सेवसे ॥ ७ ॥

कच्चिद्राजगुणैः षड्भिः सप्तोपायांस्तथाऽनघ । बलाबलं तथा सम्यक् चतुर्दश परीक्षसे ॥ ८ ॥ कच्चिदात्मानमन्वीक्ष्य परांश्च जयतांवर । तथा सन्धाय कर्माणि अष्टौ भारत सेवसे ॥ ९ ॥

अर्थ—आपके धन तो समर्थ हैं (उचित कार्यों में लगते और उचित फल देते हैं) आप का मन तो धर्म में आनन्द मनाता है, सुखों को तो अनुभव करते रहते हो, मन तो विहत नहीं होता ॥ ६ ॥ हे विजयिवर वरदाता कालज्ञ बन कर धर्म अर्थ कामको अपने २ काल पर बराबर सेवन करते हो ॥ ७॥ हे निष्पाप!छः राज गुणों से सात उपायों को बल अबल और चौदह (देखो आगे ३२से ३४)को भलीभांति परखते रहते हो(छः राजगुण-(१) गुप्तचर और मन्त्रियों को कार्य बतलाने में निपुणता(२) शत्रुओं के दबाने में पूरा उत्साह (३) तर्क में निपुण होना (४) पूर्व कार्यों की स्मृति (५) भविष्यत् का विचार (६) नीति में निपुणता । सात उपाय—साम, दान, भेद, दण्ड, मन्त्र, औषध, माया । बल अबल अपना और शत्रु का)॥ ८ ॥ और हे विजयिवर अपने बल पर और दूसरों के बल पर पूरी दृष्टि रखते हो और उनसे मेल रख कर (देशकी समृद्धि के लिये) आठ कर्मों का सेवन करते हो (आठ कर्म—खेती की वृद्धि, व्यापार की वृद्धि, किले बनवाना, पुल बनवाना, हाथियों का पकड़ना, रत्नों की खानों और धातों के खानों से कर लेना, और उजाड़ों का बसाना) ॥ ९ ॥

मूल—मित्रोदासीन शत्रूणां कच्चिद् वेत्सि चिकीर्षितम् । कच्चिद्वृत्ति मुदासीने मध्यमे चानु मन्यसे ॥ १० ॥ कच्चित् संवृतमन्त्रैस्ते अमात्यैः शास्त्रकोविदैः । राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिर्न

विलुप्यते ॥ ११ ॥ कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिःसह ।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो न राष्ट्रं परिधावति ॥ १२ ॥ कच्चि-
दर्थान् विनिश्चित्य लघुमूलान् महोदयान् ।। क्षिप्रमारभसे कर्तुं न
विघ्नयसि तादृशान् ॥ १३ ॥ कच्चित् कारणिका धर्मे सर्वशास्त्रेषु
कोविदाः । कारयन्ति कुमारांश्च योधमुख्यांश्च सर्वशः ॥ १४ ॥

अर्थ—शत्रु, मित्र और उदासीन जो २ करना चाहते हैं,
उसको जानते रहते हो, उदासीन और मध्यस्थों के साथ योग्य
वर्ताव रखे रखते हो ॥ १०॥शास्त्रनिपुण,मन्त्र के गुप्त रखने वाले,
मन्त्रियों द्वारा हे तात ! तेरा देश तो सुरक्षित है, जिससे कि श-
त्रुओंसे छिन्न भिन्न न हो ॥ ११ ॥ क्या तुम अकेले वा बहुतसों
के साथ तो मन्त्रणा नहीं करते हो, और क्या तुम्हारा मन्त्र
देशमें फैल तो नहीं जाता ॥ १२ ॥ छोटे उपायों वाले औरबड़े
फलों वाले कर्मों का निश्चय करके उनका जल्दी आरम्भ तो करदेते
हो, उनके करने २ में ही तो नहीं रहजाते हो ॥ १३ ॥ धर्म में
और सारे शास्त्रों में निपुण, तय्यार करने वाले तो राजकुमारों को
और उत्तम २ योधाओं को तय्यार करते रहते हैं ॥ १४ ॥

मूल—कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकं क्रीणासि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान् निःश्रेयसं परम् ॥ १५ ॥ कच्चिद्
दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः । यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा
शिल्पि धनुर्धरैः ॥ १६ ॥ कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च म-
ध्यमाः । जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः ॥ १७ ॥
कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्विजसे प्रजाः ॥ १८ ॥ कच्चिद्धृष्टश्च शू-
रश्च मतिमान् धृतिमान् शुचिः । कुलीनश्चानु रक्तश्च दक्षः सेना-
पतिस्तव ॥ १९ ॥ कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।

संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि ॥ २० ॥ कच्चिद् दारान् मनुष्याणां तवार्थे मृत्युमीयुषाम् । व्यसनं चाभ्युपेतानां बिभर्षि भरतर्षभ ॥ २१ ॥

अर्थ—सहस्रों मूर्खों के बदले एक पण्डित को मोललेते हो, क्योंकि पण्डित विपत्तियों में पूरा कल्याण करता है ॥१५॥ सारे दुर्ग तो धन, धान्य,जल,शस्त्र,यन्त्र, शिल्पी और धनुर्धारियों से भरे हैं ॥ १६ ॥ ऊंचे भृत्य ऊंचे कर्मोंमें, मध्यम मध्यमोंमें और अधम अधमों में लगाए हुए हैं॥१७॥कड़े दण्ड से प्रजाओं को बहुत डरा तो नहीं देते हो ॥ १८ ॥ तेरा सेनापति प्रगल्भ शूर समझ-दार, धैरिज वाला, शुद्ध स्वभाव, कुलीन, अनुराग वाला, और काम में दक्ष है ॥ १९ ॥ सेनाको यथायोग्य जो वेतन और अ-नाज देना चाहिये,वह ठीक समय पर देते हो,लंबा लटका तो नहीं देते ॥ २० ॥ तुम्हारे लिये प्राण दे चुके, वा विपद् में पड़े भृत्यों के परिवारों का तो ठीक २ पालन करते हो ॥ २१ ॥

मूल—कच्चिद् भयादुपगतं क्षीणं वा रिपुमागतम् । युद्धेवा विजितं पार्थ पुत्रवत् परिरक्षसि ॥ २२ ॥ कच्चित् त्वमेव सर्वस्याः पृथिव्याः पृथिवीपते । समश्चानभिशंक्यश्च यथा माता यथा पिता ॥ २३ ॥ कच्चिदात्मान मेवाग्रे विजित्य विजितेन्द्रियः । परान् जिगीषसे पार्थ प्रमत्तानजितेन्द्रियान् ॥ २४ ॥ कच्चिदायस्य चार्धेन चतुर्भागेन वापुनः । पादभागैस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुध्यते तव ॥ २५ ॥ कच्चिच्चायव्यये युक्ताः सर्वे गणकलेखकाः । अनुतिष्ठन्ति पूर्वाह्णे नित्यमायं व्ययं तव ॥ २६ ॥ कच्चिन्न लु-ब्धाश्चौरा वा वैरिणो वा विशांपते । अप्राप्तव्यवहारा वा तव कर्म स्वनुष्ठिताः ॥ २७ ॥

अर्थ—डरे हुए, वा शक्तिहीन हुए, वा युद्ध में जीतेहुए शरण आए शत्रुकी पुत्रवत् रक्षा तो करते हो ॥ २२ ॥ सभी लोग तुझे माता पिता की भांति पक्षपात रहित और अनडरावना तो मानते हैं ॥ २३ ॥ पहले अपने आप को तो जीतकर जितेन्द्रिय बनें इस प्रकार अप्रमत्त हो, प्रमादी अजितेन्द्रिय शत्रुओं को जीतना चाहते हो॥२४॥आप का व्यय तो आप के आयके आधे भाग वा चौथे भाग.वा तीन चौथाई भाग से निपट जाता है।२५। आय व्यय में नियुक्त सारे गणक लेखक (अकाउन्टेंट और क्लर्क) प्रतिदिन सवेर के समय आपका आय व्यय तो निवेदन करते हैं ॥ २६ ॥ लालची, चोर, वैरी वा अनजान तो आपके कार्यों में नियुक्त नहीं है ॥ २७ ॥

मूल—कच्चिन्न चौरैर्लुब्धैर्वा कुमारैः स्त्रीबलेन वा । त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं कच्चित्तुष्टाः कृषीवलाः ॥ २८ ॥ कच्चिद् राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि बृहन्ति च । भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥ २९ ॥ कच्चिन्न बीजं भक्तं च कर्षकस्यापसीदति । प्रत्येकं च शतं वृध्या ददास्यृण मनुग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिच्छारीरमाबाध मौषधैर्नियमेन वा। मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थापकर्षसि ॥ ३१ ॥ नास्तिक्य मनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् । अदर्शनं ज्ञानवता मालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥ ३२ ॥ एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम् । निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्या परिरक्षणम् ॥ ३३ ॥ मंगलाद्य प्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः । कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥

अर्थ—चोरों से, लोभियों से, कुमारों से, स्त्रियोंकी प्रबलतासे, वा तुझसे देशको तंगी तो नहीं मिलती, किसान तो संतुष्ट

हैं ॥ २८ ॥ देशमें तडाग तो बहुतसे हैं और भरे रहते हैं, और अलग २ बांटकर उचित प्रदेशों पर बनवाए गए हैं, खेती केवल दृष्टि के सहारे तो नहीं है ॥ २९ ॥ खेती करनेवालों को भोजन और बीज की तो तंगी नहीं होती, और एक सैंकड़ा ब्याजपर उनकी सहायता के लिये ऋण तो देते हो ॥ ३० ॥ हे पाण्डव ! शारीरिक पीड़ा को औषध सेवन से और नियमपर चलनेसे,और मानस पीड़ा को वृद्धों की सेवा से सदा दूर तो करते रहते हो॥३१॥ नास्तिकपन, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता = कामको लंबा लटकाते जाना, जानकार पुरुषों का पास न होना, आलस्य, इन्द्रियोंके वश में होना ॥ ३२ ॥ अपने प्रयोजनों को अकेले सोचना, वा अनर्थ सोचने वालों के साथ सोचना, निश्चित कार्यों का आरम्भ न करना, मन्त्र की रक्षा न करना, मंगल कार्यों का न करना, और सारे शत्रुओं के साथ एकसाथ लड़ाई छेड़ना, इन चौदह राजदोषों को तो हटाए रखते हो ॥ ३४ ॥

मूल--कच्चित् ते सफला वेदा कच्चित् ते सफलं धनम् । कच्चित् ते सफला दाराः कच्चित् ते सफलं श्रुतम्॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रफला वेदा दत्त भुक्तफलं धनम् । रतिपुत्रफला दारा शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥ ३६ ॥ कच्चिद् सूत्राणि सर्वाणि गृह्णासि भरतर्षभ । हस्तिसूत्राश्वसूत्राणि रथसूत्राणि वा विभो ॥ ३७ ॥ कच्चिदभ्यस्यते सम्यग् गृहे ते भरतर्षभ । धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रं च नागरम् ॥ ३८ ॥ कच्चिदग्नि भयाच्चैव सर्वं व्यालभयात् तथा। रोग रक्षो भयाच्चैव राष्ट्रं संपरिरक्षसि ॥ ३९ ॥ कच्चिदन्धांश्च मूकांश्च पंगून् व्यंगान बान्धवान् । पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानापि ॥ ४० ॥ षडनर्था महाराज कच्चित् ते पृष्ठतःकृताः ।

निद्राऽऽलस्यं भयं क्रोधो मार्दवं दीर्घसूत्रता ॥ ४१ ॥ एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे । स विहृत्येह सुसुखी शक्रस्यैति सलोकताम् ॥ ४२ ॥ एवमाख्याय पार्थेभ्यो नारदो जनमेजय । जगाम तैर्वृतो राजन्नृषिभिर्यैः समागतः ॥ ४३ ॥

अर्थ—तेरे वेद तो सफल हैं, तेरा धन तो सफल है, तेरी स्त्री तो सफल है, तेरा शास्त्र तो सफल है ॥ ३५ ॥ वेद अग्नि-होत्र (आदिकर्म) से सफल होता है, धन, दान और भोग से, स्त्री भोग सुख और पुत्र से और शास्त्र शील और वर्ताव से सफल होता है ॥ ३६ ॥ हे भरत वर ! सब सूत्रग्रन्थों को तो जानते हो, जैसा कि हाथी घोड़े रथोंके विषय के सूत्र ॥ ३७ ॥ हे भरतवर आपके घरमें धनुर्वेद के सूत्रका, और नगरके लिये हितकर यन्त्र सूत्र* का तो अभ्यास होता रहता है ॥ ३८ ॥ आग्निके भयसे, हिंस्रजीवों के भयसे, रोग और राक्षसों के भय से, सारे देशकी रक्षा तो पूरी तरह करते रहते हो ॥ ३९ ॥ अन्धे, गूंगे, लंगड़े, लूले, अंगहीनों और अनाथों तथा त्यागियों का पालन तो करते रहते हो ॥ ४० ॥ हे महाराज ! निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, निठुरता और दीर्घसूत्रता यह छः दोष तो आपने छोड़े हुए हैं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार जो राजा चारों वर्णों की रक्षा में वर्तता है, वह यहां आनन्द से विचर कर इन्द्रकी सलोकता को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ नारद इस प्रकार पाण्डवों को कहकर उन ऋषियों समेत विदा होगए, जिनके साथ आए थे ॥ ४३ ॥

---

* यन्त्र = आग्नेय औषधों के बलसे सिके कांसे और पत्थर के गोलों को फेंकने वाले लोहे के यन्त्र, जिनको भाषा में नाल कहते हैं (नीलकण्ठ)

अ०३ (व० १३) राजसूयका विचार और कृष्ण को बुलवाना

मूल—भूयश्चाद्भुतवीर्यौजा धर्ममेवानु चिन्तयन्। किं हितं सर्वलोकानां भवेदिति मनोदधे ॥ १ ॥ अनुगृह्णन् प्रजाः सर्वाः सर्व धर्मभृतांवरः। अविशेषेण सर्वेषां हितं चक्रे युधिष्ठिरः ॥ २ ॥ एवं गते ततस्तस्मिन् पितरीवाश्वासयन् प्रजाः। न तस्य विद्यते द्वेष्टा ततोऽस्याजातशत्रुता ॥ ३ ॥ अविग्रहा वीतभया स्वकर्म निरताः सदा। निकामवर्षाः स्फीताश्च आसन् जनपदास्तथा॥४॥ वार्धुषी यज्ञसत्वानि गोरक्षं कर्षणं वणिक्। विशेषात् सर्व मेवै तत् संजज्ञे राजकर्मणा ॥ ५ ॥ दस्युभ्यो वञ्चकेभ्यश्च राज्ञःप्रति परस्परम्। राजवल्लभतश्चैव नाश्रूयत मृषा कृतम् ॥ ६ ॥

अर्थ—आश्चर्य वीर्य पराक्रम वाला युधिष्ठिर अब और भी बढ़कर धर्म के विचारसे इस बात में मन देने लगा, कि कैसे सब प्रजाओंका कल्याण हो ॥ १ ॥ सो समस्त धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर सारी प्रजाओं पर अनुग्रह करता हुआ बिना किसी भेदभाव के सबकी भलाई में लगगया ॥ २ ॥ ऐसे शुद्ध व्यवहार से प्रजा जनोंका उस पर ऐसा भरोसा होगया, जैसे (पुत्रों का) पिता पर होता है। कोई उससे द्वेष करने वाला न रहा, यह हेतु है जिससे कि वह जगत् में अजात शत्रु नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३ ॥ लड़ाई झगड़े कहीं न थे, किसीसे किसीको भय न रहा, सब अपने २ कर्मों में निरत थे, यथेष्ट वर्षा होती, (उसके अधीन) सारे देश उन्नत होगए ॥४॥राजा की सहायता से उधार लेने देने का काम, यज्ञों का सामर्थ्य, गौओं की रक्षा, खेती और व्यापार का काम यह सब विशेषता से फैलगया ॥ ५ ॥ चोर डाकुओं से, ठगों से, वा राजा के किसी मुंह लगेसे कोई

उलटा काम किया सुनने में नहीं आता था,न ही अधीन राजाओं का आपस में एक दूसरे के प्रति ॥ ६ ॥

मूल—समन्त्रिणः समानाय्य भ्रातॄंश्च वदतांवरः। राजसूयं प्रति तदा पुनः पुनरपृच्छत ॥ ७ ॥ ते पृच्छमानाः सर्वे वचोऽर्थ मिदमब्रुवन्। समर्थोऽसि महाबाहो सर्वे ते वशगा वयम्॥८॥ अचिरात् त्वं महाराज राजसूय मवाप्स्यसि। अविचार्य महाराज राजसूये मनः कुरु ॥ ९ ॥ स निश्चयार्थं कार्यस्य जगाम मनसा-हरिम्। गुरुवद् भूतगुरवे प्राहिणोद् दूतमञ्जसा ॥ १० ॥ दर्शनाकाङ्क्षिणं पार्थं दर्शनाकाङ्क्षयाऽच्युतः। इन्द्रसेनेन सहित इन्द्रप्रस्थ मगात् तदा ॥ ११ ॥ तं विश्रान्तं शुभे देशे क्षणिनं कल्प मच्युतम्। धर्मराजः समागम्य ज्ञापयत् स्वप्रयोजनम् ॥१२॥

अर्थ—अब उस वाग्मीने मन्त्रियों और भाइयों को, बुलवाकर राजसूय यज्ञ के विषय में बार बार पूछा ॥ ७ ॥ पूछने पर उन सबने यह अर्थ युक्त वचन कहा, हे महाबाहो! आप करने के समर्थ हैं, हम सब आपके वशवर्ती हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज आप शीघ्र ही राजसूय को पूरा करसकेंगे, सो बिन विचारे हे महाराज! राजसूय में मन दीजिये ॥ ९ ॥ तब उसने इस कार्य के अन्तिम निश्चय के लिये मन में कृष्ण का ध्यान किया, और सब को भला उपदेश देनेवाले कृष्ण की ओर उसने गुरुवत् आशीर्वाद देकर दूत भेजा ॥ १० ॥ तब दर्शनाभिलाषी युधिष्ठिर के पास दर्शनाभिलाषी कृष्ण इन्द्रसेन सहित इन्द्रप्रस्थ में आया ॥ ११ ॥ शुभस्थान में थोड़ा विश्राम लेने के पीछे अवकाश देख सारी योग्यताओं के रखने वाले कृष्ण के पास आ धर्मराज अपना प्रयोजन जितलाने लगे ॥ १२ ॥

मूल—प्रार्थितो राजसूयो मे नचासौ केवलेप्सया। प्राप्यते येन तत्त्वं ते हि विदितं कृष्ण सर्वशः ॥ १३ ॥ तं राजसूयं सुहृदः कार्यमाहुः समेत्य मे। तत्र मे निश्चिततमं तव कृष्ण गिरा भवेत् ॥ १४ ॥ केचिद्धि सौहृदादेव न दोषं परिचक्षते। स्वार्थहेतोस्तथैवान्ये प्रियमेव वदन्त्युत ॥ १५ ॥ त्वं तु हेतूनतीत्यैतान् कामक्रोधौ व्युदस्य च। परमं यत् क्षमं लोके यथावद् वक्तुमर्हसि ।१६।

अर्थ—हे कृष्ण ! राजसूय करने की मेरी इच्छा है, पर वह इच्छामात्र से पूरा नहीं होजाता, यह आप पूरी तरह जानते हैं ॥ १३ ॥ मेरे सुहृद् सब एक वाक्य हो मुझे राजसूय करने को शक्य बतलाते हैं, इसमें जो पूरा निश्चय है, वह हे कृष्ण ! आप की वाणीसे होगा ॥ १४ ॥ कई तो सौहार्द के कारण दोष नहीं देखा करते, और कई स्वार्थके कारण प्रिय कहदेते हैं ॥ १४ ॥ एक आप हैं, जो इन सबकारणों से बच कर,तथा काम क्रोध को दूर करके, जो कुछ जगत् में परम कल्याण है, वह ठीक कहने योग्य हैं ॥ १५ ॥

अ०४(व०१४)जरासन्ध से द्वन्द्व युद्ध का निश्चय

मूल—कृष्ण उवाच–सर्वैर्गुणैर्महाराज राजसूयं त्वमर्हसि। जानतस्त्वेव ते सर्वं किञ्चिद् वक्ष्यामि भारत ॥ १ ॥ इदानीमेव वै राजन् जरासन्धो महीपतिः। साम्राज्यं हि महाराज प्राप्तो भवति योगतः ॥ २ ॥ न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले। राजसूयस्त्वयाऽवाप्तुमेषा राजन् मतिर्मम ॥ ३ ॥ स हि निर्जित्य निर्जित्य पार्थिवान् पृतनागतान्। पुरमानीय बध्वा च चकार पुरुषव्रजम् ॥ ४ ॥ वयं चैव महाराज जरासन्धभयात् तदा। मथुरां संप-

रित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम् ॥ ५ ॥ यदि त्वेनं महाराज यज्ञं प्राप्तुमीप्सति । यतस्व तेषां मोक्षाय जरासन्धवधाय च ॥ ६ ॥ पतितौ हंसडिंभकौ. कंसश्च सगणो हतः । जरासन्धस्य निधने कालोऽयं समुपागतः ॥ ७ ॥ न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः । प्राणयुद्धेन जेतव्यः स इत्युपलभामहे ॥ ८ ॥ मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः । मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः ॥ ९ ॥ त्रिभिरासादितोऽस्माभिर्विजने स नराधिपः । न संदेहो यथायुद्ध मेकेनाप्युपयास्यति ॥ १० ॥ अवमानाच्च लोभाच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः । भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमप्युप यास्यति ॥ ११ ॥ अलं तस्य महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ॥१२॥ यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि । भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे ॥ १३ ॥

अर्थ—हे महाराज ! आप सारे गुणों करके राजसूय के योग्य हैं, यद्यपि सब आपको विदित ही है, तौ भी हे भारत ! मैं कुछ कहूंगा ॥ १ ॥ अभी थोड़ी देर हुई हे महाराज ! जब कि महीपति जरासन्ध अपने सामर्थ्य से सम्राट् की पदवी पाचुका है ॥ २ ॥ उस महाबली जरासन्ध के जीतेहुए हे राजन् ! आप राजसूय को नहीं पासकते, यह मेरी मति है ॥ ३ ॥ उसने सेना समेत राजाओं को जीत २ कर किले में लाकर कैद करके पौरुष दिखलाया है ॥ ४ हम भी हे महाराज उस समय जरासन्ध के भय से मथुरा को त्याग कर द्वारकापुरी को चले गए हैं ॥ ५ ॥ सो हे महाराज ! यदि आप इस यज्ञ को पाना चाहते हैं, तो उन (राजाओं) को छुड़ाने और जरासन्ध के मारने का यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ हंस और डिम्भक (जरासन्ध के बड़े योग्य

मन्त्री थे) मारे गए हैं, और कंस भी साथियों समेत मारागया है। सो जरासन्ध के मारने का यही ठीक अवसर है ॥ ७ ॥ रण में वह सारे सुर असुरों से जीता नहीं जासकता, प्राणयुद्ध (द्वन्द्व युद्ध) से उसको जीतना चाहिये, यह हम निश्चित जानते हैं ॥ ८ ॥ मेरी नीति और भीमका बल मिलजाएं, और अर्जुन हम दोनों का रखवारा बने, तो हम मगधनरेश को साध लेंगे, जैसे कि तीन अग्नियें यज्ञ को साधती हैं ॥ ९ ॥ हम तीनों उसे अलग जा मिलें, तो निःसंदेह वह नरेश ! एक के साथ युद्धके लिये तय्यार होजाएगा ॥ १० ॥ अपमान (न सहसकने) से, लोभसे और भुजबल से दर्पयुक्त हुआ वह अवश्य भीमसेन से युद्ध के लिये तय्यार होजाएगा ॥ ११ ॥ महाबली महाबाहु भीमसेन उसके लिये पर्याप्त है ॥ १२ ॥ सो यदि मेरे हृदय को जानते हैं, यदि आपको मेरे ऊपर भरोसा है, तो भीम और अर्जुन को मेरे पास अमानत के तौर सौंप दीजिये ॥ १३ ॥

मूल—एवमुक्तो भगवता प्रत्युवाच युधिष्ठिरः । भीमार्जुनौ समालोक्य संप्रहृष्टमुखौ स्थितौ ॥ १४ ॥ यथा वदसि गोविन्द सर्वं तदुपपद्यते । नहि त्वमग्रतस्तेषां येषां लक्ष्मीः पराङ्मुखी ॥१५॥ निहतश्च जरासन्धो मोक्षिताश्च नराधिपाः । राजसूयश्च मे लब्धो निदेशे तव तिष्ठतः ॥ १६ ॥ त्रिभिर्भवद्भिर्हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे । धर्म कामार्थ रहितो रोगार्त इव दुःखितः ॥ १७ ॥ एवमेव यदु श्रेष्ठ यावत् कार्यार्थसिद्धये । अर्जुनः कृष्णमन्वेतु भीमोऽन्वेतु धनञ्जयम् ॥ १८ ॥ नयो जयो बलं चैव विक्रमे सिद्धि मेष्यति ॥ १९ ॥

अर्थ—कृष्ण के ऐसा कहने पर युधिष्ठिर ने भीम और अर्जुन

को प्रसन्नमुख बैठे देख उत्तर दिया ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! तुम जो कहते हो ! सब युक्तियुक्त है, क्योंकि तुम उनके नेता नहीं बनते, जिनसे लक्ष्मी मुंह मोड़ लेती है ॥ १५ ॥ तेरे नेतृत्व में स्थित हुआ मैं जानता हूं, कि अब जरासन्ध मारा ही गया, राजे छुड़ा दिये, और राजसूय भी पालिया ॥ १६ ॥ आप तीनोंके बिना, धर्म, अर्थ, काम से रहित, रोगों से पीड़ित दुःखिया की भांति मुझे जीना पसन्द नहीं ॥ १८ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! यह ठीक इसी प्रकार है (जैसा कि आप कहते हैं) कर्तव्य अर्थ की सिद्धि के लिये अर्जुन कृष्ण का साथी बने और भीम अर्जुन का॥१९॥ नीति, जय और बल (कृष्ण अर्जुन और भीम के) विक्रम पर सिद्धि पाएंगे ॥ २० ॥

मूल—एवमुक्तस्ततः सर्वे भ्रातरो विपुलौजसः । वार्ष्णेयः पाण्डवौ च प्रतस्थुर्मागधं प्रति ॥ २१ ॥ कुरुभ्यः प्रस्थितास्तेतु मध्येन कुरुजाङ्गलम् । रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूट मतीत्य च ॥ २२ ॥ गण्डकीं च महाशोणं सदानीरां तथैव च । एकं पर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्त ते ॥ २३ ॥ उत्तीर्य सरयूं रम्यां दृष्ट्वा पूर्वांश्च कोसलान् । अतीत्य जग्मुर्मिथिलां मालां चर्मण्वतीं नदीम् ॥ २४ ॥ अतीत्य गंगां शोणं च त्रयस्ते प्राङ्मुखास्तदा । कुशचीरच्छदा जग्मुर्मागधं क्षेत्र मच्युताः ॥ २५ ॥ ते शश्वद् गोधनाकीर्ण मम्बुमन्तं शुभद्रुमम् । गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम् ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसे कहे हुए बड़े पराक्रमी वह सारे भाई कृष्ण और दोनों पाण्डव मगधेश की ओर चले ॥ २१ ॥ कुरु देशसे चल कर वह कुरुजांगल के मध्य से होकर, रमणीय पद्मसर पर

गए, फिर कालकूट को लंघ कर ॥ २२ ॥ गण्डकी, महा शोण, सदा नीरा इन नदियों को क्रमसे एक पहाड़ी पर लंघ कर आए ॥ २३ ॥ रमणीय सरयू को पार कर पूर्व कोसलों को देख कर माला और चर्मण्वती नदी से पार हो मिथिला को गए ॥ २४ ॥ गंगा और शोण से पार हो, पूर्वाभिमुख हो उत्साह से भरे हुए वह तीनों कुश चीर पहने हुए (स्नातक ब्राह्मण बने हुए) मगधदेश को गए ॥ २५ ॥ अनन्तर वह गौओं की भीड वाले, सदा जल से भरे, सुहावने वृक्षों वाले गोरथ पर्वत पर पहुंच कर मगधों के पुर को देखते भए ॥ २६ ॥

अ० ५ (व०२१-२२) कृष्ण और जरासन्ध का संवाद

मूल—ततो द्वारमनासाद्य पुरस्य गिरिमुच्छ्रितम्। मागधानां तु रुचिरं चैत्यकान्तार माद्रवन् ॥ १ ॥ यत्रमांसादमृषभ माससाद बृहद्रथः। तं हत्वा मासतालाभिस्तिस्रो भेरीरकारयत् ॥ २ ॥ स्वपुरे स्थापयामास तेन चानह्य चर्मणा। भङ्क्त्वा भेरीत्रयं तेऽपि चैत्यकं तं समाद्रवन् ॥ ३ ॥ शिरसीव समाघ्नन्तो जरासन्धं जिघांसवः॥४॥ स्थिरं सुविपुलं शृङ्गं सुमहत् तत् पुरातनम्। विपुलैर्बाहुभिर्वीरास्तेऽभिहत्याभ्यपातयन् ॥ ५ ॥ ततस्ते मागधं हृष्टाः पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ ६ ॥

अर्थ—अनन्तर द्वार की ओर न जाकर मागधों के प्यारे ऊंचे चैत्यक बुर्ज की ओर गए ॥ १ ॥ जहां बृहद्रथ ने नरभोजी ऋषभासुर को पकड़ा था, और उसको मारकर बारह तालों*की

* ताल = अंगूठे और मध्यमा अंगुलि को फैलाने से जो लंबाई होती है, उतने १२ व्यासवाली।

तीन भेरियें बनवाई थीं ॥ २ ॥ और उसी चमड़े से मढ़ कर अपने पुर में लटकाई थीं, उन तीनों भेरियों को (नगारे से) तोड़ कर वह चैत्यक के पास आए ॥ ३ ॥ मानों जरासन्ध को मारना चाहते हुओंने उसके सिर पर चोट लगादी ॥ ४ ॥ बड़ा पक्का, बड़ा विशाल, बहुत बड़ा, वह जो पुरातन मुनारा था, उसको अपनी विशाल भुजाओं से उन वीरों ने तोड़ कर गिरा दिया॥५॥ तब वह प्रसन्न हुए मगधपुर में प्रविष्ट हुए ॥ ६ ॥

मूल—विरागवसनाः सर्वे स्रग्विणो मृष्टकुण्डलाः । निवेशन मथा जग्मुर्जरासन्धस्य धीमतः ॥ ७ ॥ तान् दृष्ट्वा द्विरद प्रख्यान् शालस्कन्धानिं वोद्गतान् । व्यूढोरस्कान् मागधानां विस्मयः समपद्यत ॥ ८ ॥ ते त्वतीत्य जनाकीर्णाः कक्षास्तिस्रो नरर्षभाः । अहंकारेण राजानमुपतस्थुर्गतव्यथाः ॥ ९ ॥ प्रत्युत्थाय जरासन्ध उपतस्थे यथाविधि । उवाच चैतान् राजासौ स्वागतं वोऽस्त्विति प्रभुः ॥ १० ॥ मौनमासीत् तदा पार्थ भीमयोर्जनमेजय । तेषां मध्ये महाबुद्धिः कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ—रंगे वस्त्र पहने, माला धारे, सुन्दर कुण्डल पहने हुए वह सब बुद्धिमान् जरासन्ध के मन्दिर में आए ॥ ७ ॥ उन हाथी समान (डील वाले) शालके डालों की भांति(लंबे) चौड़ी छाती वालों को देखकर मगधवासियों को विस्मय हुआ ॥ ८ ॥ वह नरवर मनुष्यों से भरी तीन डेवढियें लंघकर अहंकार से युक्त निःशंक राजा के पास जा पहुंचे ॥ ९ ॥ प्रभु राजा जरासन्ध ने उठकर उनको आदर दिया, और कहा 'आप का आना शुभ हो' ॥ १० ॥ हे जनमेजय भीम और अर्जुन तो उस समय मौन साधे रहे, उनमें से महाबुद्धि कृष्ण यह वचन बोला ॥ ११ ॥

मूल—व्रतं तु नायाति राजेन्द्र एतयोर्नियमस्थयोः। अर्वाङ् निशीथात् परतस्त्वया सार्धं वदिष्यतः ॥ १२ ॥ यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गतः। ततोऽर्धरात्रे संप्राप्ते यातो यत्रस्थिता द्विजाः ॥ १३ ॥ तस्य ह्येतद्व्रतं राजन् बभूव भुवि विश्रुतम्। स्नातकान् ब्राह्मणान् प्राप्तान् श्रुत्वा स समितिंजयः ॥ १४ ॥ अप्यर्धरात्रे नृपतिः प्रत्युद्गच्छति भारत। तानब्रवीद् जरासन्धो ब्राह्मणच्छद्म संवृतान् ॥ १५ ॥ न स्नातकव्रता विप्रा बहिर्माल्यानुलेपनाः। भवन्तीति नृलोकेऽस्मिन् विदितं मम सर्वशः ॥ १६ ॥ के यूयं पुष्पवन्तश्च भुजैर्ज्याकृत लक्षणैः। बिभ्रतः क्षात्रमोजश्च ब्राह्मण्यं प्रति जानथ ॥ १७ ॥ चैत्यकस्य गिरेः शृङ्गं भित्त्वा किमिह छद्मना। अद्वारेण प्रविष्टाः स्थ निर्भया राजकिल्बिषात् ॥ १८ ॥ एवं च मामुपस्थाय कस्माच्च विधिनार्हणाम्। प्रणीतां नानुगृह्णीत किं कार्यं वाऽस्मदागमे ॥ १९ ॥

अर्थ—हे राजन्! यह दोनों नियम धारे हैं, आधी रात से पहले यह नहीं बोलेंगे, पीछे आपके साथ बात करेंगे ॥ १२ ॥ तब राजा उनको यज्ञागार में ठहरा कर राजगृह में गया, आधी रात होने पर वहां आया, जहां वह ब्राह्मण स्थित थे ॥ १३ ॥ हे राजन्! उस का यह व्रत सारी पृथिवी में विख्यात होचुका था, कि स्नातक ब्राह्मणों को आया सुन कर वह युद्धों का विजेता राजा आधीरात के समय भी आगे जाता था। ब्राह्मण के वेश में ढके हुए उनसे जरासन्ध बोले ॥ १४–१५ ॥ मुझे भली भांति विदित है, कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थ में प्रवेश से पहले माला वा चन्दन नहीं धारते ॥ १६ ॥ तुम माला धारे हुए और चिल्ले के निशान वाली भुजाओं से क्षात्रबल को धारते

हुए तुम कौन हो ? जो ब्राह्मणत्व को अपनाए हुए हो ॥ १७ ॥ कैसे तुम राजा के अपराध का भय न खाकर चैत्यक बुर्ज के मीनार को तोड़ कर बिना द्वार के नगर में प्रविष्ट हुए हो॥१८॥ इस प्रकार मेरे पास आकर किस लिये अब तुम विधि से दी भेटा को नहीं लेते हो, हमारे पास आने का क्या काम है ?॥ १९ ॥

मूल—कृष्ण उवाच—स्नातक व्रतिनो राजन् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः । पुष्पवत्सु ध्रुवा श्रीश्च पुष्पवन्तस्ततो वयम् ॥२०॥ स्ववीर्यं क्षत्रियाणां तु बाह्वोर्धाता न्यवेशयत् । तद् दिदृक्षसि चेद्राजन् द्रष्टास्यद्य न संशयः ॥ २१ ॥ अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदां गृहान् । प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः॥ २२ ॥ कार्यवन्तो गृहानेत्य शत्रुतो नार्हणां वयम् । प्रतिगृह्णीम तद् विद्धि एतन्नः शाश्वतं व्रतम् ॥ २३ ॥

अर्थ—कृष्ण बोले—हे राजन् ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों स्नातक व्रती होते हैं, पुष्प धारण किये जनों में निश्चित श्रीका वास होता है, इस लिये हम पुष्प धारण किये हैं ॥ २० ॥ धाता ने क्षत्रियों की दोनों भुजाओं में अपना वीर्य भर दिया है, हे राजन्! यदि वह देखना चाहते हो, तो निःसंदेह अभी देख सकते हो ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष शत्रुके घर में बिना द्वार के और सुहृदों घरों में द्वार से प्रवेश करते हैं, यह धर्म के द्वार (धर्म मार्ग) हैं ॥ २२ ॥ कार्यसिद्धि के लिये शत्रुके घर में आकर उसकी दी भेटा को हम नहीं लिया करते, यह हमारा सदा का नियम जानो॥

अ० ६ (व० २२) कृष्ण और जरासन्ध का संवाद

मूल—जरासन्ध उवाच—न स्मरामि कदा वैरं कृतं युष्मा-

भिरित्युत । वैकृतेवा ऽसति कथं मन्यध्वं मामनागसम् ॥ १ ॥ अरिवै ब्रूत हे विप्राः सतां समय एष हि । अथ धर्मोपघाताद्धि मनः समुपतप्यते ॥ २ ॥ अनागसं प्रजानां च प्रमादादिव जल्पथ ॥ ३ ॥

अर्थ—जरासन्ध बोले—स्मरण नहीं आता, कि कब मैंने तुम्हारे साथ वैर किया, और वैर न करने पर भी मुझ निर्दोष को कैसे तुम वैरी मानते हो, कहो हे विप्रो ! क्या यही भले पुरुषों की मर्यादा है । हां यदि धर्म पर कोई चोट लगने से तुम्हारा मन संतप्त हुआ है, तो यह भी ठीक नहीं, अपनी सारी प्रजाओं के विषय में निर्दोष को तुम अपनी भूलसे ऐसा कहते हो ॥ १—३ ॥

मूल—कृष्ण उवाच—त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकवासिनः । तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम् ॥ ४ ॥ राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपति सत्तम । तद्राज्ञः सन्निगृह्य त्वं रुद्रा योपजिहीर्षसि ॥ ५ ॥ अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथ त्वया। वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः ॥ ६ ॥ ते त्वां ज्ञातिक्षय करं वय मार्तानुसारिणः । ज्ञाति वृद्धि निमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः ॥ ७ ॥ नास्ति लोके पुमानन्यः क्षत्रियेष्विति चैवयत् । मन्यसे स च ते राजन् सुमहान् बुद्धि विप्लवः ॥ ८ ॥ मावमंस्थाः परान् राजन् नास्ति वीर्यं नरे नरे । समं तेजस्त्वया चैव विशिष्टं वा नरेश्वर ॥ ९ ॥ यावदेतद संबुद्धं तावदेव भवेत् तव । विषह्य मेतदस्माक मतो राजन् ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ युयुक्षमाणास्त्वत्तो हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम् । शौरिरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ ॥ ११ ॥ त्वामाह्वयामहे राजन् स्थिरो युध्यस्व मागध । मुञ्च वा नृपतीन् सर्वान् गच्छ वा त्वं यमक्षयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! तुम इस लोक के क्षत्रियों की बलि दे रहे हो, ऐसा क्रूर अपराध करके कैसे तुम अपने को निरपराध समझते हो ॥ ४ ॥ हे नृपतिवर ! कैसे कोई राजा दूसरे धर्मात्मा राजाओं को सता सकता है, पर तुम उन राजाओं को सता कर रुद्र के नाम पर बलि चढ़ा रहे हो ॥ ५ ॥ हे बृहद्रथ के पुत्र ! तुझसे किया यह पाप हमें भी लग सकता है, क्योंकि हम धर्म पर चलने वाले हैं, धर्म की रक्षा में समर्थ हैं ॥ ६ ॥ सो हम आर्तों का पक्ष लेकर ज्ञातियों (क्षत्रियों) की वृद्धि के लिये, ज्ञाति क्षयकारी तुझको मारने के लिये यहां आए हैं ॥ ७ ॥ लोक में क्षत्रियों में तेरे बराबर और कोई पुरुष नहीं, हे राजन् ! तुम जो यह समझ रहे हो, यह तुम्हारी बड़ी भूल है ॥ ॥८ ॥ हे राजन् ! औरों का अपमान न कर, हरएक नर में वीर्य नहीं है। पर हे नरेश्वर ! तेरे बराबर वा तुझसे बढ़ कर भी तेज है ॥ ९ ॥ जब तक यह जान नहीं लिया, तभी तक तेरा होसकता है, हम इस तेरे तेज को बड़ी अच्छी तरह सहसकते हैं, इसलिये हे राजन्! मैं तुम्हें कहता हूं ॥ १० ॥ हम तुझसे द्वन्द्वयुद्ध करने आए हैं, हम ब्राह्मण नहीं हैं, मैं शूरवंशी कृष्ण हूं, और यह दोनों वीर पाण्डव हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! हम तुमको ललकारते हैं, स्थिर होकर लड़ो, या तो सब राजाओं को छोड़ दो, या स्वयं यम के घर जाओ ॥ १२ ॥

मूल—जरासन्ध उवाच—नाजितान् वै नरपतीनहमाददि कांश्चन । अजितः पर्यवस्थाता कोऽत्र यो न मयाजितः ॥ १३ ॥ विक्रम्य वशमानीय राज्ञः कृष्ण कथं भयात् । अहमद्य विमुञ्चेयं

क्षात्रव्रत मनुस्मरन् ॥ १४ ॥ सैन्यं सैन्येन व्यूढेन एक एकेन वा पुनः।द्वाभ्यां त्रिभिर्वायोत्स्येऽहं युगपत् पृथगेव वा ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा जरासन्धः सहदेवाभिषेचनम् । आज्ञापयत् तदा राजा युयुत्सुर्भीम कर्मभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जरासन्ध बोले—विना जीते मैंने किसी राजा को नहीं पकड़ा है, दूसरों से न जीता हुआ भी ऐसा कौन मेरे सामने खड़ा हुआ है, जिस को मैंने नहीं जीता ॥ १३ ॥ विक्रम दिखला करके वशमें ला हे कृष्ण क्षात्रधर्म को स्मरण करता हुआ कैसे अब मैं भय से उन को छोड़ दूं ॥ १४ ॥ सो मेरी सेना तुम्हारी व्यूह युक्त सेनासे, वा मैं अकेला अकले से, एकसे, वा दो से वा तीनसे भी एक साथ वा अलग २ जैसा चाहो, लड़ने को तय्यार हूं ॥ १५ ॥ यह कह कर भयावने कर्मों वालों के साथ युद्ध करने को तय्यार हुए राजा जरासन्ध ने (अपने पुत्र) सहदेव के अभिषेक की आज्ञा दे दी ॥ १६ ॥

अ० ७ (व० २३) भीम और जरासन्ध का नियुद्ध (कुश्ती)

मूल—ततस्तं निश्चितात्मानं युद्धाय यदुनन्दनः । उवाच वाग्मी राजानं जरासन्ध मधोक्षजः ॥ १ ॥ त्रयाणां केन ते राजन् योद्धुमुत्सहते मनः । अस्मदन्यतमेनेह सज्जीभवतु को युधि ॥२ ॥ एवमुक्तः स नृपतिर्युद्धं वव्रे महाद्युतिः । जरासन्धस्ततो राजा भीमसेनेन मागधः ॥ ३ ॥ आदाय रोचनां माल्यं मंगल्याण्यपराणि च । धारयन्नगदान् मुख्यान् निर्वृतीर्वेदनानि च ॥ ४ ॥ उपतस्थे जरासन्धं युयुत्सुं वै पुरोहितः ॥ ५ ॥

अर्थ—युद्ध के लिये तय्यार हुए राजा जरासन्ध से सुवक्ता यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने पूछा ॥ १ ॥ हम तीनों में से हे राज-

न् ! तुम किससे युद्ध करना चाहते हो, कौन युद्ध के लिये तय्यार हो ॥ २ ॥ ऐसा कहने पर तेजस्वी मगधनाथ राजा जरासन्ध ने भीम से युद्ध मांगा ॥ ३ ॥ तब पुरोहित गोरोचना, माला और दूसरी मंगलकारी वस्तुएं, पीड़ा मिटाने वाले और (मूर्छा में) चेतनता में लाने वाले औषधों को लेकर युद्धेच्छुक जरासन्ध के निकट आया ॥ ५ ॥

मूल—कृतस्वस्त्ययनो राजा ब्राह्मणेन यशस्विना । समनह्यज्जरासन्धः क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ६ ॥ अवमुच्य किरीटं स केशान् समनुगृह्य च । उदतिष्ठज्जरासन्धो वेलातिग इवार्णवः ॥ ७ ॥ ततः संमन्त्र्य कृष्णेन कृतस्वस्त्ययनो बली । भीमसेनो जरासन्धमाससाद युयुत्सया ॥ ८ ॥ ततस्ते नरशार्दूलौ बाहुशस्त्रौ समीयतुः । वीरौ परमसंहृष्टावन्योऽन्य जयकाङ्क्षिणौ ॥ ९ ॥ करग्रहणपूर्वं तु कृत्वा पादाभिवन्दनम् । कक्षैःकक्षां विधुन्वावास्फोटं तत्र चक्रतुः ॥ १० ॥

अर्थ—यशस्वी ब्राह्मण से स्वस्त्यन किये जाने पर राजा जरासन्ध क्षात्रधर्म का स्मरण कर युद्ध के लिये तय्यार हुआ।६। मुकट उतार कर और बाल बांध कर जरासन्ध किनारे पर चढ़ आए समुद्र की भांति उठ खड़ा हुआ ॥ ७ ॥ अनन्तर बली भीमसेन श्रीकृष्ण से विचार कर, और उनसे स्वस्त्ययन किये जाने पर लड़ने के लिये जरासन्ध के पास आया ॥ ८ ॥ अब एक दूसरे पर विजय चाहते हुए वह दोनों नरसिंह वीर भुजमात्र शस्त्र लिये परम प्रसन्न हुए आजुटे ॥ ९ ॥ तब उन्होंने हाथ मिलाए, गुरु चरणों को प्रणाम कर, कांख से कांख को बजाकर ताल ठोके ॥ १० ॥

मूल—स्कन्धे दोर्भ्यां समाहत्य निहत्य च मुहुर्मुहुः । अंगमंगैः समाश्लिष्य पुनरास्फालनं विभो ॥ ११ ॥ चित्र हस्तादिकं कृत्वा कक्षाबन्धं च चक्रतुः । बाहुपाशादिकं कृत्वा पादाहत शिरा वुभौ ॥ १२ ॥ उरोहस्तं ततश्चक्रे पूर्ण कुम्भौ प्रयुज्यतौ ॥ १३ ॥ तले नाहन्यमानौ तु अन्योऽन्यं कृतवीक्षणौ । सिंहाविव सुसंक्रुद्धा वा कृष्याकृष्य युध्यताम् ॥ १४ ॥ सर्वातिक्रान्तमर्यादं पृष्ठ भंगं च चक्रतुः । संपूर्ण मूर्छां बाहुभ्यां पूर्णकुम्भं प्रचक्रतुः ॥ १५ ॥ तृणपीडं यथाकामं पूर्णयोगं समुष्टिकम् । एवमादीनि युद्धानि प्रकुर्वन्तौ परस्परम् ॥ १६ ॥

अर्थ—गर्दन पर हाथ डालकर और बार २ चोट लगाकर अंगों को अंगों से टकराकर रगड़ने लगे ॥ ११ ॥ चित्रहस्त (हाथ का बड़े वेग से सकोड़ना फैलाना ऊपर नीचे चलाना मुक्की बांधना आदि) आदि कक्षाबन्ध (बगलों में से हाथ डाल कर अपने शरीर से लगा कर निपीड़ना) करते भए भुजफांस आदि करके पादप्रहार से नाड़ियों तक चोट पहुंचा कर, फिर उरोहस्त (सींची = छाती पर चपेट मारना) फिर पूर्ण कुम्भ (दोनों हाथों के अन्दर देकर सिरको मल डालना) करते भए ॥ १३ ॥ तली से प्रहार करके एक दूसरे की ओर देख कर शेरों की भांति खींच २ कर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ सारी मर्यादाओं को लंघ कर पीठतोड़ पूरीमूर्छा और दोनों भुजाओं से पूर्ण कुम्भ करते भए ॥ १५ ॥ तृणपीड़, पूर्णयोग और समुष्टिक इत्यादि युद्ध परस्पर करने लगे ॥ १६ ॥

मूल—तयोर्युद्धं ततो द्रष्टुं समेताः पुरवासिनः । ब्राह्मणा वणिजश्चैव क्षत्रियाश्च सहस्रशः ॥ १७ ॥ शूद्राश्च नरशार्दूल

स्त्रियो वृद्धाश्च सर्वशः ॥ १८ ॥ तयोरथ भुजाघातान्निग्रह प्रग्रहाद् तथा । आसीद् सुभीम संपातो वज्रपर्वतयोरिव ॥ १९ ॥ कार्तिकस्य तु मासस्य प्रवृत्तं प्रथमेऽहनि । चतुर्दश्यां निशायां तु निवृत्तो मागधःक्लमाद् ॥ २० ॥ तं राजानं तथाक्लान्तं दृष्ट्वा राजन् जनार्दनः । उवाच भीमकर्माणं भीमं संबोधयन्निव॥ २१ ॥ क्लान्तः शत्रुर्नकौन्तेय लभ्यः पीडयितुं रणे । पीड्यमानो हि कार्त्स्न्येन जह्याज्जीवितमात्मनः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे नर शार्दूल ! उनका युद्ध देखने के लिये पुरवासी सहस्रों ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियें और वृद्ध इकट्ठे हुए थे ॥ १७–१८ ॥ उन की भुजाओं की चोट से नीचे दबा कर गिराने और ऊपर उठा कर पटकने से विजली और पर्वत के गिरने की भांति बड़ा भयंकर शब्द होता था ॥ १९ ॥ यह युद्ध कार्तिक के पहले दिन (प्रतिपद्) को प्रवृत्त हुआ था । चतुर्दशी की रात को मगधनाथ थकावट से कुछ २ रुकने लगा ॥ २० ॥ हे महाराज! उस राजा को थका हुआ देख श्रीकृष्ण ने भीमकर्मा भीम को मानो इशारा देते हुए कहा ॥ २१ ॥ हे कुन्तीपुत्र ! थके हुए शत्रुको रण में पीड़ नहीं देना चाहिये,क्योंकि पूरा २ पीड़ने से वह अपना जीवन छोड़ सकता है ॥ २२ ॥

मूल—एवमुक्तस्तदा भीमो जरासन्ध मरिन्दमः । उत्क्षिप्य भ्रामयामास बलवन्तं महाबलः ॥ २३ ॥ भ्रामयित्वा शतगुणं जानुभ्यां भरतर्षभ । बभंज पृष्ठं संक्षिप्य निष्पिष्य विननाद च ॥ २४ ॥ तस्य निष्पिष्यमाणस्य पाण्डवस्य च गर्जतः । अभवत् तुमुलो नादः सर्वप्राणि भयंकरः ॥ २५ ॥ ततो राज्ञः कुलद्वारि प्रसुप्तमिव तं नृपम् । रात्रौ गतासु मुत्सृज्य निश्चक्रमुररि-

न्दमाः ॥ २६ ॥ जरासन्ध रथं कृष्णो योजयित्वा पताकिनम् ।
आरोप्य भ्रातरौ चैव मोक्षयामास बान्धवान् ॥ २७ ॥

अर्थ—ऐसा कहने पर शत्रुनाशी महाबली भीमने बली जरासन्ध को ऊंचा उठाकर घुमाया ॥ २३ ॥ हे भरतवर बार २ उसे घुमाय, गोड़ों से उसकी पीठ को मोड़ कर तोड़ डाला, चूर २ कर दिया, और गर्जा ॥ २४ ॥ पिसे जाते हुए जरासन्ध का और गर्जते हुए भीम का सब प्राणियों को डराने वाला तुमुल नाद उठा ॥ २५ ॥ अब प्राण छोड़ राजा को राजा के कुलद्वार पर सोए की भांति छोड़ कर वह तीनों निकले ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण जरासन्ध के ध्वजा वाले रथ को जोत कर और दोनों भाइयों को चढा कर बान्धवों को आ छुड़ाया ॥ २७ ॥

मूल—स निर्याय महाबाहुः पुण्डरीकेक्षणस्ततः । गिरिव्रजाद् बहिस्तस्थौ सम देशे महायशाः ॥ २८ ॥ तत्रैनं नागराः सर्वे सत्कारेणाभ्ययुस्तदा । बन्धनाद् विप्र मुक्ताश्च राजानो मधुसूदनम् ॥ २९ ॥ पूजयामासुरूचुश्च स्तुति पूर्वमिदं वचः । किं कुर्मः पुरुषव्याघ्र शाधि नः प्रणतिस्थितान् ॥ ३० ॥ तानुवाच हृषीकेशः समाश्वास्य महामनाः । युधिष्ठिरो राजसूयं क्रतुमाहर्तुमिच्छति ॥ ३१ ॥ तस्यधर्मप्रवृत्तस्यं साहाय्यं क्रियतामिति । तथेत्येवाब्रुवन् सर्वे प्रतिगृह्यास्य तां गिरम् ॥ ३२ ॥ जरासन्धात्मजश्चैव सहदेवो महामनाः । निर्ययौ सजनामात्यः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ॥ ३३ ॥ भयार्ताय ततस्तस्मै कृष्णो दत्त्वाऽभयं तदा । अभ्यषिञ्चत तत्रैव जरासन्धात्मजं मुदा ॥ ३४ ॥ इन्द्रप्रस्थ मुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः । धर्मराज मनुज्ञाप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ॥ ३५ ॥

अर्थ—पीछे महाबाहु यशस्वी श्रीकृष्ण गिरिव्रजसे बाहर निकल मैदान में आ ठहरे॥ २८ ॥ वहां नगरवासी जन बड़े आदर से उसके पास आए, और बन्धन से छूटे हुए वह राजे भी आए॥ २९ ॥ उन्होंने कृष्ण का आदर कर स्तुति पूर्वक यह वचन कहा, हे पुरुषवर! हमने आपके सामने सिर झुकादिया है, कहिये क्या आज्ञा है ॥३०॥विशाल हृदय श्रीकृष्ण ने उनको ढाढ़स देकर कहा, युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहता है, धर्म में प्रवृत्त हुए उसकी आप सहायता कीजिये ॥ ३१ ॥ उन सबने उसके वचन को स्वीकार कर 'तथास्तु' कहा ॥ ३२ ॥ जरासन्ध का पुत्र सहदेव पुरोहित को आगे कर अपने बन्धुओं और मन्त्रियो समेत वहां आया ॥ ३३ ॥ उस भयभीत जरासन्ध के पुत्र को कृष्ण ने अभय दिया, और बड़ी प्रसन्नतासे वहीं उसका अभिषेक किया ॥ ३४ ॥ दोनों पाण्डवों समेत इन्द्रप्रस्थ में आ कर युधिष्ठिर से अनुज्ञा ले श्रीकृष्ण अपनी पुरी को गए॥३५॥

अ० ८ (व० २५-२६) अर्जुन का दिग्विजय

मूल—स सैन्याः प्रययुः सर्वे धर्मराजेन पूजिताः। दिशं धनपतेरिष्टा मजयत् पाकशासनिः ॥ १ ॥ भीमसेनस्तथा प्राचीं सहदेवस्तु दाक्षिणाम्। प्रतीचीं नकुलो राजन् दिशं व्यजयतास्त्र-वित् ॥ २ ॥ खाण्डवप्रस्थ मध्यस्थो धर्मराजो युधिष्ठिरः। आसीत् परमया लक्ष्म्या सुहृद्गणवृतः प्रभुः ॥ ३ ॥ यौगपद्येन पार्थैर्हि निर्जितेयं वसुन्धरा ॥ ४ ॥ धनञ्जयो महाबाहुर्नातितीव्रेण क-र्मणा। आनर्तान् कालकूटांश्च कुलिन्दांश्च विजित्य सः ॥ ५ ॥ सुमण्डलं चावजितं कृतवान् सहसैनिकम् ॥ ६ ॥ स तेन सहितो

राजन् सव्यसाची परन्तपः । विजिग्ये शाकलं द्वीपं प्रतिविंध्यं च पार्थिवम् ॥ ७ ॥ शाकलद्वीप वासाश्च सप्तद्वीपेषु ये नृपाः । अर्जुनस्य च सैन्यैस्तै विग्रहस्तुमुलोऽभवत् ॥ ८ ॥ स तानपि महेष्वासान् विजिग्ये भरतर्षभ । तैरेव सहितः सर्वैः प्राग्ज्योतिष मुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ तत्र राजा महानासीद् भगदत्तो विशांपते । स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत् ॥ १० ॥ अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूप वासिभिः ॥ ११ ॥ ततः स दिवसा नष्टौ योधयित्वा धनञ्जयम् । प्रहसन्नब्रवीद् राजा संग्रामविगतक्लमम् ॥ १२ ॥ न शक्ष्यामि च ते तात स्थातुं प्रमुखतो युधि । त्वमीप्सितं पाण्डवेय ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १३ ॥ अर्जुन उवाच—कुरूणा मृषभो राजा धर्म पुत्रो युधिष्ठिरः । तस्य पार्थिवता मीप्से करस्तस्मै प्रदीयताम् ॥ १४ ॥ भगदत्त उवाच—सर्वमेतत् करिष्यामि किंचान्यत् करवाणि ते ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्मराज से सम्मान पूर्वक भेजे चारों भाई सेना लेकर चढ़े । अर्जुन ने उत्तर दिशा को जीता ॥ १ ॥ भीम ने पूर्व दिशा, सहदेव ने दक्षिण दिशा और अस्त्रवेत्ता नकुल ने हे राजन् पश्चिमदिशा जीती ॥ २ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर सुहृद्गणों से युक्त बड़ी शोभासे खाण्डवप्रस्थ में रहे ॥ ३ ॥ चारों ओर पाण्डवों ने एक साथ इस पृथिवी को जीतलिया ॥ ४ ॥ महाबाहु अर्जुन सहजही आनर्त, कालकूट और कुलिन्दों को जय कर ॥ ५ ॥ सुमण्डल को उसकी सेना सहित पराजित किया ॥ ६ ॥ अब उसको साथ लेकर हे महाराज शत्रुतापी अर्जुन ने शाकलद्वीप और राजा प्रतिविंध्य को जीता ॥ ७ ॥ सात द्वीपों में से शाकलद्वीप में जो राजे थे, उनसे अर्जुन की सेनाओं का घोर

युद्ध हुआ ॥ ८ ॥ हे भरतवर उसने उन महारथियों को भी जीत लिया, उन सबको साथ लिये प्राग्ज्योतिष देश पर चढ़ाई की ॥ ९ ॥ वहां भगदत्त राजा था, वह किरात, चीन, तथा सागर के काछे में रहने वाले और बहुतसे योधाओं से युक्त था ॥ १०-११ ॥ वह आठ दिन लड़ने के पीछे युद्ध में न थकने वाले अर्जुन से हंसकर बोला ॥ १२ ॥ हे तात ! युद्ध में तेरे सामने मैं खड़ा नहीं रहसकता, कहो क्या चाहते हो, तुम्हारा क्या काम करूं ॥ १३ ॥ अर्जुन बोले—कुरुश्रेष्ठ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हैं, मैं उनका साम्राज्य चाहता हूं, उसको कर दीजिये ॥ १४ ॥ भगदत्त बोले—अवश्य यह सब करूंगा, और आपका क्या करूं।१५।

मूल—तं विजित्य महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। प्रययावुत्तरां तस्माद् दिशं धनदपालिताम् ॥ १ ॥ अन्तर्गिरिं च कौन्तेय स्तथैव च बहिर्गिरिम् । तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये भरतर्षभः ॥ २ ॥ विजित्य पर्वतान् सर्वान् ये च तत्र नराधिपाः । तान् वशे स्थापयामास धनान्यादाय सर्वशः ॥ ३ ॥ तैरेव सहितः सर्वै रनुरज्य च तान् नृपान् । उलूकवासिनं राजन् बृहन्तमुप जग्मिवान् ॥ ४ ॥ सुमहान् सन्निपातोऽभूद् धनञ्जय बृहन्तयोः । न शशाक बृहन्तस्तु सोढुं पाण्डव विक्रमम् ॥ ५ ॥ सोऽविषह्यतमं मत्वा कौन्तेयं पर्वतेश्वरः । उपावर्तत दुर्धर्षो रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ ६ ॥ स तद्राज्य मवस्थाप्य उलूक सहितो ययौ । सेनाविन्दुमथो राजन् राज्यादाशु समाक्षिपत् ॥ ७ ॥ मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम् । उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत् ॥ ८ ॥ तत्रस्थः पुरुषैरेव धर्मराजस्य शासनात् । किरीटी जितवान् राजन्

देशान् पञ्चगणांस्ततः ॥ ९ ॥

अर्थ—उसको जीतकर महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन उससे आगे और उत्तरदिशा की ओर गए ॥ १ ॥ अन्तर्गिरि,बहिर्गिरि और उपगिरि को जीता ॥ २ सारे पर्वतों को जय कर, जो वहां राजे थे उनको वशमें कर रत्न लिये ॥ ३ ॥ और उनको प्रसन्न कर उन सबके साथ मिलकर हे राजन् वह उलूकवासी बृहन्त के पास गए ॥ ४ ॥ अर्जुन और बृहन्त का बहुत बड़ा संघर्ष हुआ, बृहन्त पाण्डव के पराक्रम को न सहारसका ॥ ५ ॥ तब वह पर्वतेश्वर अर्जुन को प्रबल जान रत्न लेकर पास आया ॥ ६ ॥ वह उसके राज्य को स्थिर रख उलूकराज के साथ जा सेनाबिन्दु को राज्य से गिरा दिया ॥ ७ ॥ फिर मोदापुर वामदेव, सुदामा, सुसंकुल, उत्तर उलूक देशों और उन राजाओं को वश में लाए ॥ ८ ॥ वहीं ठहर कर अर्जुन ने धर्मराज की आज्ञा से पञ्चगण देशों को जीता ॥ ९ ॥

मूल—स तैः परिवृतः सर्वैर्विश्वगश्वं नराधिपम् । अभ्यगच्छन् महातेजाः पौरवं पुरुषर्षभः ॥ १० ॥ पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वत वासिनः । गणानुत्सवसं केतानजयत् सप्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥ ततः काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिर्युतम् ॥ १२ ॥ ततास्त्रिगर्ताःकौन्तेयं दार्वाः कोकनदास्तथा । क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वशः ॥ १३ ॥ अभिसारीं ततोरम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः । उरगावासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत् ॥ १४ ॥ ततः सिंहपुरं रम्यं चित्रायुध सुरक्षितम् । प्राधमद् बलमास्थाय पाकशासनिराहवे ॥ १५ ॥ ततः सुह्मांश्च चोलांश्च बाह्लीकान् पाकशासनिः । दरदान् सह कांबोजै

रजयत् पाकशासनिः ॥ १६ ॥ प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः । निवसन्ति वने ये च तान् सर्वा नजयत् प्रभुः॥१७॥ लोहान् परमकांबोजा नृषिकानुत्तरानपि । सहितांस्तान् महाराज व्यजयत् पाकशासनिः ॥ १८ ॥ स विनिर्जित्य संग्रामे हिमवन्तं सनिष्कुटम् । श्वेत पर्वत मासाद्य न्यवसत् पुरुषर्षभः ॥ १९ ॥

अर्थ—अब वह तेजस्वी पुरुष उनको साथ लिये पुरुवंशी राजा विश्वगश्व पर चढ़ा ॥ १० ॥ पौरव को और पर्वतवासी दस्युओं को जय कर उत्सव संकेत* नामी सात गणों को जय किया ॥ ११ ॥ पीछे कश्मीर के वीर क्षत्रियों को, फिर लोहित को उसकी दस रियासतों समेत जय किया ॥ १२ ॥ तब त्रिगर्त, दार्व, और कोकनद क्षत्रिय स्वयं अर्जुन की शरण आए ॥१३॥ तिस पीछे अर्जुन ने सुहावनी अभिसारी नगरी को जीता, पीछे उरगावासी रोचमान को रण में जय किया ॥१४ ॥फिर विचित्र शस्त्रों से सुरक्षित सिंहपुर को जा दबाया ॥ १५ ॥ आगे बढ़कर सुह्म, चोल, बाह्लीक, दरद और काम्बोजों को जा जीता ॥१६॥ और पूर्वोत्तर दिशा में तथा वनों में जो दस्यु रहते थे, उन सब को जीता ॥ १७ ॥ लोह, परम कांबोज और ऋषिक इन सबको इकट्ठे जय किया ॥ १८॥इस प्रकार उस पुरुषवर ने हिमालय और निष्कुट पर्वतों को जय कर श्वेत पर्वत पर आ डेरा किया॥ १९ ॥

अ० ९ (व० २९ अर्जुन का दिग्विजय

मूल—स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान् । देशं किंपुरुषावासं द्रुम पुत्रेण रक्षितम् ॥ १ ॥ तं जित्वा हाटकं नाम देशं

---

* जिनमें विवाह की रीति न थी, जिससे मेल मिला, खुशी मनाली (नीलकण्ठ)

गुह्यक रक्षितम् । पाकशासनि रव्यग्रः सह सैन्यः समासदत्॥ २ ॥ तांस्तु सान्त्वेन निर्जित्य मानसं सर उत्तमम् । ऋषिकुल्यास्तथा सर्वा ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ३ ॥ सरो मान समासाद्य हाटकानभितः प्रभुः । गन्धर्व रक्षितं देश मजयत् पाण्डवस्ततः ॥ ४ ॥ तत्र तित्तिरिकल्माषान् मण्डूकाख्यान् हयोत्तमान् । लेभे स कर मत्यन्तं गन्धर्व नगरात् तदा ॥ ५ ॥ उत्तरं हरिवर्ष तु स समासाद्य पाण्डवः । इयेष जेतुं तं देशं पाकशासन नन्दनः ॥ ६ ॥ द्वारपालाः समासाद्य हृष्टा वचन मब्रुवन् । मीयामहे त्वया वीर पर्याप्तो विजयस्तव ॥ ७ ॥ नचात्र किञ्चिज्जेतव्य मर्जुनात्र प्रदृश्यते । उत्तराः कुरवो ह्येते नात्र युद्धं प्रवर्तते ॥ ८ ॥ ततस्तान ब्रवीद् राजन्नर्जुनः प्रहसन्निव । युधिष्ठिराय यत्किञ्चित् करपण्यं प्रदीयताम् ॥ ९ ॥ ततो दिव्यानि वस्त्राणि दिव्यान्या भरणानि च । क्षौमाजिनानि दिव्यानि तस्य ते प्रददुःकरम् ॥ १० ॥ एवं स पुरुषव्याघ्रो विजित्य दिशमुत्तराम् । संग्रामान् सुबहून् कृत्वा क्षत्रियैर्दस्युभिस्तथा ॥ ११ ॥ स विनिर्जित्य राज्ञस्तान् करे च विनिवेश्य तु । धनान्यादाय सर्वेभ्यो रत्नानि विविधानि च ॥ १२ ॥ आजगामपुनर्वीरः शक्र प्रस्थं पुरोत्तमम् ॥ १३ ॥

अर्थ—वह शक्तिमान् वीर श्वेत पर्वत को लंघ कर द्रुम पुत्र से रक्षित किन्नरावास (किन्नरों के देश) में गया ॥ १ ॥ उसको जीत कर गुह्यकों से रक्षित हाटक नाम देश पर जा पहुंचा॥ २ ॥ उन सब को जीत कर मानस सर और ऋषिकुल्याओं के दर्शन किये ॥ ३ ॥ मानस सर के निकट हाटक देश के साथ लगते गन्धर्वों से रक्षित देश को जा जीता ॥४ ॥ गन्धर्व नगर से उसको तित्तिरिकल्माष और मण्डूक नामोंके घोड़े कर में मिले ॥ ५ ॥फिर

उत्तर हरिवर्ष पर पहुंच कर पाण्डवने उसको जीतने की इच्छा की ॥ ६ ॥ वहां द्वारपाल उसके निकट आ प्रसन्न हुए यह वचन बोले, हे वीर तुझे देखकर बड़े आनन्दित हुए हैं, आपने पर्याप्त विजय पाया है ॥ ७ ॥ यहां हे अर्जुन कुछ जीतने की वस्तु नहीं, यह उत्तर कुरु हैं, यहां युद्ध नहीं होता है ॥ ८ ॥ तब अर्जुनने हंस कर उनसे कहा, युधिष्ठिर को यत्किञ्चित कर दीजिये ॥९॥ तब उन्होंने दिव्य वस्त्र दिव्य भूषण दिव्य दुशाले और मृगछाल उसको करके तौर पर दिये ॥ १० ॥ इस प्रकार वह पुरुषवर उत्तर दिशा को जीत, क्षत्रियों और दस्युओं के साथ अनेक संग्राम करके, उन राजाओं को परास्त और अधीन करके, सब से धन और विविध रत्न लेकर, वह वीर फिर इन्द्रप्रस्थ में आया ॥

अ० १० (व० २९) भीम, नकुल और सहदेव का विजय

मूल—एतस्मिन्नेव काले तु भीमसेनोपि वीर्यवान् । धर्मराज मनुज्ञाप्य ययौ प्राचीं दिशंप्रति ॥ १ ॥ विजिग्ये भूमिपालांश्च मणिमत्प्रमुखान् बहून् । शकांश्च बर्बरांश्चैव व्यजयच्छद्म पूर्वकम् ॥२॥ स सर्वान् म्लेच्छ नृपतीन् सागरानूप वासिनः । कर माहारयामास रत्नानि विविधानि च ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थ मुपागम्य भीमो भीमपराक्रमः । निवेदयामास तदा धर्म राजाय तद्धनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—उसी समय वीर्यवान् भीमसेन भी धर्मराज की अनुमति से पूर्व दिशाकी ओर गया ॥ १ ॥ मणिमान् आदि बहुतसे राजाओं को उसने जीता, शक और बर्बरों को मायायुद्ध में जीता ॥ २ ॥ सागर के काछे में रहने वाले सारे म्लेच्छ राजाओं से वह भांति २ के रत्न कर लाया ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थ में आकर भीम

पराक्रम वाले भीमने वह सारा धन धर्मराज को निवेदन किया॥४॥

मूल—तथैव सहदेवोपि धर्मराजेन पूजितः। महत्या सेनया राजन् प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥ ५ ॥ सेकानपरसेकांश्च व्यजयत् सुमहाबलः। कांतारकांश्च समरे तथा प्राक्कोशलान् नृपान् ॥ ६ ॥ तांस्तानाटविकान् सर्वानजयत् पाण्डुनन्दनः। पुलिन्दांश्च रणे जित्वा ययौ दक्षिणतः पुनः ॥ ७ ॥ वशे चक्रे महाबाहुः सुराष्ट्राधिपतिं तदा। सागरद्वीप वासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान् ॥ ८ ॥ निषादान् पुरुषादांश्च करणप्रावरणानपि। ये च कालमुखा नाम नरराक्षसयोनयः ॥ ९ ॥ कृत्स्नं कोल्लगिरिं चैव सुरभी पट्टनं तथा। द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा ॥ १० ॥ पांड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोड्रु केरलैः। आन्ध्रांस्तालवनांश्चैव कालिंगानुष्ट्र कर्णिकान् ॥ ११ ॥ दूतैरेव वशं चक्रे करं चैनान दापयत ॥ १२ ॥ एवं निर्जित्य तरसा सान्त्वेन विजयेन च। करदान् पार्थिवान् कृत्वा प्रत्यागच्छ दरिंदमः १३ ॥

अर्थ—वैसे सहदेव भी धर्मराज से आदर पा बड़ी सेना ले कर दक्षिण दिशा को गया ॥ ५ ॥ उस महाबली ने सेक, अपर सेक, कान्तारक और प्राक्कोशल राजाओं को जीता ॥ ६ ॥ तिस पीछे जंगली पुलिन्दों को रण में जीत कर फिर आगे दक्षिण को ही गया ॥ ७ ॥ सुराष्ट्र के राजा को वश में करके सागर के द्वीपों में रहने वाले म्लेच्छ राजाओं को, निषाद, पुरुषाद, करण प्रावरण, और नर और राक्षसों से उत्पन्न हुई दोगली काल मुख जातियों को, सारे कोल्लगिरि, सुरभिपट्टन,ताम्रद्वीप, रामक पर्वत, पाण्ड्य, द्रविड़, उड़, केरल, आन्ध्र, ताल वन, कलिंग, उष्ट्रकर्णिक जातियों को दूतों द्वारा ही अधीन करके उनसे कर लिया॥८-१२॥

इस प्रकार साम और विग्रह से जीत कर राजाओं को अपना कर-दायी बना कर लौट आया ॥ १३ ॥

मूल—नकुलस्य तु वक्ष्यामि कर्माणि विजयं तथा । वासुदेव जितामाशां यथा सावजयत् प्रभुः ॥ १४ ॥ कृत्स्नं पञ्चनदं चैव तथैवामर पर्वतम् । उत्तर ज्योतिषं चैव तथा दिव्य कटं पुरम् ॥१५॥ रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपाः । तान् सर्वान् स वशे चक्रे शासनादेव पाण्डवः ॥ १६ ॥ तत्रस्थः प्रेषयामास वासुदेवाय भारत । स चास्य गतभी राजन् प्रतिजग्राह शासनम् ॥१७॥ ततः सागर कुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान् । पल्हवान् बर्वरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान् ॥ १८ ॥ ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान् । न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्र मार्गवित् ॥१९॥ करभाणां सहस्राणि कोषं तस्य महात्मनः । ऊहुर्दश महाराज कृच्छ्रादिव महाधनम् ॥ २० ॥

अर्थ—अब नकुल के कर्म और विजय कहूंगा । उसने वासु-देव से जीती हुई (पश्चिम) दिशा को जीता ॥ १४ ॥ सारा पञ्च नद देश, अमर पर्वत, उत्तर ज्योतिष और दिव्य कटपुर॥ १५ ॥ रामठ, हारहूण, और पश्चिम के जितने राजे हैं, उन सब को वश में किया ॥ १६ ॥ वहीं ठहर कर उसने वासुदेव के पास दूत भेजा, उसने हे राजन् ! इसके शासन को स्वीकार कर लिया ॥१७॥ तब सागर के द्वीपों में स्थित बड़े दारुण म्लेच्छों को पल्हव, बर्बर, किरात, यवन, शक राजाओं को वश में कर उनसे रत्न लेकर आश्चर्य मार्गों के जानने वाला वह कुरुश्रेष्ठ लौट आया ॥ १८-१९ ॥ उस महा पुरुष के बड़े धन वाले कोष को दस हज़ार हाथी उठा कर लाए ॥ २० ॥

अ०११(व० ३३) राजसूय का आरम्भ और राजाओं का निमन्त्रण

मूल-रक्षणाद् धर्मराजस्य सत्यस्य परिपालनात् । शत्रूणां क्षपणाच्चैव स्वकर्म निरताः प्रजाः ॥ १ ॥ बलीनां सम्यगादानाद् धर्मतश्चानुशासनात् । निकामवर्षी पर्जन्यः स्फीतो जनपदो भवत् ॥ २ ॥ सर्वारम्भाः सुप्रवृत्ता गोरक्षा कर्षणं वणिक् । विशेषात् सर्वमेवैतत् संजज्ञे राजकर्मणः ॥ ३ ॥ अवर्षं चातिवर्षं च व्याधिपावकमूर्छनम् । सर्वमेतत् तदा नासीद् धर्म नित्ये युधिष्ठिरे ॥ ४ ॥ धर्म्यैर्धनागमैस्तस्य ववृधे निचयो महान् ॥ ५ ॥ स्वकोष्ठस्य परीमाणं कोशस्य च महीपतिः । विज्ञाय राजा कौन्तेयो यज्ञायैव मनो दधे ॥ ६ ॥ उच्चावच मुपादाय धर्मराजाय माधवः । धनौघं पुरुषव्याघ्रो प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ ७ ॥ असूर्य मिव सूर्येण निवातमिव वायुना । कृष्णेन समुपेतेन जहृषे भारतं पुरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्मराजकी रक्षा से, सत्य के पालन और शत्रुओं के न रहने से प्रजा अपने २ कर्मों में लगगई ॥ १ ॥ यथायोग्य कर लेने से, धर्मानुसार शासन करने से, मेघ समय पर बरसते, देश उन्नत होने लगा ॥ २ ॥ सब काम धन्धे भली भांति चलने लगे, गौओं की रक्षा, खेती व्यापार विशेष करके राजा की सहायता से बहुत बढ़ गया ॥ ३ ॥ वृष्टि की कमी, अतिवृष्टि, रोग, आगकी वृद्धि, यह सब उस धर्मप्रधान युधिष्ठिर के समय में नहीं था ॥ ४ ॥ धर्म की कमाई से उसका भंडार बढ़ गया ॥ ५ ॥ राजा ने अपने धनधान्य का परिमाण जानकर मन में यज्ञ करने की ठानी ॥ ६ ॥ इधर भांति २ का धन समूह लेकर

पुरुषवर कृष्ण भी वहां आगए ॥ ७ ॥ अन्धेरे स्थान पर सूर्योदय से, वायु शून्य स्थान पर वायु के वहने से जैसे हर्ष होता है, इस प्रकार कृष्ण के समागम से उस सारे नगर का हर्ष वढ़ा॥ ८ ॥

मूल—कृष्ण उवाच—यजस्वाभीप्सितं यज्ञं मयि श्रेयस्यवस्थिते। नियुङ्क्ष्व त्वं च मां कृत्ये सर्वं कर्तास्मि ते वचः॥ ९ ॥ अनुज्ञातस्तु कृष्णेन पाण्डवो भ्रातृभिः सह। ईजितुं राजसूयेन साधनान्युप चक्रमे ॥ १० ॥ ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत्। वेदानिव महा भागान् साक्षान्मूर्ति मतो द्विजान् ॥ ११ ॥ स्वयं ब्रह्मत्व मकरोत् तस्य सत्यवतीसुतः। धनञ्जयाना मृषभः सुसामा सामगोऽभवत् ॥ १२ ॥ याज्ञवल्क्यो वभूवाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्यु सत्तमः। पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत् ॥ ३१ ॥ तत्र चक्रु रनुज्ञाताः शरणान्युत शिल्पिनः। गन्धवन्ति विशालानि वेश्मानीव दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—कृष्ण वोले—आप यथारुचि यज्ञ का आरम्भ कीजिये, मैं आपकी भलाई में सन्नद्ध हूं, मुझे किसी कार्य में नियुक्त करें, मैं आप की सव आज्ञा पालूंगा ॥ ९ ॥ कृष्ण की अनुमति पाय युधिष्ठिर ने भाइयों सहित राजसूय करने के लिये साधन इकट्ठ करने आरम्भ किये ॥ १० ॥ तव हे महाराज ! वेद व्यासजी ऐसे महाभाग ब्राह्मण ऋत्विजों को ले आए, जो मानों साक्षात् वेद मूर्ति थे ॥ ११ ॥ और व्यास स्वयं उस यज्ञ के ब्रह्मा वने, धनञ्जय गोत्री सुसामा उद्गाता वने॥ १२ ॥ ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य अध्वर्यु और वसु पुत्र पैल और धौम्य होता वने॥१३॥ शिल्पियों ने आज्ञा पाय वहां देव भवनों की भांति विशाल सुगन्धित गृह वनाए ॥ १४ ॥

मूल—तत आज्ञापयामास मन्त्रिणं पुरुषर्षभः । आमन्त्रणार्थे दूतांस्त्वं प्रेषयस्वाशुगान् द्रुतम् ॥ १५ ॥ उपश्रुत्य वचो राज्ञः स दूतान् प्राहिणोत् तदा ॥ १६ ॥ आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् भूमिपानथ । विशश्च मान्यान् शूद्रांश्च सर्वानानयतेति ॥ १७ ॥ समाज्ञप्तास्ततो दूताः पाण्डवेयस्य शासनात् । आमन्त्रयां बभूवुश्च आनयंश्चापरान् द्रुतम् ॥ १८ ॥ ततस्तु ते यथाकालं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । दीक्षयांचक्रिरे विप्रा राजसूयाय भारत ॥ १९ ॥ दीक्षितः सतु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः । जगाम यज्ञायतनं वृतो विप्रैः सहस्रशः ॥ २० ॥ भ्रातृभिर्ज्ञातिभिश्चैव सुहृद्भिः सचिवैः सह । क्षत्रियैश्च मनुष्येन्द्रै र्नानादेश समागतैः ॥ २१ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम् । नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च । भ्रातॄणां चैव सर्वेषां येऽनुरक्ता युधिष्ठिरे॥२३॥

अर्थ—तब उस पुरुषवर ने मन्त्री (अपने भाई सहदेव) को आज्ञा दी, कि बुलाने के लिये शीघ्रगामी दूतों को जल्दी भेजो ॥ १५ ॥ राजा की आज्ञा सुन उसने दूतों को भेज दिया॥१६॥ कि देश देशान्तरों में माननीय ब्राह्मणों राजाओं वैश्यों और शूद्रों को निमन्त्रण दो, और सब को ले आओ ॥ १७ ॥पाण्डव की आज्ञा पाय दूतोंने सबको निमन्त्रण दिया, और जल्दी उन को ले आए ॥ १८ ॥ तब हे भारत कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को राजसूय के लिये यथा समय ब्राह्मणों ने दीक्षा दी ॥ १९ ॥ धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर दीक्षित होकर सहस्रों ब्राह्मणों, भाइयों, ज्ञातिजनों, सुहृदों, मन्त्रियों, और नाना देशों के शूर वीरों और राजाओं के साथ यज्ञ गृह में गए ॥ २०–२१ ॥ तब पुरुषवर

राजा युधिष्ठिर ने भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और अपने प्यारे सारे भाइयों के बुलाने के लिये नकुल को हस्तिनापुर भेजा ॥ २२—२३ ॥

अ० १२ (व० ३४) राजाओं का सत्कारादि

मूल—सत्कृत्यामन्त्रितास्तेन आचार्य प्रमुखास्ततः । प्रययुः प्रीतमनसो यज्ञं ब्रह्मपुरः सराः ॥ १ ॥ द्रष्टुकामाः सभांचैव धर्मराजं च पाण्डवम् । दिग्भ्यः सर्वे समापेतुः क्षत्रियास्तत्र भारत॥२॥ समुपादाय रत्नानि विविधानि महान्ति च । धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामतिः ॥ ३ ॥ सत्कृताश्च यथोद्दिष्टान् जग्मुरावसथान् नृप । कैलासशिखर प्रख्यान् मनो ज्ञान् द्रव्यभूषितान् ॥ ४ ॥ सर्वतः संवृतानुच्चैः प्राकारैः सुकृतैः सितैः । सुवर्णजालसंवीतान् मणि कुट्टिम भूषितान् ॥ ५ ॥ सुखारोहण सोपानान् महासनपरिच्छदान् । स्रग्दाम समवच्छन्नानुत्तमा गुरु गन्धिनः ॥ ६ ॥ हंसेन्दु वर्ण सदृशानायोजन सुदर्शनान् । असंबाधान् समद्वारान् युतानुच्चावचैर्गुणैः ॥ ७ ॥

अर्थ—सत्कार पूर्वक बुलाए द्रोणाचार्य आदि प्रसन्न चित्त हुए ब्राह्मणों को साथ लेकर यज्ञ में गए ॥ १ ॥ हे भारत युधिष्ठिर को और सभा को देखने की कामना वाले क्षत्रिय बड़े २ रत्न लेकर वहां सब दिशाओं मे आए, धृतराष्ट्र, भीष्म और महामति विदुर भी आए ॥ २—३ ॥ और सत्कार पाकर बतलाए डेरों में गए । जो कैलास की चोटी सरीखे, सुहावने, द्रव्यों से सजे हुए ॥ ४ ॥ उत्तम बने श्वेत ऊंचे प्राकारों से सब ओर से सुरक्षित, सुनहरी झरोकों से सजे हुए, मणियों के फ़र्श से

शोभायमान ॥ ५ ॥ सुख से चढ़ने योग्य सीढ़ियों वाले, बहुमूल्य आसनों और फर्शों वाले, मालाओं से ढके हुए, उत्तम अगर की गन्ध से युक्त ॥ ६ ॥ हंस और चन्द्र के वर्ण तुल्य, चारकोस से साफ २ दिखने वाले, बड़े खुले, एक समान द्वारों वाले, भांति २ की सामग्री से युक्त थे ॥ ७ ॥

मूल—पितामहं गुरुं चैव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः । अभिवाद्य ततो राजन्निदं वचन मब्रवीत् ॥ ८ ॥ भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिं दुर्योधन विविंशती । अस्मिन् यज्ञे भवन्तो मामनुगृह्णन्तु सर्वशः ॥९॥ इदं वः सुमहच्चैव यदिहास्ति धनं मम ॥ १० ॥ एवमुक्त्वा स तान् सर्वान् दीक्षितः पाण्डवाग्रजः । युयोज स यथायोग मधिकारेष्वनन्तरम् ॥ ११ ॥ भक्ष्य भोज्याधिकारेषु दुःशासन मयोजयत् । परिग्रहे ब्राह्मणाना मश्वत्थान मुक्तवान् ॥ १२ ॥ राज्ञां तु प्रति पूजार्थं संजयं संन्ययोजयत् । कृताकृत परिज्ञाने भीष्मद्रोणौ महामती ॥ १३ ॥ हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां चान्ववेक्षणे । दक्षिणानां चैव दाने कृपं राजा न्ययोजयत् ॥ १४ ॥ क्षत्ता व्ययकरस्त्वासीद् विदुरः सर्वधर्मवित् । दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः ॥१५॥+चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत् ॥१६॥

अर्थ—अनन्तर युधिष्ठिरने आगे जाकर भीष्म और गुरु (द्रोणाचार्य) को प्रणाम किया, और भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, दुर्योधन और विविंशति से यह बोले, इस यज्ञ में आप सब प्रकार से मुझे अनुगृहीत करें ॥ ८—९ ॥ यह बहुत बड़ा धन सब आपका ही, जो यहां मेरा है ॥ १० ॥ दीक्षित पाण्डव ने उनसे यह कह कर, पीछे सबको यथायोग्य अधिकारों पर नियुक्त किया ॥ ११ ॥ भक्ष्य भोज्य के अधिकार में दुःशासन को

नियुक्त किया, ब्राह्मणों के स्वीकार में अश्वत्थामा को आज्ञा दी ॥ १२॥राजाओं की पूजा के लिये सञ्जय को नियुक्त किया, कृताकृत के निरीक्षण में महामति भीष्म और द्रोण को नियुक्त किया ॥ १३ ॥ धन, सोने और रत्नों के निरीक्षण और दक्षिणाओं के देने में कृपाचार्य को नियुक्त किया ॥ १४ ॥ सब मर्यादाओं के जानकार विदुर व्ययकारी (खर्च करने वाले) बने, दुर्योधन सब से उपहार (भेंट) स्वीकार करने लगे । ब्राह्मणों के चरण धोने में कृष्ण स्वयं नियत हुए ॥ १६ ॥

मूल—षडग्निनाथ यज्ञेन सोऽयजद्दक्षिणावता । सर्वान् जनान् सर्वकामैः समृद्धैः समतर्पयत् ॥ १७ ॥अन्नवान् बहुभक्ष्यश्च भुक्तवज्जन संवृतः । रत्नोपहारसंपन्नो बभूव स समागमः॥ १८ ॥ इडाज्यहोमाहुति भिर्मन्त्रशिक्षाविशारदैः । तस्मिन् हि ततृपुर्देवास्तते यज्ञे महर्षिभिः ॥ १९ ॥ यथा देवास्तथा विप्रा दक्षिणान्न महाधनैः । ततृपुः सर्ववर्णाश्च तस्मिन् यज्ञे मुदान्विताः ॥ २० ॥

अर्थ—अब राजाने छः अग्नियों*वाले यज्ञ को पूरी दक्षिणा सहित किया, और सब लोगों को उत्तमोत्तम अभिलषित वस्तुओं से तृप्त किया ॥ १७ ॥ यह ऐसा मेला हुआ जिसमें बहुत अन्न बहुत भक्ष्य दिये गए, और रत्नोंके उपहार दिये गए॥१८॥ मन्त्रों की शिक्षा में निपुण महर्षियों से फैलाए उस यज्ञ में पुरोडाश और घी की आहुतियों से (वायु आदि) देवता तृप्त हुए ॥ १९ ॥ जैसे देवता वैसे ब्राह्मण भी दक्षिणा अन्न और महाधनों से तृप्त हुए और सारे वर्णों के लोग उस यज्ञ में हर्ष युक्त हुए तृप्त हुए ॥ २० ॥

---

* छः अग्नियें-आरम्भणीय,क्षत्र, धृति, व्युष्टि, द्विरात्र, दशपेय ।

अ०१३(व० ३६)कृष्ण की मुख्य पूजा और शिशुपाल का क्षोभ

मूल—ततोऽभिषेचनीयेऽन्हि ब्राह्मणा राजभिः सह । अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्कारार्हा महर्षयः ॥ १ ॥ ततो भीष्मोऽब्रवीद् राजन् धर्मराजं युधिष्ठिरम् । क्रियतामर्हणं राज्ञां यथार्हमिति भारत ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच—कस्मै भवान् मन्यतेऽर्घमेकस्मै कुरुनन्दन । उपनीयमानं युक्तं च तन्मेब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥ ततो भीष्मः शान्तनवो बुध्या निश्चित्य वीर्यवान् । वार्ष्णेयं मन्यते कृष्णं पूजनीयतमं भुवि ॥ ४ ॥ तस्मै भीष्माभ्यनुज्ञातः सहदेवः प्रतापवान् । उपजह्रेऽथ विधिवद् वार्ष्णेयायार्घ मुत्तमम् ॥ ५ ॥ प्रतिजग्राह तद् कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न च क्षमे ॥ ६ ॥ स उपालभ्य भीष्मं च धर्मराजं च संसदि । अथाक्षिपद् वासुदेवं चेदिराजो महाबलः ॥ ७ ॥

अर्थ—(यज्ञान्त में) अभिषेक वाले दिन सत्कार के योग्य महर्षि ब्राह्मण राजाओं के साथ अन्तर्वेदी में गए ॥ १ ॥ तब हे महाराज ! भीष्म धर्मराज युधिष्ठिर से बोले, हे भारत ! राजाओं का यथायोग्य पूजन कीजिये ॥ २ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे कुरुनन्दन पितामह ! कहिये ! आप किस एक पुरुषको सबसे प्रथम अर्घ दिया जाने के योग्य समझते हैं ॥ ३ ॥ तब शान्तनु पुत्र वीर्यवान् भीष्म बुद्धि से निश्चय कर वृष्णिवंशी कृष्ण को सारे भूमण्डल में पूज्यतम समझे ॥ ४ ॥ भीष्म की अनुज्ञा पाकर प्रतापी सहदेव ने विधि पूर्वक कृष्ण को प्रधान अर्घ (अग्र पूजा) दिया ॥ ५ ॥ कृष्ण ने शास्त्र दृष्ट मर्यादा से उसे स्वीकार किया, पर कृष्ण के उस आदर को शिशुपाल न सहसका ॥ ६ ॥ वह

महाबली चेदिराज भीष्म और युधिष्ठिर पर कटाक्ष कर कृष्ण पर इस प्रकार आक्षेप करने लगा ॥ ७ ॥

मूल-नायमर्हति वार्ष्णेयस्तिष्ठत्स्विह महात्मसु । महीपतिषु कौरव्य राजवत् पार्थिवार्हणाम् ॥ ८ ॥ बाला यूयं न जानीध्वं धर्मः सूक्ष्मोहि पाण्डवाः । अयं च स्मृत्यातिक्रान्तो ह्यापगेयोऽल्पदर्शनः ॥ ९ ॥ त्वादृशो धर्मयुक्तो हि कुर्वाणः प्रियकाम्यया । भवत्यभ्यधिकं भीष्म लोकेष्ववमतः सताम् ॥ १० ॥ कथं ह्यराजा दाशार्हो मध्ये सर्वमहीक्षिताम् । अर्हणा मर्हति तथा यथा युष्माभि रर्चितः ॥ ११ ॥ अथवा मन्यसे कृष्णं स्थविरं कुरुनन्दन । वसुदेवे स्थिते वृद्धे कथमर्हति तत्सुतः ॥ १२ ॥ आचार्यं मन्यसे कृष्ण मथवा कुरुनन्दन । द्रोणे तिष्ठति वार्ष्णेयं कस्मादर्चित वानसि ॥ १३ ॥ ऋत्विजं मन्यसे कृष्ण मथवा कुरुनन्दन । द्वैपायने स्थिते वृद्धे कथं कृष्णोऽर्चितस्त्वया ॥ १४ ॥ दुर्योधने च राजेन्द्रे स्थिते पुरुषसत्तमे। कृपे च भारताचार्ये कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥ १५ ॥ भीष्मके चैव दुर्धर्षे पाण्ड्ये च कृत लक्षणे । नृपे च रुक्मिणि श्रेष्ठ एकलव्ये तथैव च ॥ १६ ॥ शल्ये मद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः १७ नैवर्त्विङ्नैव चाचार्यो न राजा मधुसूदनः । अर्चितश्च कुरुश्रेष्ठ किमन्यत् प्रियकाम्यया ॥ १८ ॥ अथवाऽभ्यर्चनीयोऽयं युष्माकं मधुसूदनः । किं राजभिरिहानीतै रवमानाय भारत ॥ १९ ॥

अर्थ—हे कौरव ! बड़े २ भूपतियों के यहां स्थित होते हुए यह वृष्णिकुमार राजाओं की प्रधान पूजा पा नहीं सकता ॥ ८ ॥ तुम बाल हो, जानते नहीं, हे पाण्डवो ! धर्म सूक्ष्म है, और यह अल्पदर्शी भीष्म स्मृति खो चुका है ॥ ९ ॥ हे भीष्म ! आप जैसा

धर्मीपुरुष यदि प्रिय कामना से काम करे, तो वह लोक में भले पुरुषों से अधिक निन्दनीय होता है ॥ १० ॥ सब राजाओं में राजा गिनाजाने के अयोग्य दाशार्ह कैसे उस पूजा को पासकता है, जैसी तुमने उसकी की है ॥ ११ ॥ हे कुरुनन्दन ! कृष्ण को यदि वृद्ध मानते हो (वृद्ध मान कर उसकी पूजा की है,) तो वृद्ध वसुदेव के विद्यमान होते हुए उस का पुत्र क्यों कर पूजा के योग्य हुआ ॥ १२ ॥ कृष्ण को यदि आचार्य मानते हो, तो द्रोण की विद्यमानता में कैसे तुमने कृष्ण को पूजा है ॥ १३ ॥ कृष्ण को यदि ऋत्विज् मानते हो, तो वृद्ध व्यास की विद्यमानता में कैसे तुमने कृष्ण को पूजा है ॥ १४ ॥ पुरुषवर राजेन्द्र दुर्योधन, और भारतों के आचार्य कृप की विद्यमानता में कैसे तुमने कृष्ण को पूजा है ॥ १५ ॥ न दबने वाले भीष्मक, अच्छे लक्षणों वाले पाण्ड्य, राजा रुक्म, एकलव्य ॥ १६ ॥ तथा मद्र-राज शल्य की विद्यमानता में कैसे तुमने कृष्ण को पूजा है ।१७। कृष्ण न ऋत्विज्, न आचार्य, न राजा है, तौ भी तुमने उसे पूजा है, तब हे कुरुश्रेष्ठ अपनी इच्छा पर चलने के सिवाय और क्या कहाजाय ॥१८॥ और यदि यह कृष्ण ही आप का पूज-नीय था, तब अपमान के लिये इन राजाओं को यहां लाने का क्या काम था ॥ १९ ॥

मूल—वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः । प्रय-च्छामः करान् सर्वे न लोभान्न च सान्त्वनात् ॥ २० ॥ अस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षितः । करानस्मै प्रयच्छामः सोऽय मस्मान्न मन्यते ॥ २१ ॥ अथवा कृपणैरेतामुपनीतां जनार्दन । पूजामनर्हः कस्मात् त्वमभ्यनुज्ञातवानसि ॥ २२ ॥ क्लीबे दार-

क्रिया यादृगन्धे वा रूप दर्शनम् । अराज्ञो राजवत् पूजा तथा ते मधुसूदन ॥ २३ ॥ दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः । वासुदेवो ऽप्ययं दृष्टः सर्वमेतद् यथातथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसा नहीं, कि हमने युधिष्ठिर के भय से वा किसी लालचसे, वा मेलके लिये युधिष्ठिर को कर दिया है ॥ २० ॥ किन्तु यह धर्म में प्रवृत्त होकर साम्राज्य की कामना कर रहे हैं, इस लिये हमने इसे कर दिये हैं, पर इन्होंने हमारा अनादर किया है॥२१॥अथवा इन्होंने यदि कृपण बन कर पूजा करही दी थी, तौ भी हे कृष्ण तुमने योग्य न होकर भी कैसे उसको स्वीकार कर लिया ॥ २२ ॥ नपुंसक को विवाह और अन्धे को रूप देखना जैसे है, वैसे हे कृष्ण तुझ अराजा की यह राजवत् पूजा है ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिर भी देख लिया, और भीष्म भी जैसा है, देख लिया, और कृष्ण भी देख लिया, यह सब ठीक २ देख लिया२४

अ० १४ (व० ३८) भीष्म शिशुपाल का विवाद

मूल—भीष्म उवाच—क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणे रणकृतां-वरः । यो मुञ्चति वशे कृत्वा गुरुर्भवति तस्य सः ॥ १ ॥ अस्यां हि समितौ राज्ञा मेकमप्यजितं युधि । न पश्यामि महीपालं सात्वती-पुत्र तेजसा ॥ २ ॥ पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ । वेदवेदांग विज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा ॥ ३ ॥ दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा । संनतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नि-यताच्युते ॥ ४ ॥ तमिमं लोकसंपन्न माचार्यं पितरं गुरुम् । अर्घ्य मर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तु मर्हथ ॥ ५ ॥ यो हि धर्मं विचिनुयात् दु-त्कृष्टं मतिमान्नरः । स वै पश्येद् यथा धर्मं न तथा चेदिराडयम्

॥ ६ ॥ अथैनां दुष्कृतां पूजां शिशुपालो व्यवस्यति । दुष्कृतायां यथान्याय्यं तथाऽयं कर्तुमर्हति ॥ ७ ॥

अर्थ—भीष्म बोले—लड़ने वालों में श्रेष्ठ क्षत्रिय जो रण में क्षत्रिय को जीतकर वश में कर छोड़ देता है, वह उस का गुरु होता है ॥ १ ॥ इस सभा में मैं एक भी राजा को नहीं देखता हूं, जो कृष्ण के तेजसे न जीता गया हो ॥ २ ॥ कृष्ण की पूज्यता में दो हेतु पक्के हैं, एक वेद वेदांग का विज्ञान, दूसरा बल अधिक ॥ ३ ॥ दान, दक्षता, शास्त्र ज्ञान, शूरता, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, नम्रता, शोभा, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि कृष्ण में सदा बने रहते हैं ॥ ४ ॥ सो लोक में प्रतिष्ठित, आचार्य, पितर, गुरु, अर्घके योग्य, पूजार्ह की पूजा तुम सब को स्वीकार करनी चाहिये ॥ ५ ॥ जो बुद्धिमान् नर उत्तम धर्म का अन्वेषण करता रहे, वह जैसे धर्म को जानसकता है, वैसे यह चादिराज नहीं (जान सकता) ॥ ६ ॥ और यदि यह इस पूजा को अन्याय्य समझता है, तो अन्याय्य में जैसे न्याय्य समझता है, वैसे करे ॥ ७ ॥

मूल—शिशुपाल उवाच—विभीषिकाभिर्बह्वीभि र्भीषयन् सर्व पार्थिवान् । न व्यपत्रपसे कस्माद् वृद्धः सन् कुलपांसनः ॥ ८ ॥ नावि नौरिव संबद्धा यथाऽन्धो वाऽन्ध मन्वियात् । तथा भूता हि कौरव्या येषां भीष्म त्वमग्रणीः ॥ ९ ॥ यत्र कुत्सा प्रयोक्तव्या भीष्म बालेतरैर्नरैः । तमिमं ज्ञान वृद्धः सन् गोपं संस्तोतु मिच्छसि ॥ १० ॥ यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बलीयसः । स चानेन हतः कंस इत्येतन्न महाद्भुतम् ॥ ११ ॥ स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद् ब्राह्मणेषु च । यस्य चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात प्रतिश्रयः

॥ १२ ॥ स मे बहुमतो राजा जरासन्धो महाबलः । योऽनेन युद्धं नेयेष दासोऽयमिति संयुगे ॥ १३ ॥

अर्थ—शिशुपाल बोला—हे भीष्म ! बहुविध विभीषिका दिखला कर सब भूपतियों को डराते हुए तुम्हें लज्जा क्यों कर नहीं आती, तुम वृद्ध होकर कुल कलंक हो॥८॥ हे भीष्म ! जिनके तुम मुखिया हो, उनकी वैसी दशा है, जैसे नाव नाव में बन्धी हो, वा अन्धा अन्धे के पीछे चले ॥ ९ ॥ हे भीष्म समझ वालों को जिसका अनादर करना चाहिये, तुम ज्ञान वृद्ध होकर उसी ग्वाले की स्तुति करते हो ॥ १० ॥ हे धर्मज्ञ ! जिस बलवान् का इसने अन्न खाया, उसी कंस को इसने मार डाला, यह इसकी महिमा की बात नहीं ॥ ११ ॥ स्त्रियों पर, गौओं पर, ब्राह्मणों पर, जिसका अन्न खाया हो, उस पर, और जिसका सहारा पाया हो उस पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिये ॥ १२ ॥ मैं उस राजा जरासन्ध को बड़ा माननीय समझता हूं, जो इसको दास जानकर इसके साथ युद्ध के लिये तय्यार न हुआ ॥ १३ ॥

मूल—एष तिष्ठति गोविन्दः पूजितोऽस्माभि रच्युतः।यस्य वा त्वरते बुद्धिर्मरणाय स माधवम् ॥ १४ ॥ कृष्ण माह्वयतामद्य युद्धे चक्र गदाधरम् ॥ १५ ॥ ततः श्रुत्वैव भीष्मस्य चेदिराडुरुविक्रमः । युयुत्सुर्वासुदेवेन वासुदेव मुवाच ह ॥ १६ ॥ आह्वये त्वां रणं गच्छ मया सार्द्धं जनार्दन । यावदद्य निहन्मित्वां सहितं सर्व पाण्डवैः ॥ १७ ॥ नृपतीन् समतिक्रम्य यैरराजा त्वमर्चितः ॥ १८ ॥

अर्थ—हमसे पूजा हुआ अच्युत कृष्ण, यहां खड़ा है, सो मरने के लिये जिसकी बुद्धि दौड़ती है, वह चक्र गदन्धारी कृष्ण

को युद्ध में ललकारे ॥ १४–१५ ॥ भीष्म का वचन सुनते ही विक्रमी चेदिनाथ कृष्ण के साथ लड़ने की इच्छा से कृष्ण से बोला ॥ १६ ॥ हे जनार्दन तुमको ललकारता हूं, आओ, मेरे साथ रण जमाओ, ताकि आज तुमको पाण्डवों समेत मारगिराऊं, ॥ १७ ॥ जिन्होंने भूपतियों का अनादर करके तुझ अराजा की पूजा की है ॥ १८ ॥

मूल—एवमुक्ते ततः कृष्णो मृदुपूर्वमिदं वचः । उवाच पार्थिवान् सर्वान् ससमक्षं च वीर्यवान् ॥ २० ॥ एषनः शत्रुरत्यन्तं पार्थिवाः सात्वतीसुतः । सात्वतानां नृशंसात्मा नहितोऽनपकारिणाम् ॥ २१ ॥ प्राग्ज्योतिषपुरं यातानस्मान् ज्ञात्वा नृशंसकृत् । अदहद् द्वारकामेष स्वस्रीयः सन्नराधिपाः ॥ २२ ॥ क्रीडतो भोजराजस्य एष रैवतके गिरौ । हत्वा बध्वा च तान् सर्वानुपायात् स्वपुरं पुरा ॥ २३ ॥ अश्वमेधे हयं मेध्यमुत्सृष्टं रक्षिभिर्वृतम् । पितुर्मे यज्ञविघ्नार्थं महरत् पाप निश्चयः ॥ २४ ॥ सौवीरान् प्रतियातां च बभ्रोरेष तपस्विनः । भार्यामभ्यहरन् मोहादकामां तामितो गताम् ॥ २५ ॥ एष माया प्रतिच्छन्नः करूषार्थे तपस्विनीम् । जहार भद्रां वैशालीं मातुलस्य नृशंसकृत् ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसा कहने पर वीर्यवान् कृष्ण सब राजाओं के सामने खड़े हो विनय पूर्वक यह वचन बोले॥ २० ॥ हे राजाओ! यह यादवी पुत्र हमारा अत्यन्त शत्रु है, इस दुर्जन का यादव कुछ विगाड़ते नहीं, पर यह उनका बिगाड़ता ही रहता है ॥ २१ ॥ हमको प्राग्ज्योतिषपुर गए जान इस दुर्जन ने द्वारका में आग लगादी, और है (पिताजी का) भानजा ॥ २२ ॥ और भोजराज रैवतक पर्वत पर क्रीड़ा कर रहे थे, तो यह दुरात्मा उन सब

को मार और बांध कर अपने पुर को चलागया ॥ २३ ॥ मेरे पिता के यज्ञ में विघ्न डालने के लिये इस पापात्माने अश्वमेध में छोड़े हुए रखवारों से युक्त घोड़े को चुराया ॥ २४ ॥ यहां से सौवीर देशों को जाती हुई वभ्रु (नामी यादव) की पत्नी को इस दुरात्मा ने मोह से हर लिया ॥ २५ ॥ फिर अपने मामा विशालापुरी के राजा की कन्या भद्रा—जो करूप देश के अधिपति के लिये थी—करूष का वेष धर इसने हरी ॥ २६ ॥

मूल—शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमितं मया । अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने ॥ २७ ॥ दत्तं मया याचितं च तद्वै पूर्णं हि पार्थिवाः । अधुना वधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम् ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात् । व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः ॥ २९ ॥ ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवंस्तत्र किंचन । हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नमर्षिताः ॥ ३० ॥ अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोध मूर्छिताः। रहश्च केचिद् वार्ष्णेयं प्रशशंसुर्नराधिपाः॥ ३१ ॥ प्रहृष्टाः केशवं जग्मुः संस्तुवन्तो महर्षयः । पाण्डवस्त्वब्रवीद् भ्रातॄन् संस्कारेण महीपतिम् ॥ ३२ ॥ दमघोषात्मजं वीरं संस्कारयत माचिरम्। तथा च कृतवन्तस्ते भ्रातुर्वैशासनं तदा ॥ ३४ ॥ चेदीनामाधि पत्ये च पुत्र मस्य महीपतेः । अभ्यषिञ्चत ततः पार्थः सहतैर्वसुधाधिपैः ३५

अर्थ—हे भूपतियो ! जिस हेतु मैं यह सब क्षमा करता रहा, वह सुनिये, इसकी माताने मुझसे वर मांगा था, कि इसके सौ अपराध मैं क्षमा करूंगा ॥ २७ ॥ मैंने उस का मांगा वर दे दिया था, हे राजाओ ! अब वह पूर्ण होचुका, अब तुम्हारे देखते इसको मारूंगा ॥ २८ ॥ यह कह कर क्रुद्ध हुए शत्रुनाशी

यदुश्रेष्ठ ने उसी क्षण चक्र से उसका सिर काट डाला ॥ २९ ॥
कई राजे तो वहां कुछ नहीं बोले, कई क्रोधके मारे हाथसे हाथ
मलने लगे ॥३०॥ कई क्रोध से पागल हुए होठों से दांत काटने
लगे, कई राजे परस्पर कृष्ण की प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥
महर्षि प्रसन्न हुए प्रशंसा करते हुए कृष्ण के पास आए, युधि-
ष्ठिर ने भाइयों को आज्ञादी, कि दमघोष के पुत्र वीर राजा का
अब जल्दी संस्कार करो, देर न लगाओ, तब उन्होंने भाई की
आज्ञा पाय वैसा किया ॥ ३३-३४ ॥ पीछे युधिष्ठिर ने सब
राजाओं के साथ मिलकर इस राजा के पुत्र को चेदियोंके राज्य
में अभिषिक्त किया ॥ ३५ ॥

अ०१५ (व०४५) दुर्योधन का परिताप

मूल—ततस्त्ववभृथस्नातं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । समस्तं
पार्थिवं क्षत्र मुपागम्येद मब्रवीत् ॥ १ ॥ दिष्ट्या वर्धसि धर्मज्ञ
साम्राज्यं प्राप्त वानसि । कर्मणैतेन राजेन्द्र धर्मश्च सुमहान् कृतः
॥ २ ॥ आपृच्छामो नरव्याघ्र सर्वकामैः सुपूजिताः । स्वराष्ट्राणि
गमिष्याम स्तदनुज्ञातु मर्हसि ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं राज्ञां धर्म-
राजो युधिष्ठिरः । यथार्हं पूज्य नृपतीन् भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह
॥ ४ ॥ तेऽनुव्रजत भद्रं वो विषयान्तं नृपोत्तमान् ॥ ५ ॥ गतेषु
पार्थिवेन्द्रेषु सर्वेषु ब्राह्मणेषु च । प्रययौ पुण्डरीकाक्षस्ततो द्वार-
वतीं पुरीम् ॥ ६ ॥ एको दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः
तस्यां सभायां दिव्यायां मूषतु तौ नरर्षभौ ॥ ७ ॥

अर्थ—तब अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करचुके धर्मात्मा
युधिष्ठिर के पास आ, सारे क्षत्रिय भूपति यह वचन बोले॥ १॥

हे धर्मज्ञ ! बधाई हो, तुम सम्राट् बने हो, और हे राजेन्द्र ! इस कर्म से बहुत बड़ा धर्म पूर्ण किया है ॥ २ ॥ अब हम आज्ञा मांगते हैं, हे नरवर आपने सब प्रकार से हमारा पूरा आदर किया है, अब हम अपने देशों को जाएंगे. यह अनुज्ञा दीजिये ॥ ३ ॥ राजाओं का वचन सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर यथायोग्य राजाओं की पूजा कर भाइयों से बोले ॥ ४ ॥ अपने देश की सीमा तक राजाओं को विदा करने जाओ ॥ ५ ॥ सब राजेन्द्रों और ब्राह्मणों के चले जाने के पीछे कृष्ण द्वारका को गए॥ ६ ॥ किन्तु दुर्योधन और शकुनि यह दोनों नरवर उस दिव्य सभा में पीछे रहे ॥ ७ ॥

मूल—वसन् दुर्योधनस्तस्यां सभायां पुरुषर्षभ । शनैर्ददर्शं तां सर्वां सभां शकुनिना सह॥ ८ ॥ तस्यां दिव्यानभिप्रायान् ददर्श कुरुनन्दनः । न दृष्टपूर्वा ये तेन नगरे नागसाह्वये ॥ ९ ॥ स कदाचित् सभामध्ये धार्तराष्ट्रो महीपतिः । स्फाटिकं स्थलमासाद्य जलमित्यभिशंकया ॥ १० ॥ स्ववस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान् बुद्धिं मोहितः । ततः स्थले निपतितो दुर्मना व्रीडितो नृपः ॥ ११ ॥ ततः स्फाटिकतोयां वै स्फाटिकाम्बुज शोभिताम् । वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले ॥ १२ ॥ जले निपतितं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । जहास जहसुश्चैव किं कराश्च सुयोधनम्॥१३॥ नामर्षयत् ततस्तेषामवहासममर्षणः ॥ १४ ॥ पुनर्वसन मुत्क्षिप्य प्रतरिष्यन्निव स्थलम्। आरुरोह ततः सर्वे जहसुश्च पुनर्जनाः॥१५॥ द्वारं तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेक्ष्य भूमिपः । प्रविशन्न हतो मूर्ध्नि व्याघूर्णित इव स्थितः ॥ १६ ॥ तादृशं च परं द्वारं स्फाटिकोरुकपाटकम् । विघट्टयन् कराभ्यां तु निष्क्रम्याग्रे पपात ह

॥ १७ ॥ द्वारं तु वितताकारं समापेदे पुनश्चसः । तद्वृत्तं चेति मन्वानो द्वारस्थाना दुपारमत ॥ १८ ॥ एवं मलंभान् विविधान् प्राप्य तत्र विशांपते । अप्रहृष्टेन मनसा जगाम गज साह्वयम्॥१९।

अर्थ—हे पुरुषवर! उस सभा में रहते हुए दुर्योधन ने शकुनि के साथ धीरे २ उस सभा के सारे भागों को देखा ॥ ८ ॥ दुर्योधन ने उस सभा में दिव्य कार्य देखे, जो पहले हस्तिनापुर में नहीं देखे थे ॥ ९ ॥ एक बार राजा दुर्योधन ने सभा के मध्य में एक बिल्लौरी स्थल को जल समझ ॥ १० ॥ बुद्धि के मोह से अपने वस्त्र उतार लिये, तब स्थलपर गिर पड़ा, लज्जित होगया और मन बुरा होगया ॥ ११ ॥ फिर एक बार बिल्लौर के से जल वाली और बिल्लौर के से कमलों से शोभित बावड़ी को स्थल जान वस्त्रों समेत जल में गिर पड़ा ॥१२॥ उसको जल में गिरा देख महाबली भीमसेन हंस पड़ा और नौकर भी हंसे ॥ १३ ॥ उनके इस उपहास को न सहारने वाला दुर्योधन नहीं सह सका॥१४॥फिर एक बार वस्त्र उतार पार होने लगा स्थल पर जा चढ़ा, तब भी सब लोग हंस पड़े ॥ १५ ॥ एक बन्द बिल्लौरी द्वार को देख खुला जान कर प्रविष्ट होने लगे के माथे पर चोट लगी और सिर चक्रा गया ॥ १६ ॥ वैसे एक और बड़े २ बिल्लौरी किवाड़ों वाले (खुले) द्वार को (बन्द जान) हाथों से खोलना चाहता हुआ आगे जा गिरा ॥ १७ ॥ फिर एक बार एक खुले द्वार के पास जा, उसको बन्द जान द्वारस्थान से लौट आया* ॥ १८ ॥

---

* यह धोखे उसे एक ही दिन नहीं हुए, किन्तु कभी कोई कभी कोई होता रहा, अतएव ८ में शनै=धीरे२ और १० में कदाचित्= एक बार कहा है ।

इस प्रकार हे महाराज भांति २ के धोखे खाकर वह अप्रसन्न मन से हस्तिनापुर को लौटा ॥ १९ ॥

मूल—अनेकाग्रं तु तं दृष्ट्वा शकुनिः प्रत्यभाषत । दुर्योधन कुतोमूलं निःश्वसन्निव गच्छसि ॥ २० ॥ दुर्योधन उवाच-दृष्ट्वे मां पृथिवीं कृत्स्नां युधिष्ठिरवशानुगाम् । जितामस्त्र प्रतापेन श्वेताश्वस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ तं च यज्ञं तथा भूतं दृष्ट्वा पार्थस्य मातुल । अमर्षेण तु संपूर्णो दह्यमानो दिवानिशम् ॥ २२ ॥ शुचि शुक्रागमे काले शुष्ये तोयमिवाल्पकम् ॥ २३ ॥ पश्य सात्वतमुख्येन शिशुपालो निपातितः । न च तत्र पुमानासीत् कश्चित् तस्य पदानुगः ॥ २४ ॥ दह्यमाना हि राजानः पाण्डवोत्थेन वह्निना। क्षान्तवन्तोऽपराधं ते कोहि तत् क्षन्तु मर्हति ॥ २५ ॥ सोऽहं श्रियं च तां दृष्ट्वा सभां तां च तथाविधाम् । रक्षिभिश्चावहासं तं परितप्ये यथाऽग्निना ॥ २६ ॥

अर्थ—उसको दुर्मन देख शकुनि बोला, हे दुर्योधन! किस कारण तुम लंबे सांस लेते जा रहे हो ॥ २० ॥ दुर्योधन बोला—मामा जी महात्मा अर्जुन के अस्त्र प्रतापसे जीती गई इस सारी पृथिवी को युधिष्ठिर के हाथ लगी देख, और युधिष्ठिर के उस वैसे यज्ञ को देख कर, दुःख से भरा हुआ दिन रात जलता हुआ जेठ आसाढ़ के समय थोड़े जल वाले सर की भांति सूख रहा हूं ॥ २२–२३ ॥ देखिये जब कृष्ण ने शिशुपाल को मारा, तब वहां कोई भी ऐसा पुरुष न निकला, जो उसका साथ देता॥२४॥ पाण्डवों से उठी आगसे दग्ध हुए राजों ने उस अपराध को सह लिया, क्या कोई उसे सह सकता था ॥ २५ ॥ उस श्री को, और वैसी बनी उस सभा को और रखवारों की उस हंसी को

सोच कर मानों अग्नि मे मैं तप रहा हूं ॥ २६ ॥

अ० १६ (व० ४८—४९) दुर्योधन का जुए का विचार

मूल—शकुनिरुवाच—धनञ्जयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः ॥ १ ॥ नैते युधि पराजेतुं शक्या युद्ध दुर्मदाः । अहं तु तद्विजानामि विजेतुं येन शक्यते ॥ २ ॥ द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम् । समाहूतश्च राजेन्द्रो न शक्ष्यति निवर्तितुम् ॥ ३ ॥ देवने कुशलश्चाहं न मेऽस्ति सदृशो भुवि ॥ ४ ॥ तस्मात्त कुशलो राजन्नादास्येऽहम संशयम् । राज्यं श्रियं च तां दीप्तां त्वदर्थं पुरुषर्षभ ॥५॥ इदं तु सर्वं त्वं राज्ञे दुर्योधन निवेदय । अनुज्ञातस्तु मे पित्रा विजेष्ये तान् न संशयः ॥ ६ ॥

अर्थ—शकुनि बोला—अर्जुन, कृष्ण, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, और अपने पुत्रों समेत द्रुपद, इन युद्धाभिमानियों को युद्ध में हराया नहीं जासकता, मैं वह बात जानता हूं, जिससे उनको जीत सकते हैं ॥ १—२ ॥ युधिष्ठिर जुए का प्यारा है, पर वह खेलना नहीं जानता, और बुलाने पर वह पीछे भी नहीं हटसकेगा ॥ ३ ॥ और मैं खेलने में निपुण हूं, मेरे बराबर पृथिवी भर में कोई नहीं ॥ ४ ॥ सो हे राजन् ! मैं पासों की चतुराई से निःसंदेह उनके राज्य और उस चमकती हुई श्री को तुम्हारे लिये छीन सकूंगा ॥ ५ ॥ सो हे दुर्योधन यह सब तुम राजा (धृतराष्ट्र] से निवेदन करो, आपके पिता से अनुज्ञा पाय उनको जीतूंगा, संशय नहीं ॥ ६ ॥

मूल-दुर्योधन उवाच—त्वमेव कुरुमुख्याय धृतराष्ट्राय सौबल।

निवेदय यथान्यायं नाहं शक्ष्ये निवेदितुम् ॥ ७ ॥ दुर्योधनं वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रं जनाधिपम् । उपगम्य महाप्राज्ञं शकुनिर्वाक्य मब्रवीत् ॥ ८ ॥ दुर्योधनो महाराज विवर्णः हरिणः कृशः । दीनश्चिन्तापरश्चैव तं विद्धि मनुजाधिप ॥ ९ ॥ नवै परीक्षसे सम्यगसह्यं शत्रु संभवम् । ज्येष्ठ पुत्रस्य हृच्छोकं किमर्थं नावबुध्यसे ॥ १० ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला—हे सुबल पुत्र! तुम कुरुवर धृतराष्ट्र को यथायोग्य निवेदन करो, मैं कर नहीं सकूंगा ॥ ७ ॥ दुर्योधन का वचन सुन, शकुनि महाप्राज्ञ नरेश धृतराष्ट्र के पास जा वाक्य बोला ॥ ८ ॥ हे महाराज ! दुर्योधन मलिन, पीला, दुबला होगया है, दीन और चिन्ताग्रस्त रहता है, आप को ध्यान देना चाहिये ॥ ९ ॥ शत्रु से उत्पन्न हुआ, बड़े पुत्र को यह असह्य हृदय शोक कैसे नहीं समझते हो ॥ १० ॥

मूल-धृतराष्ट्र उवाच—दुर्योधन कुतोमूलं भृशमार्तोऽसि पुत्रक । अयं त्वां शकुनिःप्राह विवर्णं हरिणं कृशम् ११ ॥ ऐश्वर्यं हि महत् पुत्र त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । भ्रातरः सुहृदश्चैव नाचरन्ति तवाप्रियम् ॥ १२ ॥

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—बेटा दुर्योधन क्यों इतने दुःखी हो, यह शकुनि तुम्हें मलिन, पीला, दुबला बतलाता है ॥ ११ ॥ बेटा इतना बड़ा ऐश्वर्य सब तेरे अधीन है, भाई और सुहृद् तेरा कभी अप्रिय नहीं करते ॥ १२ ॥

मूल—दुर्योधन उवाच—न मां प्रीणाति मद्भुक्तं श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे । अतिज्वलन्तीं कौन्तेये विवर्ण करणीं मम ॥ १३ ॥ सपत्नानृध्यतोऽऽत्मानं हीयमानं निशाम्य च । तस्मादहं विवर्णश्च दीनश्च हरिणः कृशः ॥ १४ ॥ कदलीमृगमोकानि कृष्णश्यामा-

रुणानि चाकाम्बोजः प्राहिणोत् तस्मै परार्घ्यानपि कंबलान् ॥१५॥ पृथग्विधानि रत्नानि पार्थिवाः पृथिवीपते । आहरन् क्रतुमुख्येऽस्मिन् कुन्तीपुत्राय भूरिशः ॥ १६ ॥ न क्वचिद्धि मया तादृग्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः । यादृग् धनागमो यज्ञे पाण्डुपुत्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥ शंखमग्र्य मादाय वासुदेवोऽभिषिक्तवान् । दृष्ट्वा च मम तत्सर्वं ज्वररूपं मिवा भवत् ॥ १८ ॥ शान्तिं न परिगच्छामि दह्यमानेन चेतसा ॥ १९ ॥ अथ मुत्सहते राजन् श्रिय माहर्तु मक्षवित् । द्यूतेन पाण्डुपुत्रस्य तदनुज्ञातु मर्हसि ॥ २० ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला—हे महाराज ! मैं जो कुछ खाता हूं, युधिष्ठिर की अति चमकती राज्य श्री को देख कर मेरे तन पेट नहीं लगता है, इसी ने मेरा रंग उड़ा दिया है ॥ १३ ॥ शत्रु की वृद्धि और अपनी हीनता देख कर, मलिन, दीन, पीला, दुबला होगया हूं ॥ १४ ॥ कंबोज के राजा ने कदलीमृगों के काले लाल खाल और बहु मूल्य कंबल उसके लिये भेजे ॥ १५ ॥ इस उत्तम यज्ञ में राजे लोग भांति २ के रत्न कुन्ती पुत्रके पास लाए ॥ १६ ॥ जैसा धन का आगम पाण्डु पुत्र के यज्ञ में हुआ है, वैसा मैंने कभी न देखा, न सुना है ॥ १७ ॥ उत्तम शंख लेकर कृष्ण ने उसका अभिषेक किया, यह सब देख कर मुझे ज्वररूपसा होगया ॥ १८ ॥ मेरा चित्त जल रहा है, मैं शान्ति नहीं पाता हूं ॥ १९ ॥ हे राजन् ! चौसर के जानने वाला यह (मामाजी) पाण्डु पुत्र की राज्य श्री को खींचने का हौसला रखते हैं, आप इसको अनुज्ञा देने योग्य हैं ॥ २० ॥

मूल—धृतराष्ट्र उवाच—क्षत्ता मन्त्री महाप्राज्ञः स्थितो यस्यास्मि शासने । तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम्॥२१॥

दुर्योधन उवाच—निवर्तयिष्यति त्वासौ यदि क्षत्ता समेष्यति। निवृत्ते त्वयि राजेन्द्र मरिष्येऽहम् असंशयम् ॥ २२ ॥ स त्वं मयि मृते राजन् विदुरेण सुखी भव। भोक्ष्यसे पृथिवीं कृत्स्नां किं मया त्वं करिष्यसि ॥ २३ ॥ आर्तवाक्यं तु तत् तस्य प्रणयोक्तं निशम्य सः। धृतराष्ट्रोऽब्रवीत् प्रेष्यान् दुर्योधनमते स्थितः ॥ २४ ॥ स्थूणा सहस्रैर्बृहतीं शतद्वारां सभां मम। मनोरमां दर्शनीयामाशु कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥ २५ ॥ ततः संस्तीर्य रत्नैस्तां तक्ष्ण आनाय्य सर्वशः। सुकृतां सुप्रवेशां च निवेदय मे शनैः ॥ २६ ॥ दुर्योधनस्य शान्त्यर्थमिति निश्चित्य भूमिपः। धृतराष्ट्रो महाराज प्राहिणोद् विदुराय वै ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा विदुरो धीमान् कलिद्वारमुपस्थितम्। विनाशमुख मुत्पन्नं धृतराष्ट्र मुपाद्रवत् ॥ २८ ॥ सोऽभिगम्य महात्मानं भ्राता भ्रातर मग्रजम्। मूर्ध्ना प्रणम्य चरणाविदं वचन मब्रवीत् २९

अर्थ—धृतराष्ट्र बोले—महामति विदुर मेरा मन्त्री है, जिस के मैं शासन में रहता हूं, उससे मिलकर इस कार्य का निश्चय समझूंगा ॥ २१ ॥ दुर्योधन बोला—यदि विदुर आप से मिलेगा, तो वह आप को हटाएगा, और हे राजेन्द्र आप यदि हटजाएंगे, तो निश्चय जानिये, कि मैं जीता नहीं रहूंगा ॥ २२ ॥ सो हे राजन्! मेरे मरने पर आप विदुर से सुखी हों, आप उसके साथ सारी पृथिवी को भोगेंगे, मुझसे आप क्या करेंगे ॥ २३ ॥ प्रेम से कहे दुर्योधन के इस आर्तवाक्य को सुन कर, उस के मत में स्थित हुआ धृतराष्ट्र नौकरों से बोला ॥ २४ ॥ कि शिल्पीजन मेरे लिये हजार खंभों वाली सौ द्वार वाली एक बड़ी मनोरम दर्शनीय सभा बनावें ॥ २५ ॥ सब स्थानों से कारीगर मंगवा कर उसको रत्न जटित करके सुखसे प्रवेश करने योग्य बनवाय मुझसे शीघ्र कहो २६

राजाने दुर्योधन के चित्त की शान्ति के लिये ऐसा निश्चय करके विदुर के पास दूत भेजा ॥ २७ ॥ बुद्धिमान् विदुर यह सुन कर, यह जान कि झगड़े का द्वार खुल गया और विनाश का आरम्भ सामने आगया, वह धृतराष्ट्र की ओर दौड़ा ॥ २८ ॥ वह भाई अपने ज्येष्ठ भाई के पास आय सिर से चरणों पर प्रणाम कर यह वचन बोला ॥ २९ ॥

मूल—नाभिनन्दामि ते राजन् व्यवसायमिमं प्रभो । पुत्रैर्भेदो यथा न स्याद् द्यूत हेतोस्तथा कुरु ॥ ३० ॥ धृतराष्ट्र उवाच— क्षत्तः पुत्रेषु पुत्रैर्मे कलहो न भविष्यति । यदि देवाः प्रसादं नः करिष्यन्ति न संशयः ॥ ३१ ॥ अशुभं वा शुभं वापि हितं वा यदिवाऽहितम् । प्रवर्ततां सुहृद्द्यूतं दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ३२ ॥ मयि सन्निहिते द्रोणे भीष्मे त्वयि च भारत । अनयो दैवविहितो न कथञ्चिद् भविष्यति ॥ ३३ ॥ गच्छ त्वं रथ मास्थाय हयैर्वातसमैर्जवे । खाण्डवप्रस्थ मद्यैव समानय युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥ न वाच्यो व्यवसायो मे विदुरै तद् ब्रवीमि ते । दैव मेव परं मन्ये येनै तदुपपद्यते ॥ ३५ ॥

अर्थ—महाराज ! मैं आप के इस निश्चय को अच्छा नहीं समझता हूं, इस जुएके कारण पुत्रों में जिस से फोटक न पड़े वह काम कीजिये ॥ ३० ॥ धृतराष्ट्र बोले—हे क्षतः ! यदि देवताओं की कृपा रही, तो पुत्रों और भतीजों में झगड़ा नहीं होगा ॥ ३१ ॥ चाहे शुभ हो वा अशुभ, हित हो वा अहित, मित्रता से द्यूत होने दो, निःसंदेह यह होनहार है ॥ ३२ ॥ हे भारत मेरे, द्रोण के, भीष्म के और आप के निकट होने पर मन्द भाग्यता से होनेवाली अनीति कभी नहीं होगी ॥ ३३ ॥ सो तुम रथ पर

सवार हो वेगमें वायु तुल्य घोड़ों मे अभी खाण्डवप्रस्थ को जाओ, और युधिष्ठिर को ले आओ ॥ ३४ ॥ हे विदुर यह न कहना कि यह व्यवसाय मेरा है, मैं होनहार को बड़ा मानता हूं, जिस से यह बन रहा है ॥ ३५ ॥

अ०१७ (व०५८) युधिष्ठिर को जुए के लिए बुलवाना

मूल—ततः प्रायाद् विदुरोऽश्वैरुदारैर्महाजवैर्बलिभिः साधुदान्तैः । बलान्नियुक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा मनीषिणां पाण्डवानां सकाशे ॥ १ ॥ सोऽभिपत्य तमध्वान मासाद्य नृपतेः पुरम् । अभ्यागच्छत धर्मात्मा धर्म पुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥ तं वै राजा सत्यधृतिर्महात्माऽजात शत्रुर्विदुरं यथावत । पूजा पूर्वं प्रतिगृह्या जमीढस्ततोऽपृच्छद् धृतराष्ट्रं सपुत्रम् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच—विज्ञायते ते मनसोऽप्रहर्षः कच्चित् क्षत्तः कुशलेनागतोऽसि । कच्चित पुत्राः स्थविरस्यानुलोमा वशानुगश्चापि विशोऽथ कच्चित् ॥४॥ विदुर उवाच—राजा महात्मा कुशली सपुत्र आस्ते वृतो ज्ञातिभिरिन्द्र कल्पः । इदं तु त्वा कुरुराजोऽभ्युवाच पूर्वं पृष्ट्वा कुशलं चाव्ययं च ॥ ५ ॥ इयं सभा त्वत्सभातुल्यरूपा भ्रातॄणां ते दृश्यतामेत्य पुत्र । समागम्य भ्रातृभिः पार्थ तस्यां सुहृद्द्यूतं क्रियतां रम्यतां च ॥ ६ ॥

अर्थ—राजा धृतराष्ट्र से बल पूर्वक आज्ञा दिया गया विदुर, बल वाले सुशिक्षित उदार घोड़ों के द्वारा बुद्धिमन्त पाण्डवों के पास गया ॥ १ ॥ वह धर्मात्मा उस बाट को लंघ कर राजा के पुर में आय धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास पहुंचा ॥ २ ॥ अजमीढ़ वंशी सत्यधृति राजा अजात शत्रु ने यथा रीति सत्कार पूर्वक स्वा-

गत करके पीछे धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों का कुशल क्षेम पूछ ॥३॥ युधिष्ठिर बोले–क्षत्ताजी आपका मन उदास प्रतीत होता है,आप कुशल मे तो आए हैं. वृद्ध राजा के पुत्र तो अनुकूल हैं, और प्रजा तो वशवर्ती हैं ॥ ४ ॥ विदुर बोले–ज्ञातियों से घेरे, इन्द्र समान महात्मा राजा पुत्रों सहित कुशल से हैं, कुरुराज ने पहले आप का कुशल क्षेम पूछ कर यह संदेश दिया है । हे पुत्र! यह तेरे भाइयों की सभा तुम्हारी सभा के तुल्य बनी है, इसे आ कर देखो, हे पार्थ भाइयों के साथ मिलकर इस सभा में सुहृद्द्यूत खेलो, और आनन्द लूटो ॥ ५,६ ॥

मूल–युधिष्ठिर उवाच—द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः को वै द्यूतं रोचते बुध्यमानः । किं वा भवान् मन्यते युक्तरूपं भवद्वाक्ये सर्व एव स्थिताः स्म ॥ ७ ॥ विदुर उवाच—जानाम्यहं द्यूतमनर्थमूलं कृतश्च यत्नोऽस्य मया निवारणे । राजा च मां प्राहिणोत् त्वत्सकाशं श्रुत्वा विद्वन् श्रेय इहाचरस्व ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच–के तत्रान्ये कितवा दीव्यमाना विना राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ॥ ९ ॥ विदुर उवाच—गान्धारराजः शकुनिर्विशांपतेर जाऽतिदेवी कृतहस्तो मताक्षः । विविंशतिश्चित्रसेनश्च राजा सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयश्च ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच–महाभया कितवाः सन्निविष्टा मायोपधा देवितारोऽत्रसन्ति । धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलेदं सर्वं जगत् तिष्ठति न स्वतन्त्रम् ॥ ११ ॥ नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासनान्न गन्तु मिच्छामि कवे दुरोदरम् । इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव तदस्मि कर्ता विदुरात्थ मां यथा ॥ १२ ॥ न चाकामः शकुनिना देवितोऽहं न चेन्मां जिष्णुराह्वयिता सभायाम् । आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित् तदाहि तं शाश्वतं वै व्रतं मे१३

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे क्षत्तः! जुए में हमारा आपस में झगड़ा होजाएगा, ऐसा समझ कर जुए को कौन पसन्द कर सकता है, अथवा आप क्या ठीक समझते हैं, हम सब आप के कहने पर चलने वाले हैं ॥ ७ ॥ विदुर बोले—मैं जानता हूं, कि जुआ अनर्थ की जड़ है, मैंने इसके रोकने के लिये यत्न भी किया, तिस पर भी राजा ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया है, सो हे विद्वन्! यह सुन कर जिस में अपनी भलाई समझते हो करो ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर बोले—वहां धृतराष्ट्र के पुत्रोंसे अतिरिक्त और कौन खेलने वाले हैं ॥ ९ ॥ विदुर बोले—हे पृथ्वीनाथ! चौसर का पूरा जानकार, सिद्ध हस्त, बड़ा खिलारी, गान्धार राज शकुनि है और विविंशति, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत, पुरु मित्र और जय हैं ॥ १० ॥ युधिष्ठिर बोले—तब तो वहां बड़े भयंकर छलिये खिलारी जुआरिये वहां इकट्ठे हुए हैं, यह सारा जगत् दैव के वश है स्वतन्त्र नहीं (=बुरी घटना घटने वाली है, जिससे यह ऐसा होने लगा है) ॥ ११ ॥ हे विद्वन् मैं राजा धृतराष्ट्र की आज्ञासे चौसर पर न जाऊं यह नहीं होसकता, पुत्र को पिता सदा प्यारा होता है, सो हे विदुर जो मुझे तुमने कहा है, सो करूंगा ॥ १२ ॥ मेरी कोई इच्छा नहीं है, मैं शकुनि के साथ नहीं खेलूंगा, यदि वह जीतने के हाथ जानने वाला मुझे न ललकारे, हां उस से ललकारा हुआ कभी पीछे नहीं हटूंगा, यह मेरा सदा से व्रत है ॥ १३ ॥

मूल—एवमुक्त्वा विदुरं धर्मराजः मायात्रिकं सर्वमाज्ञाप्य तूर्णम् । प्रायाच्छ्वो भूते सगणः सानुयात्रः सहस्त्रीभि र्द्रौपदी मादि कृत्वा ॥ १४ ॥ स हास्तिनपुरं गत्वा धृतराष्ट्र गृहं ययौ । समि-

याय च धर्मात्मा धृतराष्ट्रेण पाण्डवः ॥ १५ ॥ ततो हर्षः समभवद् कौरवाणां विशांपते । तान् दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रियदर्शनान् ॥ १६ ॥ सुखो षितास्ते रजनीं प्रातः सर्वे कृताह्निकाः । सभां रम्यां प्रविविशुः कितवैरभि नन्दिताः ॥ १७ ॥

अर्थ—धर्मराज विदुर से यह कह कर, यात्रा के योग्य सारी तय्यारी की आज्ञा देकर, दूसरे दिन, नौकर चाकरों, और सहचरों सहित और द्रौपदी आदि स्त्रियों समेत पधारे॥ १५ ॥ धर्मात्मा पाण्डव हस्तिनापुर पहुंच धृतराष्ट्र के महलों में जाय उन से मिले ॥ १६ ॥ उन प्रिय दर्शन वाले पुरुष श्रेष्ठ पाण्डवों को देख कर कौरवों को बड़ा हर्ष हुआ ॥ १७ ॥ रात सुख से बिताय प्रातःकाल वह सब आन्हिक कृत्य करके सुहावनी सभा में प्रविष्ट हुए, जहां जुआरियों ने उन का स्वागत किया ॥ १८ ॥

अ०१८ (न्०५९) द्यूत विषयक युधिष्ठिर और शकुनि का संवाद

मूल—तेषु तत्रोपविष्टेषु सर्वेषु नृपेष्वथ । शकुनिःसौबलस्तत्र युधिष्ठिर मभाषत ॥ १ ॥ उपस्तीर्णा सभा राजन् सर्वे त्वयि कृतक्षणाः । अक्षानुप्त्वा देवनस्य समयोऽस्तु युधिष्ठिर ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच—निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः । न च नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंससि ॥ ३ ॥ न हि मानं प्रशंसन्ति निकृतौ कितवस्य हि । शकुने मैवं नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत् ॥ ४ ॥ इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह । धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम् ॥ ५ ॥ नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्त्युत । अजिह्मम शठं युद्ध मेतत् सत्पुरुष व्रतम्

॥ ६ ॥ शक्तितो ब्राह्मणार्थाय शिक्षितुं प्रयतामहे । तद्वै वित्तं माति देवीर्माजैषीः शकुने परान् ॥ ७ ॥ निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा । कितवस्येह कृतिनो वृत्त मेतन्न पूज्यते ॥ ८ ॥

अर्थ--उन सब राजाओं के आसनों पर बैठ जाने पर सुबल पुत्र शकुनि युधिष्ठिर से बोला--॥ १ ॥ हे राजन् सभा (आए राजाओं से) भरगई है, सब आपकी बाट देख रहे हैं, सो हे युधिष्ठिर पासे डाल कर खेलने का नियम बांधिये ॥२ ॥ युधिष्ठिर बोले--जुआ खेलना धोखा देना है, अतएव पाप है, इसमें कोई क्षत्रियों वाला पराक्रम नहीं, और न कोई निश्चित नीति है, तब हे राजन् ! तुम क्यों जुए को अच्छा मानते हो ॥ ३ ॥ जुआरिय के इस धोखा देने में लोग उनका मान नहीं समझते, सो हे शकुने ! क्रूर की भांति इस प्रकार अनुचित मार्ग से मत हमें जीत ॥ ४ ॥ कपट से जुआरियों के साथ जुआ खेलना यह पाप है, धर्म से युद्ध में विजय पाना ही अच्छा है, पर जुआ खेलना ऐसा काम नहीं (धर्म से जय नहीं) ॥ ५ ॥ आर्य म्लेच्छ भाषाएं नहीं बोलते, और छल का व्यवहार नहीं करते, बिना छल कपट के युद्ध, यह सत्पुरुष का धर्म है ॥ ६ ॥ जिस धन को हम ब्राह्मणों के लिये लगाने में प्रयत्न करते हैं, उस धन को हे शकुने जुए से मत हारिये, इस प्रकार शत्रुओं को मत जीतिये ॥ ७ ॥ ठग कर मैं सुख वा धन नहीं चाहता हूं, कुशल जुआरिये का भी यह काम सराहा नहीं जाता है ॥ ८ ॥

मूल--शकुनिरुवाच--श्रोत्रियः श्रोत्रियानेति निकृत्यैव युधिष्ठिर । विद्वान विदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिंजनाः ॥ ९ ॥

अक्षैर्हि शिक्षितोऽभ्येति निकृत्यैव युधिष्ठिर । विद्वान विदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः ॥ १० ॥ अकृतास्त्रं कृतास्त्रश्च दुर्बलं बल वत्तरः । एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ विद्वान विदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः ॥ १२ ॥ एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे । देवनाद् विनिवर्तस्व यदि ते विद्यते भयम् ॥ १३ ॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर ! वेदज्ञ धोखे से ही (भूल में फंसाकर ही) वेदज्ञ का सामना करता है, क्योंकि जानकार अनजान को नीचा दिखाता है, पर लोग उसे ठगना नहीं मानते ॥ ९ ॥ इसी प्रकार हे युधिष्ठिर पासों में कुशल पुरुष दूसरे के धोखा खाने में उस पर विजय पाता है, जानकार ही अनजान को नीचा दिखाता है, पर लोग इसे ठगना नहीं मानते ॥ १० ॥ अस्त्र कुशल अस्त्रों में अनजान को, और बल वत्तर दुर्बल को, इसी प्रकार सारे कामों में भूल में फंसा कर ही जानकार ही अनजान को नीचा दिखाता है, सो समझ वाले उसे ठगना नहीं कहते ॥ ११—१२ ॥ यदि तुम इसे ठगना समझते हो, और तुम्हें डर लगता है, तो मेरे सामने आकर अब जुआ खेलने से पीछे हट जाइये ॥ १३ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—आहूतो न निवर्तेय मिति मे व्रत माहितम् । विधिश्च बलवान् राजन् दिष्टस्यास्मि वशे स्थितः॥१४॥ अस्मिन् समागमे केन देवनं मे भविष्यति। प्रतिपाणश्च कोऽन्योऽस्ति ततो द्यूतं प्रवर्तताम् ॥ १५ ॥ दुर्योधन उवाच—अहं दाताऽस्मि रत्नानां धनानां च विशांपते । मदर्थे देविता चायं शकुनिर्मातुलो मम ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर उवाच—अन्येनान्यस्य वै द्यूतं विषमं प्रति भाति मे । एतद् विद्वन्नुपा दत्स्व काममेवं प्रवर्तताम्॥१७॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—ललकारने पर मैं पीछे नहीं हटता हूं, यह मैंने व्रत धारा हुआ है, हे राजन् ! दैव बलवान् है, मैं दैव के अधीन हूं ॥ १४ ॥ इस समागम में किसके साथ मुझे खेलना होगा, कौन सामने दांव लगाने वाला है, तब जुआ प्रवृत्त हो ॥ १५ ॥ दुर्योधन बोला—हे राजन् ! मैं रत्न और धन दूंगा, मेरे लिये यह शकुनि मेरा मामा खेलेगा ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर बोले किसी और के द्वारा और का जुआ खेलना, यह मुझे विषम प्रतीत होता है, इसको हे विद्वन् मान ले, और तुम यही चाहते हो, तो यूं ही प्रवृत्त हो ॥ १७ ॥

अ०१९ (व०६०-६१) जुए में युधिष्ठिर का हारते जाना

मूल—उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते। धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां ततः ॥ १ ॥ भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विदुरश्च महामतिः। नातिप्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्तन्त भारत ॥ २ ॥ प्रावर्तत महाराज सुहृद् द्यूत मनन्तरम् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच—अयं बहु धनो राजन् सागरावर्तसंभवः। मणिर्हारोत्तरः श्रीमान् कनकोत्तम भूषणः ॥ ४ ॥ एतद्राजन् मम धनं प्रतिपाणोऽस्ति कस्तव। येन मां त्वं महाराज धनेन प्रति दीव्यसे ॥ ५ ॥ दुर्योधन उवाच—सन्ति मे मणयश्चैव धनानि सुबहूनि च। मत्सरश्च न मेऽर्थेषु जयस्वैनं दुरोदरम् ॥ ६ ॥ ततो जग्राह शकुनिस्तानक्षानक्ष तत्त्ववित्। जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ ७ ॥

अर्थ—जुए की तय्यारी हो जाने पर वह सारे राजे धृतराष्ट्र को आगे करके उस सभा में प्रविष्ट हुए ॥ १ ॥ भीष्म, द्रोण, कृप और महामति विदुर बुझे हुए मन से उन के

साथ गए ॥ २ ॥ तदनन्तर हे महाराज सुहृद् द्यूत प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे राजन् ! सागर में से उत्पन्न हुआ यह सुवर्ण भूषणों वाला मणिहार है ॥ ४ ॥ यह मेरा धन है, आप का प्रतिदाव (बराबरी का दाव) कौनसा है । जिस धन से हे महाराज मेरे साथ खेलोगे ॥ ५ ॥ दुर्योधन बोला—मेरे बहुत से धन और मणियें हैं, मुझे धनों में मात्सर्य नहीं, इस दाव को जीतिये ॥ ६ ॥ तब पासों के रहस्य को जानने वाले शकुनि ने पासे उठाए, और फेंक कर युधिष्ठिर से बोला 'यह मैं जीता'॥ ७ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच—सन्ति निष्कसहस्रस्य भाण्डन्यो भरिताः शुभाः । एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया॥८॥ इत्युक्तः शकुनिःप्राह जितमित्येव तं नृपम् ॥ ९ ॥ अयं सहस्रसमितो वैयाघ्रः सुप्रतिष्ठितः । संह्रादनो राजरथो तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १० ॥ एवं श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जित मित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ ११ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर उवाच—सहस्र २ मुहरों की भरी हुई पेटियां हे राजन् ! यह मेरा धन है, उससे मैं तेरे साथ खेलता हूं॥ ८ ॥ ऐसा कहने पर शकुनि राजा से बोला 'यह मैं जीत गया'॥९॥ (युधिष्ठिर)यह व्याघ्र चर्म से मढा हुआ सहस्र रथ के बराबर संह्रादन राज रथ है, उससे मैं तेरे साथ खेलता हूं॥१०॥यह सुन छलका सहारा लिये पांसे फेंक कर शकुनि युधिष्ठिर से बोला 'यह मैं जीत गया' ॥ ११ ॥

मूल—सहस्रसंख्या नागा मे मत्तास्तिष्ठन्ति सौबल । एतद्राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १२ ॥ इत्येवं वादिनं पार्थं प्रहसन्निव सौबलः । जित मित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत॥१३॥

रथास्तावन्त एवेमेहेमदण्डाः पताकिनः । हयैर्विनीतैः सम्पन्ना रथिभिश्चित्र योधिभिः ॥ १४ ॥ एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १५ ॥ अश्वांस्तित्तिरि कल्माषान् गान्धर्वान् हेममालिनः । एतद्राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १६ ॥ जित मित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १७ ॥ रथानां शकटानां च श्रेष्ठानां चायुतानि मे । तथा समुदिता वीरा सर्वे वीर पराक्रमाः ॥ १८ ॥ एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया । जित मित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १९ ॥ ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः । पञ्चद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्या हतस्य च ॥ २० ॥ एतद्राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया । जित मित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ २१ ॥

अर्थ—हे सुबल पुत्र! मेरे जो सहस्रों मत्त हाथी हैं, हे राजन् ! वह मेरा धन है, उस से तेरे साथ खेलता हूं ॥ १२ ॥ ऐसा कहते युधिष्ठिर से शकुनि बोला 'यह मैं जीतगया' ॥ १३ ॥ सोने के दंडों वाले और ध्वजा वाले यह उतने ही रथ, जो सुशिक्षित घोड़ों से और विचित्र युद्ध करने वाले रथियों से युक्त हैं, ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह मेरा धन है, उससे मैं आपके साथ खेलता हूं, शकुनिने युधिष्ठिर से कहा 'यह मैं जीत गया' ॥ १५ ॥ गन्धर्वों से मिले हुए सोने की मालाओं वाले जो मेरे तित्तिरि कल्माष घोड़े हैं, हे राजन् ! यह मेरा धन है, उस से मैं तेरे साथ खेलता हूं।१६। शकुनि युधिष्ठिर से बोला 'यह मैं जीतगया' ॥ १७ ॥ श्रेष्ठ रथों और छकड़ों के जो मेरे कई सहस्र हैं, तथा वीर पराक्रमों वाले, जो सारे वीर समुदाय हैं, ॥ १८ ॥ हे राजन् यह मेरा धन

है, इस से मैं खेलता हूं, शकुनि युधिष्ठिर से बोला ' यह मैं जीत गया ' ॥ १९ ॥ जो मेरे चारसौ निधि (दबे हुए खज़ाने) तांबे और लोहे के वर्तनों से ढके हैं, जिनमें से एक २ निधि में शुद्ध सोना पांच २ द्रोण है ॥ २० ॥ हे राजन् यह मेरा धन है, उस से मैं खेलता हूं, शकुनि युधिष्ठिर से बोला ' यह मैं जीत गया ' ॥ २१ ॥

अ०२०(व०६२-६४)विदुर और दुर्योधन के वचन

मूल—एवं प्रवर्तिते द्यूते घोरे सर्वापहारिणि । सर्व संशय निर्मोक्ता विदुरो वाक्य मब्रवीत् ॥ १ ॥ महाराज विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि भारत ॥ २ ॥ दुर्योधनो मदेनैप क्षेमं राष्ट्रं व्यपोहति। विपाणं गोरिव मदात्स्वयमारुजतेत्मनः ॥ ३ ॥ यश्चित्त मन्वेति परस्य राजन् वीरः कविःस्वामवमन्य दृष्टिम् । नावं समुद्र इव बालनेत्रा मारुह्य घोरे व्यसने निमज्जेत् ॥ ४ ॥ दुर्योधनो ग्लहते पाण्डवेन प्रीयायसे त्वं जयतीति तच्च। अतिनर्मा जायते संप्रहारो यतो विनाशः समुपैति पुंसाम् ॥ ५ ॥ आकर्षस्तेऽवाक् फलःसुप्रणीतो हृदि प्रौढो मन्त्र पदः समाधिः । युधिष्ठिरेण कलहस्तवाय-मचिन्तितोऽभिमतः स्वबन्धुना ॥ ६ ॥ प्रातिपेयाः शान्तनवाःशृणु-ध्वं काव्यं वाचं संसदि कौरवाणाम् । वैश्वानरं प्रज्वलितं सुघोरं मा यास्यध्वं मन्द मनुप्रपन्नाः ॥ ७ ॥ महाराज प्रभवस्त्वं धनानां पुरा द्यूतान्मनसा यावदिच्छेः । बहुवित्तान् पाण्डवांश्चेज्जयस्त्वं किं ते तत् स्यात् वसु विन्देह पार्थान् ॥ ८ ॥ जानीमहे देवितं सौबलस्य वेद द्यूते निकृतिं पार्वतीयः।यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्रयातु मायुयुधो भारत पाण्डवेयान् ॥ ९ ॥

अर्थ—इस प्रकार सब कुछ छीनने वाले घोर जुएके प्रवृत्त

होने पर सब संशयों के मिटाने वाला विदुर वाक्य बोला ॥ १ ॥ महाराज समझिये, जो मैं आपसे कहने लगा हूं ॥ २ ॥ यह दुर्योधन मद से देश से कल्याण को फेंक रहा है, जैसा कि सांड मद से अपने सींग (चट्टानों के साथ) तोड़ लेता है ॥ ३ ॥ हे राजन्! जो समर्थ और प्राज्ञ होकर अपनी समझ का अनादर कर दूसरे के अभिप्राय पर चलता है, वह समुद्र में अनजान से चलाई नौका पर चढ़ने वाले की भांति भयंकर दुःख में डूबेगा ॥ ४ ॥ आप इस से प्रसन्न होरहे हैं, कि दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ दाव लगाता है और जीतता चला जाता है, पर बहुत हंसी अन्त में युद्ध का रूप धारती है, जिस से पुरुषों का विनाश होता है ॥ ५ ॥ आपने यह मन्द फल रखने वाला जुआ प्रवृत्त कराया है, और यह नियम मन्त्र रूप से आपके हृदय में जग गया है, पर हे राजन् ! अपने बन्धु युधिष्ठिर के साथ यह अचानक तेरा झगड़ा खड़ा हुआ है ॥ ६ ॥ हे प्रतीप की सन्तान हे शान्तनु की संतान इस कौरव सभा में मेरे इस नीति वचन को सुनो, इस मूर्ख के पीछे लगकर-इस भयंकर प्रज्वलित हुई अग्नि में मत पड़ो ॥ ७ ॥ महाराज ! जुए से पहले ही आप जितने चाहते, उतने धनों के स्वयं प्रभव(स्रोत) हैं,बहुत धन वाले पाण्डवों को यदि आपने जीतलिया, तो उस से आप का क्या बनेगा, आप इस लोक में पाण्डवों को ही अपना धन जान लाभ कीजिये ॥ ८ ॥ शकुनि के खेल को हम जानते हैं, यह पहाड़िया जुए में धोखा देना जानता है, हे भारत ! शकुनि (बेगाना) जहां से आया है, वहां जाए, तुम पाण्डवों (अपनों) से लड़ाई मत छेड़ो ॥ ९ ॥

मूल—दुर्योधन उवाच—परेषामेव यशसा श्लाघसे त्वं सदा क्षत्तः कुत्सयन् धार्तराष्ट्रान्। जानीमहे विदुर यत्प्रियस्त्वं बालानिवास्मानवमन्यसे नित्यमेव॥ १० ॥ उत्संगे च व्याल इवाहितोऽसि मार्जारवत् पोषकं चोपहंसि। भर्तृघ्नं त्वा नहि पापीय आहुस्तस्मात् क्षत्तः किं न बिभेषि पापात्॥ ११ ॥ अमित्रतां याति नरोऽक्षमं ब्रुवन् निगूहते गुह्यमामित्र संस्तवे। तदाश्रितोऽपत्रप किं नु बाधसे यदिच्छसि त्वं तदिहाभिभाषसे॥ १२ ॥ नावासयेत् पारवर्ग्यं द्विषन्तं विशेषतः क्षत्त हितं मनुष्यम्। स यत्रेच्छसि विदुर तत्र गच्छ सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति॥ १३ ॥ विदुर उवाच—लभ्यते खलु पापीयान्नरो नु प्रियवागिह। अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १४ ॥ वैचित्रवीर्यस्य यशोधनं च वाञ्छाम्यहं सह पुत्रस्य शश्वत्। यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु ममापि च स्वस्ति दिशन्तु विप्राः॥ १५ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला—हे क्षत्तः तुम सदा दूसरों की बड़ाई करते हो, और धृतराष्ट्र के पुत्रों को सदा निन्दते हो, हे विदुर हम जानते हैं, तुम जिनको प्यार करते हुए हमारा सदा बालों जैसा अपमान करते हो॥ १० ॥ गोद में सांप की भांति रक्खे गए हो, बिल्ली की भांति अपने पालक की वस्तुएं बिगाड़ते हो, अपने स्वामी से द्रोह करनेवाले तुझको लोग बुरा नहीं कहते हैं, पर हे क्षत्तः! तू इस पाप से क्यों नहीं डरता है॥ ११ ॥ जो पुरुष अहित की बात कहता है, रहस्य को छिपाता है और शत्रु की स्तुति करता है, वह शत्रु होता है, सो तू आश्रित होकर भी हे निर्लज्ज कैसे हमें तंग करता है, तेरे जो जी में आता है, कहने लगजाता है, ॥ १२ ॥ हे क्षत्तः! शत्रुओं के हितैषी, विशेषतः

अपने अहिती अन्दर से द्वेष रखने वाले को वास नहीं देना चाहिये, सो हे विदुर तु जहां चाहता है, चला जा, असती स्त्री दिलासा देने पर भी छोड़ कर चली ही जाती है ॥ १३ ॥ विदुर बोले—इस जगत् में मीठी २ बातें कहने वाला खोटा पुरुष मिल जाता है, पर अप्रिय पथ्य का कहने वाला दुर्लभ है और श्रोता भी दुर्लभ है ॥ १४ ॥ मैं विचित्रवीर्य की सन्तति और उसके पुत्रों का जैसे यश धन सदा चाहता हूं, वैसे तेरा हो, अब तुझे नमस्कार हो, मुझे भी ब्राह्मण कल्याण (कल्याण का आशीर्वाद) दें* ॥ १५ ॥

---

*'नमस्कार हो, मुझे ब्राह्मण कल्याण दें' विदुर के इस कथन से प्रतीत होता है, कि वह वहां से उठकर चला गया, चाहिये भी यही था, जब कि उसकी भली अनुमति के पलटे दुर्योधन ने उसे बुरा भला कहा, और यह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया, कि 'तू जहां चाहता है चला जा' और यह सब धृतराष्ट्र के सामने हुआ, और उसने भी दुर्योधन को न रोका। पर आगे जब युधिष्ठिर द्रौपदी को हारता है, तब फिर विदुर को हम सभा में ही बोलता हुआ पाते हैं। यह कैसे होसकता है? इससे और वक्ष्यमाण हेतुओं प्रतीत होता है, कि यहां फिर कुछ प्रक्षेप हुआ है। अगली कथा इस प्रकार है, कि फिर शकुनि के ललकारने पर युधिष्ठिर ने सारा धन, राज्य, चारों भाई, अपना आप और अन्ततः द्रौपदी को भी हार दिया। तब दुर्योधन ने विदुर को द्रौपदी के सभा में लाने की आज्ञा दी, उसने द्रौपदी का हाराजाना ही नियम विरुद्ध बतलाया, तब दुःशासन

गया, द्रौपदी को जब पकड़ने लगा, तो वह धृतराष्ट्र की रानियों की शरण में गई, वह भी उसे न बचा सकीं, दुःशासन उसे पकड़ लाया, द्रौपदी रजस्वला थी, एक वस्त्र पहरे थी, द्रौपदी का यह प्रश्न था, कि युधिष्ठिर ने पहले अपने आप को हारा है, वा मुझे, इसके उत्तर में भीष्म आदि ने टाल दिया। दुर्योधन के भाई विकर्ण ने कहा, कि द्रौपदी का हारा जाना नहीं समझना चाहिये, पर उसकी बात नहीं मानी गई, दुःशासन ने द्रौपदी का वस्त्र उतारना चाहा, द्रौपदी ने परमात्मासे विनति की, कि मेरी लाज रख। परमात्मा ने उसकी लाज रक्खी, कि द्रौपदी का एक वस्त्र उतारने पर वैसाही उसके नीचे और दिखलाई दिया, उसके भी उतारने पर और दिखलाई दिया, इस प्रकार आगे २ अन्त न आया। दुःशासन थक कर बैठ गया। फिर विदुर ने कहा, हे सभ्यो! द्रौपदीके प्रश्न का उत्तर दो, द्रौपदी भी रोई चिल्लाई, और उत्तर के लिये कहा, फिर भी भीष्म आदि ने उत्तर देने में टाल ही की, इस अवसर में धृतराष्ट्र के घर गीदड़ बोले, यह अपशकुन देख गान्धारी ने धृतराष्ट्र को समझाया, तब धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को दिलासा दिया, और वर दिया, द्रौपदी ने वर मांगा, कि युधिष्ठिर स्वतन्त्र हो, धृतराष्ट्र ने फिर और वर दिया, द्रौपदी ने मांगा, कि दूसरे चारों भाई भी स्वतन्त्र हों, धृतराष्ट्र ने तीसरा वर दिया, द्रौपदी ने कुछ न मांगा, धृतराष्ट्र ने स्वयमेव उनको राज्य कोष आदि सब दे दिया, वह रथों पर सवार हो चले गए, दुर्योधन और शकुनि फिर आकर रोए, कि उनको छोड़ दिया है, वह हम से बदला लेंगे, इस लिये १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास का दाव हमें खेलने दीजिये, धृतराष्ट्र

ने मान लिया, और फिर पाण्डवों को बुला लिया, इसमें भी वह हारे, और फिर वन को चले गए।

इस कथा में यह बातें विचारणीय हैं—(१) विदुर सभा से उठ गया, तो फिर सभा में उसकी उपस्थिति कैसे ? (२) सेना आदि को दाव पर रखना ठीक नहीं भासता. इसको मान कर भी फिर चारों भाइयों को और अपने आपको दाव पर लगाना और भी अनुचित, और द्रौपदी को दाव पर लगाने में तो अनुचितता की हद ही करदी, इस अनौचित्य को मान कर भी यह और प्रश्न उठता है, कि भाइयों के और अपने आप के सामने दुर्योधन का प्रति दाव क्या था, यदि युधिष्ठिर उसी दाव को जीत जाता, तो क्या जीतता ? क्या दुर्योधन के भाई, वा स्वयं दुर्योधन इन में से कोई प्रति दाव पर लगा था, नहीं तो फिर यह दाव एक तर्फा था, कि युधिष्ठिर हार जाए, तो भाई हारे गए, युधिष्ठिर जीत जाए, तो कोई न हारा, और बस, जीता क्या, यह कुछ नहीं ? (३) इस दाव पर युधिष्ठिर को धिक्कार तो हुई, पर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण में से किसीने न रोका, जिनके कथन को युधिष्ठिर गुरु आज्ञा मान अवश्यमेव रुक जाता, इनमें भी कोई लाज न रही थी ? (४) अच्छा विदुर (ग्रन्थानुसार) यदि बैठा ही था, तो वही विदुर जो थोड़े में चिल्ला उठा, द्रौपदी को दाव पर रखते समय चुप चाप देखता रहा (५) दुर्योधन को द्रौपदी के पकड़ लाने के लिये वहां विदुर ही उपयुक्त दिखलाई दिया, जो समूल ही इस कार्य को अनुचित समझता था, और जिसको अभी दुर्योधन झिड़क चुका था (६) द्रौपदी को सभा में पकड़ लाना भी धृतराष्ट्र ने न रोका, क्या वह उसके सगे भाई की स्नुषा न थी,

धृतराष्ट्र पुत्र का पक्षपाती अवश्य था, तिस पर भी क्या वह पाण्डवों से दिखलावे का भी कोई प्रेम वा सम्बन्ध न रखता था, यदि ऐसा होता, तो उनको आधा राज्य ही क्यों बांट देता? तो अब वह ऐसा ही नीच होगया था, कि उसने अपनी स्नुषा द्रौपदी को भरी सभा में नग्न किया जाना स्वीकार कर लिया (७) भीष्म आदि भी चुपचाप ही देखते रहे, अपितु द्रौपदी का प्रश्न भी टालना ही चाहा (८) धृतराष्ट्र जब कृपालु हुआ, तो सब कुछ ही फेर दिया, क्या उसका हृदय पहले इतना ही पत्थर होगया था, कि द्रौपदी का सभा में घसीट कर लाया जाना और नग्न किया जाना भी न रोकसका, और अब इतना ही नर्म होगया था, कि सब कुछ ही दे डाला (९) और ऐसा ओछापन, कि फिर उनको जुए के लिये मार्ग से ही बुला लिया, इतना राज्य तन्त्र चला रहा था, कुछ भी गम्भीरता वा लोक लाज से काम न लिया? (१०) पाण्डव भी अब भी न संभले, फिर जाही खेले, और उसी छलिये शकुनि के साथ ही, और दाव भी जो उसने कहा, मान लिया। इत्यादि हेतु हैं और अत्युक्तियां भी हैं, जो इसे विचारास्पद ठहराती हैं, मेरी सम्मति यह है, कि विदुर के चलेजाने के पीछे शकुनि ने अवसर देख युधिष्ठिर से झट वनवास वाला दाव मांगा है, और उसने लगा दिया, जिसके हारने पर वह वनवास को चलेगए हैं। पांचों भाई, और द्रौपदी के दाव नहीं हुए और न अनुद्यूत हुआ है। धृतराष्ट्र दुर्योधन से सहमत हो ही चुका हुआ था, इस लिये उसने विदुर के चले जाने को भी सह लिया, और झटपट ही पहले सोचे हुए कूट नीति के पेच में लाकर पाण्डवों को अपनी ओर से

अ०२१(व०६५-६६) भाइयों को, आपको और द्रौपदी को हारना

मूल—शकुनिरुवाच–बहु वित्तं पराजैषीः पाण्डवानां युधिष्ठिर। आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेस्त्य पराजितम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच—अयुतं मयुतं चैव शंकुं पद्मं तथार्बुदम् । खर्वं शंखं निखर्वं च महापद्मं च कोटयः ॥ २ ॥ मध्यं चैव परार्धं च सपरं चात्र पण्यताम् । एतन्मम धनं राजं स्तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥३॥ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ ४ ॥

अर्थ—शकुनि बोला हे युधिष्ठिर बहुत धन पाण्डवों का हरा चुके हो, कहो यदि आपका बिन हारा धन कोई है ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले–दसहजार, लक्ष, शंकु, पद्म, अर्ब, खर्व, शंख, महापद्म, करोड़ों, मध्य, परार्ध और इससे बढ़ कर भी मैं यहां लगाता हूं, हे राजन् ! यह मेरा धन है, इससे मैं, आप के साथ खेलता हूं ॥ २–३ ॥ यह सुन छलका सहारे लिये वह व्यवसायी युधिष्ठिर से बोला, यह मैं जीत गया ॥ ४ ॥

मूल—गवाश्वं बहु धेनूक मसंख्येयमजाविकं । यत् किञ्चिद नुपर्णाशां प्राक्सिन्धो रपि सौबल ॥ ५ ॥ एतन्मम धनं सर्वं तेन

सदा के लिये राज्य च्युत कर दिया, क्योंकि १३ वर्ष तो यूंही हैं, पर तेरहवां वर्ष वन में नहीं रहना, बस्ति में रहना है, जहां पता लगाना आसान है, और पता लगने पर फिर आरम्भ से १३ वर्ष हैं इत्यादि। तथापि अभी पूरे निर्णय के लिये अधिक विचार की आवश्यकता है, इसलिये इस अंश को भी ज्यों का त्यों रख दिया है ।

दीव्याम्यहं त्वया । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ ६ ॥ पुरं जनपदो भूमिरब्राह्मण धनैः सह । अब्राह्मणाश्च पुरुषा राजन् शिष्टं धनं मम ॥ ७॥ एतन्मम धनं सर्वं तेन दीव्याम्यहं त्वया । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ ८ ॥ राजपुत्रा इमे राजन् शोभन्ते ये विभूषिताः । कुण्डलानि च निष्काश्च सर्वं राज विभूषणम् ॥ ९ ॥ एतन्मम धनं राजंस्तेन दीव्याम्यहं त्वया । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १० ॥

अर्थ—हे शकुने ! मेरे जो अनगिनत बैल घोड़े गौएं भेड़ें बकरियें पर्णाशा नदी के तट पर और सिन्धु के पूर्व में हैं ॥ ५ ॥ यह मेरा धन है, उस से मैं तेरे साथ खेलता हूं, शकुनि (पासे फैंक कर) युधिष्ठिर से बोला, यह मैं जीत गया ॥ ६ ॥ तब हे राजन् ! पुर, देश, भूमि और ब्राह्मण–धन को छोड़ कर और सब का धन* और ब्राह्मणेतर पुरुष यह मेरा बचा हुआ धन है ॥ ७ ॥ यह सारा मेरा धन है, उस से मैं तेरे साथ खेलता हूं । (तब) शकुनि (पासे फैंक कर) युधिष्ठिर से बोला 'यह मैं जीत गया ॥ ८ ॥ तब हे राजन् ! यह राजपुत्र (मेरे भाई) जो यहां शोभा पा रहे हैं, इनमे धारे हुए कुण्डल, निष्क और सारे राज भूषण, यह मेरा धन है,इससे मैं तेरे साथ खेलता हूं। शकुनि युधिष्ठिर से बोला, 'यह मैं जीत गया' ॥ ९–१०

मूल—युधिष्ठिर उवाच–श्यामो युवा लोहिताक्षः सिंहस्कन्धो महाभुजः। नकुलो ग्लह एवैको विद्ध्येतन्मम तद्धनम् ॥ ११ ॥

---

* राजा का धन वही होता है, जो वह रक्षा के पलटे में कर लेता है, लोगों का सारा धन राजा का धन नहीं होसकता ।

जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १२ ॥ अयं धर्मान् सह-देवोऽनुशास्ति लोके ह्यस्मिन् पण्डिताख्यां गतश्च । अनर्हता राज-पुत्रेण तेन दीव्याम्यहं चाप्रियवत् प्रियेण ॥ १३ ॥ जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १४ ॥ यो नः संख्ये नौरिव पारनेता जेता रिपूणां राजपुत्रस्तरस्वी । अनर्हता लोकवीरेण तेन दीव्या-म्यहं शकुने फाल्गुनेन ॥ १५ ॥ जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर म-भाषत ॥ १६ ॥ यो नो नेता यो युधि नः प्रणेता यथा वज्री दानव शत्रुरेकः । तिर्यक् प्रेक्षी सन्नतभ्रूर्महात्मा सिंहस्कन्धो यश्च सदाऽत्यमर्षी॥ ७ ॥ बलेन तुल्यो यस्य पुमान् न विद्यते गदाभृता मग्रथ इहारिमर्दनः । अनर्हता राजपुत्रेण तेन दीव्याम्यहं भीमसे-नेन राजन् ॥ १८ ॥ जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥१९॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोला—यह युवा श्याम, लाल नेत्रों वाला, शेर के से कन्धों वाला बड़ी भुजा वाला मेरा भाई नकुल एक दाव है, यह मेरा धन जान ॥ ११ ॥ (पासे फैंक कर) शकुनि युधिष्ठिर से बोला, 'यह मैं जीत गया' ॥ १२ ॥ यह सहदेव जो धर्म का अनुशासन करने वाला है, लोक में पण्डित नाम से प्रसिद्ध है, ऐसे बर्ताव के अयोग्य इस राजपुत्र से प्यारे से अप्रिय की भांति खेलता हूं ॥ १३ ॥ (पासे फैंक कर) शकुनि युधि-ष्ठिर से बोला 'यह मैं जीत गया ॥ १४ ॥ जो रण में नौका-वत् हमें पार लेजाने वाला है, शत्रुओं का जीतने वाला बलकारी राजपुत्र, ऐसे बर्ताव के अयोग्य इस लोक वीर अर्जुन से हे शकुने मैं तेरे साथ खेलता हूं ॥ १५ ॥ (पासे फैंक कर) शकुनि युधि-ष्ठिर से बोला, 'यह मैं जीत गया' ॥ १६ ॥ जो हमारा नेता,

युद्ध में हमारा नायक इन्द्र की न्याई अकेला दानवों का शत्रु, तिरछा देखने वाला, झुकी भवों वाला, शेर के से कन्धों वाला, कभी न सहने वाला है ॥ १७ ॥ बल में जिसके बराबर कोई पुरुष नहीं, गदा धारियों में मुखिया, शत्रुनाशक है, इस ऐसे बर्ताव के अयोग्य राजपुत्र भीमसेन से हे राजन् मैं तेरे साथ खेलता हूं ॥ १८ ॥ (पासे फैंक कर) शकुनि युधिष्ठिर से बोला 'यह मैं जीत गया' ॥ १९ ॥

मूल—शकुनिरुवाच—बहु वित्तं पराजैषीर्भ्रातॄंश्च सहयद्विपान्। आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्य पराजितम् ॥ २० ॥ युधिष्ठिर उवाच—अहं विशिष्टः सर्वेषां भ्रातॄणां दयितस्तथा। कुर्यामहं जितः कर्म स्वयमात्मन्युपप्लुते ॥ २१ ॥ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः। जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ २२ ॥

अर्थ—शकुनि बोला—बहुत धन आपने हारा है, भाई भी, हाथी और घोड़े भी, कहो हे कौन्तेय! यदि कोई तेरा बिन हारा धन है ॥ २० ॥ युधिष्ठिर बोला, मैं सब भाइयों में बड़ा सब का प्यारा हूं, मैं जीता हुआ कर्म करूंगा, यदि मेरे ऊपर हार आई ॥ २१ ॥ यह सुनकर छल का सहारा ले सावधान हो शकुनि युधिष्ठिर से बोला ' यह मैं जीत गया ' ॥ २२ ॥

मूल—शकुनिरुवाच—अस्ति वै ते प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः। पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर उवाच—चरमं संविशति या प्रथमं प्रति बुध्यते। आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम् ॥ २४ ॥ तयैवं विधया राजन् पाञ्चाल्याऽहं सुमध्यया। ग्लहं दीव्यामि चार्वङ्ग्या द्रौपद्या ।

हन्त सौवल ॥ २५ ॥ एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता । धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृताः गिरः ॥ २६ ॥ चुक्षुभे सा सभा राजन् राज्ञां संजज्ञिरे शुचः । भीष्म द्रोण कृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥ २७ ॥ शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवा भवत् । आस्ते ध्यायन्नधो वक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ २८ ॥ धृतराष्ट्रस्तु संहृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः । किं जितं किं जित-मिति ह्याकारं नाभ्य रक्षत ॥ २९ ॥ जहर्ष कर्णोऽतिभृशं सह दुःशासनादिभिः । इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥३०॥ सौवलस्त्वभिधायैवं जितकाशी मदोत्कटः । जितमित्येव तानक्षान् पुनरेवान्वपद्यत ॥ ३१ ॥

अर्थ—शकुनि बोला—हे राजन् ! है तुझे प्यारी, वह एक दाव अभी विन हारा है, उस पाञ्चाली कृष्णा को दाव पर लगाओ, उससे अपने को फिर जीतो ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर बोला जो पीछे सोती है और पहले जागती है, जो ग्वालों और गड-रियों तक के सारे किये न किये को जानती है ॥ २४ ॥ शोक हे सौवल ! ऐसे गुणों वाली सुन्दर कमर वाली सुन्दर अंगों वाली द्रौपदी को दाव पर लगाता हूं ॥ २५ ॥ बुद्धिमान् धर्म-राज के मुंह से इस वचन के निकलते ही सभा में बैठे सब वृद्धों के धिक् धिक् शब्द निकले ॥ २६ ॥ हे राजन् ! सभा में हल चल मच गई, राजाओं को शोक हुआ, भीष्म द्रोण कृप आदि को पसीना आगया ॥ २७ ॥ विदुर सिर को पकड़ कर अचेत सा होगया, और नीचे मुख करके, सांप की भांति सांस लेता हुआ चिन्ता में डूब गया ॥ २८ ॥ धृतराष्ट्र प्रसन्न हुआ वार २ पूछता था क्या जीता क्या जीता, वह अपने आकार को छिपा

न सका ॥ २९ ॥ कर्ण दुःशासन आदि समेत बड़ा प्रसन्न हुआ, दूसरे सभ्यों के नेत्रों से आंसू गिरने लगे ॥ ३० ॥ जीत में चमकते हुए मदमत्त शकुनि ने फिर उन पासों को लिया और फ़ैंक कर कहा, यह मैं जीत गया ॥ ३१ ॥

अ० २२ (व०६६-६८) द्रौपदी का सभा में लाना

मूल—दुर्योधन उवाच–एहि क्षत्तर्द्रौपदी मानयस्व प्रियां भार्यां संमतां पाण्डवानाम् । संमार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं तत्रास्तु दासीभिरपुण्य शीला ॥ १ ॥ विदुर उवाच—दुर्विभाषं भाषितं त्वादृशेन न मन्द संबुध्यसि पाशवद्धः । प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि व्याघ्रान्मृगः कोपयसेऽति वेलम् ॥ २ ॥ आशीविषास्ते शिरसि पूर्ण कोपा महाविषाः । मा कोपिष्ठाः सुमन्दात्मन् मागमस्त्वं यमक्षयम् ॥ ३ ॥ नहि दासीत्व मापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति । अनीशेन हि राज्ञैषा पणेन्यस्तेति मे मतिः॥ ४ ॥ नारुंतुदःस्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत । ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥ ५ ॥ समुच्चरन्त्यति वादाश्च वक्त्राद् यैराहतः शोचति राज्यहानि । परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥ ६ ॥ मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति । अन्तो नूनं भवितायं कुरूणां सुदारुणः सर्व हरो विनाशः ॥ ७ ॥

अर्थ—दुर्योधन बोला–हे विदुर पाण्डवों से आदर दी हुई प्यारी भार्या को ले आओ,* वह महलमें झाड़ू दे, जल्दी जाए,

---

* यदि विदुर की वहां स्थिति मान भी लें, तौ भी दुर्योधन का विदुर को द्रौपदी के लाने की आज्ञा देना संभावित नहीं, जिस से

और वहां वह पापिनी दासियों के साथ रहे ॥ १ ॥ विदुर बोले, दुर्वचन बोल रहा है, हे मूढ तू फांस से बन्धा हुआ चेतता नहीं है, तू नहीं जानता है, कि मैं गिराने वाली चोटी से नीचे गिर रहा हूं, तू मृग होकर बाघों को अत्यन्त क्रोध चढ़ा रहा है॥२॥ बड़े विषैले, बड़े क्रोधी सांप तेरे सिर पर बैठे हैं, हे मूढ उनको मत कुपित कर, यम के घर मत जा ॥ ३ ॥ द्रौपदी दासी नहीं होनी चाहिये, क्योंकि मालिक न रह कर राजा ने इस को दाव पर लगाया है, यह मेरा निश्चय है ॥ ४ ॥ किसी के मर्म नहीं चुभोने चाहिये, न क्रूर वचन कहने चाहिये, न नीच कर्म से किसी को वश में करना चाहिये, इस की जिस बात से दूसरे को जोश आए, ऐसी भड़काने वाली, नरक में डालने वाली बात कभी न कहे ॥ ५ ॥ अति वाद जब मुख से निकलते हैं, जिनसे घायल हुआ पुरुष दिन रात सोचता रहता है, वह दूसरे के मर्मों पर ही गिरते हैं, अन्यत्र नहीं, बुद्धिमान् को चाहिये, कि ऐसे वचनों को शत्रुओं पर भी न छोड़े ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र का पुत्र मूढ है, मेरे पथ्यरूपी वचनों को नहीं सुनता है, निःसंदेह अब कुरुओं का अन्त होने वाला है, ऐसा दारुण विनाश कि जिसमें सब मरेंगे ॥७॥

मू०—दुर्योधन उवाच—प्रातिकामिन् द्रौपदी मानयस्व न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः । एवमुक्तः प्रातिकामी स सूतः प्राया-

---

कठोर उत्तर सुनने का निश्चय है। वस्तुतः धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर का राज्य छीनना अभीष्ट होकर भी अपने सामने दुर्योधन को ऐसे दुर्वचन बोलने देना और उसे जरा भी न रोकना संभावित नहीं, और भीष्म आदि का भी सर्वथा चुप रहना, कुछ भी न समझाना, उनकी स्पष्टवादिता के विरुद्ध ही है। पाण्डवों की भार्या प्रक्षिप्त भाग में है, और परुषवादी दुर्योधन का वचन है।

च्छीघ्रं राजवचो निशम्य ॥ ८ ॥ प्रातिकाम्युवाच—युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो दुर्योधनो द्रौपदि त्वा मजैषीत् । सात्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि ॥ ९ ॥ द्रौपद्युवाच-गच्छ त्वं कितवंगत्वा सभायां पृच्छ सूतज । किं नु पूर्वं पराजैषी रात्मानमथवा नु माम् ॥ १० ॥ सभां गत्वा स चोवाच द्रौपद्यास्तद्वचस्तदा । युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्व इवाभवत् ॥ ११ ॥ न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्व साधुवा ॥ १२ ॥ दुर्योधन उवाच-दुःशासनैष मम सूतपुत्रो वृकोदरा दुद्विजतेऽल्प चेताः । स्वयं प्रगृह्य नय याज्ञसेनीं किं ते करिष्यन्त्य वशाः सपत्नाः ॥ १३॥

अर्थ—दुर्योधन बोला—हे प्रातिकामिन् ! तू जाकर द्रौपदी को लेआ, पाण्डवों से तुझे कोई डर नहीं । राजा की आज्ञा सुन वह सूत प्रातिकामी झट पट वहां गया ॥ ८ ॥ प्रातिकामी बोला—युधिष्ठिर जुएके मद से पागल होगया, तब हे द्रौपदि दुर्योधन ने तुझे जीत लिया है, सो तू धृतराष्ट्र के घर चल, हे द्रौपदि ! तुझे वहां काम करने के लिये ले जाता हूं ॥ ९॥ द्रौपदी बोली, हे सूत पुत्र ! तू सभा में जाकर जुआ खेलने वाले से पूछ, क्या पहले उसने आप को हराया है, अथवा मुझको ॥ १० ॥ सभा में जाकर उसने द्रौपदी का वह वचन कह दिया, (यह सुन कर) युधिष्ठिर अचेत होगया, मानो जीवित ही नहीं है, सूत को उस ने चंगा मन्दा कुछ न कहा ॥ ११—१२ ॥ दुर्योधन बोला—हे दुःशासन ! यह मूढ सूतपुत्र भीम से डरता है, सो तू स्वयं पकड़ कर द्रौपदी को ले आ, शत्रु बेबस हैं, तेरा कुछ नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

मूल—ततः समुत्थाय स राजपुत्रः श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्त दृष्टिः। प्रविश्य तद् वेश्म महारथाना मित्यब्रवीद् द्रौपदीं राजपुत्रीम् ॥ १४ ॥ एह्येहि पाञ्चालि जितासि कृष्णे दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा । कुरून् भजस्वायतपद्मनेत्रे धर्मेण लब्धासि सभां परैहि ॥ १५ ॥ ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा विवर्ण मामृज्य मुखं करेण । आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुंगवस्य ॥ १६ ॥ ततो जवेनाभि समार रोषात् दुःशासनस्तामभि गर्जमानः। दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ॥ १७ ॥ स तां समाकृष्य सभा समीप मानीय कृष्णा मतिदीर्घ केशीम् । दुःशासनो नाथवती मनाथवच्चकर्ष वायुः कदली मिवार्ताम् ॥१८॥ सा कृष्यमाणा नमितांगयष्टिः शनै रुवाचाथ रजस्वलास्मि । एकं च वासो मम मन्दबुद्धे सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य ॥ १९ ॥

अर्थ—भाई की आज्ञा सुनते ही लाल आँखें किये वह राजपुत्र उठ कर पाण्डवों के महल में प्रविष्ट हुआ और राजपुत्री द्रौपदी से बोला ॥ १४ ॥ इधर आ हे पञ्चालपुत्रि कृष्णे तू जीती गई है, लज्जा त्याग कर दुर्योधन के पास चल, कुरुओं की सेवा कर हे पद्म तुल्य विशाल नेत्रों वाली तू धर्म (जुएकी मर्यादा) से पाई गई है, सभा में चल ॥ १५ ॥ तब अतीव दुर्मना हुई द्रौपदी अपने फीके हुए मुख को हाथ से धुनती हुई पीड़ित हुई उधर को दौड़ी जहां कुरुवर वृद्ध राजा (धृतराष्ट्र) की रानियां थीं ॥ १६ ॥ तब दुःशासन क्रुद्ध हुआ गर्जता हुआ वेग से उसके पीछे दौड़ा, और लंबे काले घूंघर वाले बालों से उस नरेन्द्र पत्नी को जा पकड़ा ॥ १७ ॥ वह उस लंबे बालों वाली को खींचकर सभा के निकट ले आया, दुःशासन ने उस दुःखिया

नाथवती को अनाथिनी की भांति इस तरह खींचा, जैसे वायु केले को ॥ १८ ॥ खींची जाती हुई सुकोड़े हुए शरीर वाली उस ने धीरे से कहा, मैं रजस्वला हूं, हे मन्द बुद्धे मेरा एक ही वस्त्र है, हे अनार्य मुझे सभा में मत ले चल ॥ १९ ॥

मूल–दुर्योधन उवाच–रजस्वला वा भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वा प्यथवा विवस्त्रा । द्यूते जिता चासि कृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥ २० ॥ प्रकीर्णकेशी पतितार्ध वस्त्रा दुःशासनेन व्यत्र धूयमाना । ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना शनै रिदं वाक्य मुवाच कृष्णा ॥ २१ ॥ इमे सभाया मुपनीत शास्त्राः क्रिया वन्तः सर्व एवेन्द्र कल्पाः । गुरु स्थाना गुरवश्चैव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥ २२ ॥ इदं त्वकार्यं कुरुवीर मध्ये रजस्वलां यत् परिकर्षसि माम् । न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां ध्रुवं तवेदं मत मभ्युपेतः ॥ २३ ॥ धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् । यत्र ह्यतीतां कुरु धर्म वलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम ॥ २४ ॥ द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोपि । राज्ञस्तथा हीममधर्म मुग्रं न लक्षयन्ते कुरुवृद्ध-मुख्याः ॥ २५ ॥ अशुद्ध भावैर्निकृति प्रवृत्तैरबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः । संभूय सर्वैश्च जितोपि यस्मात् पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभाया मीशाः सुतानां च तथा स्नुषानाम् । समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत् ॥ २७ ॥ तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च स्रस्तोत्तरीयामतदर्हमाणाम् वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च चकार कोपं परमार्तरूपः॥२८॥

अर्थ–दुःशासन बोला–हे द्रौपदि!चाहे तू रजस्वला हो, चाहे एक वस्त्र वाली हो, चाहे नंगी हो, जुएमें तू जीती गई है, और

दासी बनाई गई है, दासियों में ही तेरा वास सेवा के लिये होना चाहिये ॥ २० ॥ दुःशासन से खींची जाती हुई के बाल बिखर गए, आधा वस्त्र उतर गया, लजाती हुई, क्रोध से जलती हुई कृष्णा धीरे से यह वाक्य बोली ॥ २१ ॥ यह शास्त्रों के ज्ञाता क्रिया वाले, सभी इन्द्र तुल्य, गुरु स्थानी गुरु सभा में बैठे हैं, उनके समक्ष मैं इस तरह खड़ी नहीं होसकती हूं ॥ २२ ॥ यह अनुचित होरहा है, कि कुरु वीरों के बीच में तू मुझ रजस्वला को खींच रहा है,और कोई तुझे धिकारता नहीं है, निःसंदेह यह तेरी मति में हैं ॥ २३ ॥ धिक्कार है, भरतवंशियों की मर्यादा टूट गई, क्षात्रधर्म पर चलने वालों की चाल फिसल गई, जब कि सभा के अन्दर सब कौरव धर्म की मर्यादा टूटती देख रहे हैं ॥ २४ ॥ द्रोण, भीष्म, और महात्मा विदुर इन सब के अन्दर हृदय नहीं रहा, जब कि यह कुरुवृद्धों में मुखिये इस भयंकर पाप को नहीं लखते हैं ॥२५॥ कि इन पाप संकल्प वाले धोखे से खेलने वालों ने सब ने मिल कर पहले इस कुरु पाण्डवों के मुखिया (युधिष्ठिर) को जीत लिया था, पीछे उसने यह दाव लगाया है ॥ २६ ॥ यह कौरव सभा में बैठे हैं, अपने पुत्रों और स्नुषाओं के स्वामी हैं, सब मेरे इस प्रश्न को सोच कर ठीक २ उत्तर दें ॥ २७ ॥ भीमसेन तो ऐसे वर्ताव के अयोग्य उस रजस्वला को जिसका दुपट्टा फिसल रहा है, (दुःशासन से) खींची जाती हुई देखकर पीड़ित हुआ युधिष्ठिर पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा २८

अ०२३ (व०६८) भीम का कोप, विकर्ण का वचन

मूल—भीम उवाच—भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर । न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥ १ ॥

वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च । राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः ॥ २ ॥ न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्ये शोहिनो भवान् । इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥ ३ ॥ एषाह्यन-र्हती वाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवैः । त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशं-सैरकृतात्मभिः ॥ ४ ॥ अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् नि-पात्यते । बाहू ते संप्रधक्ष्यामि सहदेवाग्नि मानय ॥ ५ ॥

अर्थ—भीम बोला—जुआरियों के घरों में दासियें भी होती हैं. हे युधिष्ठर, पर वह उन से नहीं खेलते हैं, उन पर भी उन को दया आती है ॥ १ ॥ वाहन, धन, कवच, शस्त्र, राज्य, हम, तुम यह सब दाव पर लगे, और शत्रुओं ने छीने ॥ २ ॥ पर मुझे इस में क्रोध नहीं आया, आप हम सब के स्वामी हैं, पर मैं इस को मर्यादा का लंघना समझता हूं, जो कि द्रौपदी को दाव पर लगाया ॥ ३ ॥ यह ऐसे वर्ताव के अयोग्या युवति, पाण्डवों को पाकर तेरे निमित्त इन क्षुद्र दुर्जन नीच कौरवों से तंग की जा रही है ॥ ४ ॥ इसके निमित्त हे राजन् ! यह क्रोध तेरे ऊपर फैंकता हूं, तेरी दोनों भुजाओं को जला डालता हूं, सहदेव अग्नि ला ॥ ५ ॥

मूल—अर्जुन उवाच—न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः । परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्म गौरवम् ॥ ६ ॥ न सकामाः परे कार्या धर्म मेवाचरोत्तमम् । भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिव-र्तितु मर्हति ॥ ७ ॥

अर्थ--अर्जुन बोला—हे भीमसेन तुम तो कभी ऐसे वचन कहने वाले न थे, निःसंदेह इन क्रूर शत्रुओं ने तुम्हारा धर्म गौरव

घटा दिया है॥६॥भाई शत्रुओं की कामना (हमारा आपस में विरोध) पूरी न करो, ऊंचे धर्म पर चलो, धार्मिक बड़े भाई को कौन उलांघ सकता है * ॥ ७ ॥

मूल—तथा तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः । कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इद मब्रवीत् ॥ ८ ॥ याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः । अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः ॥ ९ ॥ भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमा वुभौ । समेत्य नाहतुः किञ्चिद् विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ भारद्वाजश्च सर्वेषा माचार्यः कृपएव च । कुत एतावपि प्रश्नं नाहतु द्विज सत्तमौ ॥ ११ ॥ ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेता सर्वतो दिशम् । काम क्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथा मति ॥ १२ ॥ न च ते पृथिवीपाला स्तमूचुः साध्वसाधुवा । उक्त्वाऽसकृत् तथा सर्वान् निःश्वसन्निद मब्रवीत् ॥ १३ ॥ विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं

---

*(प्रश्न)द्रौपदी की दुर्दशा देख कर भीम का क्रुद्ध होना प्रकट करता है, कि वह भीम की भी पत्नी थी। यदि अर्जुन की ही होती, तो क्या क्रोध अर्जुन को न आता, वा भीम के भड़कावे पर न भड़क उठता, उलटा उसे ठंडा क्यों करता (उत्तर)सांझी पत्नी होती, तो भी तो तुम्हारी दृष्टि से अर्जुन को भड़कना चाहिये था, सो जो उत्तर सांझी मानने में होसकता है, वह अकेले अर्जुन की मानने में होसकता है। वस्तुतः भ्रातृ जाया की दुर्दशा देख भीम नहीं संभल सका, इस लिये वह इस दुर्दशा के लाने वाले पर उत्पन्न हुए क्रोध को रोक नहीं सका। पर अर्जुन की अपनी पत्नी थी, उसकी गम्भीरता इसी में थी, कि अपने भाई की इस अनुचित कार्यवाही को भी जर जाता, और दूसरे भाइयों को भी धैर्य देता, क्योंकि यह विपत्ति सीधी उसी पर थी।

मा वा कथञ्चन । मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥ १४ ॥ चत्वार्याहुः नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम् । मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवाति रक्तताम् ॥ १५ ॥ एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते । तथा युक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते ॥ १६ ॥ तदयं पाण्डु पुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम् । समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥ १७ ॥ जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः । इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना ॥ १८ ॥ एतत्सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् ॥ १९ ॥ एतच्छ्रुत्वा महान्नादः सभ्यानामुद तिष्ठत । विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम् ॥ २० ॥ तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्छितः । प्रगृह्य रुचिरं बाहु मिदं वचन मब्रवीत् ॥ २१ ॥

अर्थ—पाण्डवों को वैसे दुःखित, और द्रौपदी को खींची जाती देख कर धृतराष्ट्र का पुत्र विकर्ण बोला ॥ ८ ॥ हे राजाओ ! द्रौपदी ने जो बात कही है, उसका उत्तर दो, सत्य बात की विवेचना न करने से हमारा नरक वास होगा ॥ ९ ॥ कुरुओं के वृद्धतम भीष्म धृतराष्ट्र और महामति विदुर तो मिल कर कुछ कहते नहीं ॥ १० ॥ सब के आचार्य भारद्वाज और कृप यह द्विजवर भी न जाने क्यों उत्तर नहीं देते हैं॥ ११ ॥ पर जो और राजे चारों दिशाओं से इकट्ठे हुए हैं, उनको उचित है, कि रागद्वेष छोड़ कर यथामति उत्तर देवें ॥ १२ ॥ पर उन राजाओं ने भी उस को भला बुरा कुछ उत्तर न दिया, वह (विकर्ण) उन को बार २ कह कर ठंडा सांस भर के यह बोला ॥ १३ ॥ हे राजाओ ! तुम यह बात खोलो, चाहे न खोलो, पर हे कौरवो ! मैं जो सत्य समझता हूं, वह कहूंगा ॥ १४ ॥ धर्मात्मा पुरुष राजाओं

के लिये चार व्यसन बतलाते हैं, शिकार, सुरा पान, जुआ, और विषयासक्ति ॥ १५ ॥ इनमें फंसा हुआ पुरुष धर्म का लंघ कर काम कर देता है, इनसे युक्त हुआ जो कर्म करता है, उस को दुनिया नहीं मानती ॥ १६ ॥ सो यह अत्यन्त व्यसन में फंसे हुए युधिष्ठिर ने जुआरियों के ललकारने पर द्रौपदी का दाव रक्खा है ॥ १७ ॥ और पहले आप जीते जाचुके हुए युधिष्ठिर ने दाव लगाया है, और दाव पर लगाने के लिये शकुनि ने (उसे जोश देकर) कहलवाया है ॥ १८ ॥ यह सब विचार कर मैं यह मानता हूं, कि यह नहीं जीती गई है ॥ १९ ॥ यह सुनते ही विकर्ण को सराहते हुए और शकुनि को निन्दते हुए सभ्यों की बड़ी ध्वनि उठी ॥ २० ॥ उस शब्द के बन्द होने पर क्रोध से भरा हुआ कर्ण भुजा उठा कर यह वचन बोला॥२१॥

मूल—कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः। भवत्यविजिता केन हेतुनैषा मता तव ॥ २२ ॥ दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः। पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत। अवकीर्योत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥२४॥ ततो दुःशासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात्। सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ २५ ॥ आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः। कौरवार्णव मग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥ २६ ॥ आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्यास्तु विशांपते। तद्रूपमपरं वस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥२७॥ तदद्भुततमं लोके वीक्ष्य सर्वे महीभृतः। शशंसुर्द्रौपदीं तत्र कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम् ॥ २८ ॥ शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः।

क्रोधाद् विस्फुरमाणौष्ठो विनिष्पिष्य करे करम् ॥ २९ ॥ यद्ये-तदेव मुक्त्वाऽहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः । पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ॥ ३० ॥ अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापस दस्य च । न पिबेयं बलाद्वक्षो भित्त्वा चेद्रुधिरं युधि ॥ ३१ ॥ तस्य ते तद्वचः श्रुत्वा रौद्रं लोमप्रहर्षणम् । प्रचक्रुर्बहुलां पूजां कुर्वन्तो धृतराष्ट्रजम् ॥ ३२ ॥ ततो दुःशासनः श्रान्ता व्रीडितः समुपाविशत् ॥ ३३ ॥ धिक्शब्दस्तु ततस्तत्र समभूल्लोमहर्षणः । सभ्यानां नरदेवानां दृष्ट्वा कुन्तीसुतांस्तथा ॥ ३४ ॥

अर्थ—जब द्रौपदी वाणी से कही गई और पाण्डवों ने अनुमति दे दी, फिर किस हेतु से तू इसे न जीती गई समझता है ॥ २२ ॥ हे दुःशासन यह विकर्ण अभी बच्चा है, दानाओं की सी बातें बनाता है, तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के वस्त्र लाओ* ॥ २३ ॥ यह सुन हे भारत ! पाण्डव अपने उत्तरीय वस्त्रों को उतार कर सभा में बैठ गए ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तब दुःशासन सभा के मध्य में द्रौपदी के वस्त्र को बल से खींच कर उतारने लगा † ॥ २५ ॥ वस्त्र के खींचे जाते समय द्रौपदी ने

---

* जो वस्त्र दास और दासियों को दिये जाते हैं, वह वस्त्र लाओ, यह अभिप्राय है † द्रौपदी वह वस्त्र नहीं पहनती थी इस लिये कि वह जीती नहीं गई, इसी लिये दासी भी नहीं हुई, पर दुर्योधन और दुःशासन उस को सभा में ही दासी वेष में दिखाना चाहते थे, इस लिये उसके पहले वस्त्र को दुःशासन बल से उतारने लगा ॥ द्रौपदी के दाव पर लगाने आदि की घटना को सत्य मान कर भी द्रौपदी का वस्त्र खींचते समय ही दुःशासन को धिक्कारें मिलना और धृतराष्ट्र का उसे रोकना असली घटना बनती है,

हरि का स्मरण किया, हे दुष्टों के दमन करने वाले ! कौरवरूपी समुद्र में डूबती मुझ को बचा ॥ २६ ॥ तब हे राजन् ! द्रौपदी का वस्त्र खींचे जाने पर ठीक वैसा ही एक और वस्त्र अनेक बार प्रकट होता गया ‡ ॥ २७ ॥ यह अतीव आश्चर्य देख कर सारे राजे वहां द्रौपदी की प्रशंसा और धृतराष्ट्र के पुत्र की निन्दा करने लगे ॥ २८ ॥ उसी समय क्रोध से फड़कते होठों वाले, हाथ से हाथ मरोड़ते हुए, भीमसेन ने राजाओं के मध्य में ऊंचे स्वर से यह शपथ खाई ॥ २९ ॥ हे भूपतियो ! यदि मैं यह बात कह कर पूरी न करूं, तो मैं अपने पूर्व पितरों की गति को न पाऊं॥३०॥इस दुर्बुद्धि भारतकुलकलंक नीच दुःशासन की छाती को बल से फोड़ कर यदि इस का रुधिर न पिऊं ॥३१॥ रोंगटे खड़ा करने वाले इस रौद्र वचन को सुन कर लोग दुःशासन की निन्दा करते हुए उस वचन को बड़ा आदर देते भए॥३२॥

जो थोड़ा आगे चल कर कही है । बीच में वस्त्रराशि के प्रकट होने की कथा अर्थवाद (रोचक वचन) है । (प्रश्न)इस घटना को न मान कर भीम की यह प्रतिज्ञा भी तो नहीं बनती, जो ऐतिहासिक है (उत्तर) ऐतिहासिक होने में संदेह तो इसमें भी होसकता है, एक सभ्य जातीय पुरुष की स्वधर्मविरुद्ध और सभ्यताविरुद्ध मानुष रुधिर पान की प्रतिज्ञा भरी सभा में प्रतिज्ञा करना और लोगों का घृणा प्रकट करने के स्थान उलटा उस को आदर देना विचारास्पद तो होता ही है । पर यहां से उड़ा देने में यह प्रतिज्ञा तो आगे फिर वनवास जाते समय आजाती ही है, जो इस का समुचित स्थान है, क्योंकि उस समय भीम दास नहीं था, इस समय दास है ।

तब दुःशासन थक कर लज्जित हुआ बैठ गया ॥ ३३॥ पाण्डवों की दशा देख कर सभा में बैठे सब राजाओं ने भी रोंगटे खड़ा करने वाली धिक्कारें दीं ॥ ३४ ॥

अ.२४(व०७१-७३)द्रौपदीकोवरदानऔरपाण्डवोंकाघरकोलौटना

मूल-धृतराष्ट्र उवाच-हतोसि दुर्योधन मन्द बुद्धे यस्त्वं सभायां कुरु पाण्डवानाम्। स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम् ॥ १ ॥ एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषी हितान्वेषी बान्धवानामपायात्। कृष्णां पाञ्चाली मब्रवीत् सान्त्वपूर्वं विमृश्यैतत् प्रज्ञया तत्त्वबुद्धिः ॥ २ ॥ वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि। वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्म परमासती ॥ ३ ॥ द्रौपद्युवाच—ददासि चेद्वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ। सर्वधर्मानुगः श्रीमान दासोऽस्तु युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र उवाच-एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे। द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व ह ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच—सरथौ स धनुष्कौ च भीमसेन धनञ्जयौ। यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम् ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच—तथाऽस्तुते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि। तृतीय वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसंस्कृता ॥ ७ ॥ त्वं हि सर्वस्नुषाणां मे श्रेयसी धर्मचारिणी ॥ ८ ॥ द्रौपद्युवाच—लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन्नाहमुत्सहे। अनर्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम ॥ ९ ॥

अर्थ-*धृतराष्ट्र बोले,हे मन्द बुद्धे दुर्विनीत,दुर्योधनतू नष्ट हुआ,

---

*इस से पूर्व यह लिखा मिलता है, कि धृतराष्ट्र के घर अग्नि होत्र के समय गीदड़ बोले, और उनकी सुर में गदहे ने भी अपनी सुर मिलाई, यह अपशकुन देख गान्धारी और विदुर दोनों आनकर

जो तू कुरु पाण्डवों की सभा के बीच स्त्री से ऐसे वचन कहता है, विशेष कर धर्मपत्नी द्रौपदी से ॥ १ ॥ ऐसा कह कर हानि से बान्धवों (पाण्डवों) के हितचिन्तक बुद्धिमान् धृतराष्ट्र बुद्धि से सोच कर तत्त्व को समझ कर सान्त्वना पूर्वक पाञ्चाली कृष्णा से बोले ॥ २ ॥ हे पाञ्चालि ! तुम मेरी बहुओं में उत्तम हो, धर्मपरायण और पतिव्रता हो, तुम जो चाहती हो, मुझ से वर मांगो ॥ ३ ॥ द्रौपदी बोली—हे भरतश्रेष्ठ ! यदि मुझे वर देते हो, तो मांगती हूं. धर्म पर चलने वाला श्रीमान् युधिष्ठिर अदास हो ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र बोले—ऐसा ही हो हे कल्याणि ! जो तुम कहती हो, हे भद्रे ! तुझे दूसरा वर देता हूं, उसे मांग ॥ ५ ॥ द्रौपदी बोली—हे राजन् ! भीम और अर्जुन, नकुल और सहदेव अपने रथों और धनुषों सहित अदास हों, स्वतन्त्र हों, यह मैं मांगती हूं ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र बोले—हे महाभागे हे बेटी ! ऐसा ही हो, जैसा तुम चाहती हो, तीसरा वर हमसे मांग, दो से तुम्हारा पूरा मान नहीं तू मेरी सारी बहुओं में उत्तम और धर्मचारिणी है*॥७-८ ॥ द्रौपदी बोली-लोभ धर्म के नाश के लिये होता है,हे भगवन् ! मैं ऐसा नहीं करती, हे राजवर ! मैं तीसरा वर मांगने के अयोग्य हूं ॥ ९ ॥

मूल—युधिष्ठिर उवाच--राजन् किं करवामस्ते प्रशाध्य-स्मांस्त्वमीश्वरः । नित्यं हि स्थातुमिच्छामस्तव भारत शासने ॥१०॥ धृतराष्ट्र उवाच—अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत। अनु-

---

धृतराष्ट्र को बतलाया, तब धृतराष्ट्र ने अगली सारी बात कही।

*क्या यह इतने आदर के शब्द, यदि द्रौपदी के पांच पति होते, तो उस के लिये बोले जाते।

भ्रातः सह धनाः स्वराज्य मनुशासत ॥ ११ ॥ इदं चैवात्रवेद्धव्यं वृद्धस्य मम शासनम् । मया निगदितं सर्वं पथ्यं निःश्रेयसं परम् ॥ १२ ॥ वेत्थत्वं तात धर्माणां गतिं सूक्ष्मां युधिष्ठिर । विनीतोऽसि महाप्राज्ञ वृद्धाना पर्युपासित ॥ १३ ॥ +न वैराण्यभिजानन्ति गुणान् पश्यन्ति नागुणान् । विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तम पूरुषाः ॥ १४ ॥ +स्मरन्ति सुकृत न्येव न वैराणि कृतान्यपि । सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ असंभिन्नार्यमर्यादाः साधवः प्रियदर्शनाः । तथा चरितमार्येण त्वयाऽस्मिन् सत्समागमे ॥ १६ ॥ दुर्योधनस्य पारुष्यं तद् तात हृदि माकृथाः ॥ १७ ॥ मातरं चैव गान्धारीं मां च त्वं गुणकाङ्क्षया । उपस्थितं वृद्ध मन्धं पितरं पश्य भारत ॥ १८ ॥ प्रेक्षापूर्वं मया द्यूत मिदमासी दुपेक्षितम् । मित्राणि द्रष्टु कामेन पुत्राणां च बलाबलम् ॥ १९ ॥ अशोच्याः कुरवो राजन् येषां त्वमनुशासिता । मन्त्री च विदुरो धीमान् सर्वशास्त्र विशारदः ॥ २० ॥ अजातशत्रो भद्रं ते खाण्डवप्रस्थमाविश । भ्रातृभिस्तेऽस्तु सौभ्रात्रं धर्मे ते धीयतां मनः ॥ २१ ॥ इत्युक्तो भरतश्रेष्ठ धर्मराजो युधिष्ठिरः । कृत्वार्यसमयं सर्वं मतस्थे भ्रातृभिः सह ॥ २२ ॥ ते रथान् मेघ संकाशा नास्थाय सह कृष्णया । ययुर्हृष्टमनस इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥ २३ ॥

अर्थ—युधिष्ठिर बोले—हे महाराज आपका क्या प्रियकार्य करें, हमें आज्ञा दीजिये, आप हमारे स्वामी हैं, हम सदा आप की आज्ञा में रहना चाहते हैं ॥ १० ॥ धृतराष्ट्र बोले—अजात शत्रो ! तुम्हारा कल्याण हो, हमारी अनुज्ञा से निर्विघ्न आराम से अपने धन समेत जाओ, राज्य का शासन करो ॥ ११ ॥ और मुझ वृद्ध के इस शासन पर सदा ध्यान रक्खो, जो पथ्य है और परम क-

ल्याण लाने वाला है ॥१२॥ हे प्यारे युधिष्ठिर तुम धर्म की सूक्ष्म-गति को जानते हो, हे महाप्राज्ञ तुम विनीत हो, और वृद्धों का सेवन किये हो ॥ १३ ॥ जो उत्तम पुरुष हैं, वह वैर को भुला देते हैं, गुणों को देखते हैं, अवगुणों को नहीं देखते, और विरोध नहीं करते ॥१४॥ पराया कल्याण करने वाले सत्पुरुष भले कामों को ही स्मरण करते हैं, वैर किये हुए भी नहीं (स्मरण करते) बदले का भी ध्यान नहीं रखते ॥ १५ ॥ भले पुरुष आर्यमर्यादा को नहीं तोड़ते, अतएव सब को प्यारे दीखते हैं. ऐसा ही तुमने इस समागम में आचरण किया है ॥ १६ ॥ दुर्योधन की कठोर बातों को हे तात! हृदय में न लाना ॥ १७ ॥ माता गान्धारी की और उपस्थित हुए मुझ वृद्ध पिता की ओर देख ॥ १८ ॥ जानबूझ कर मैंने इस जुए की उपेक्षा की, ताकि मित्रों का, और पुत्रों के बलाबल का पता लगजाए ॥ १९ ॥ हे राजन्! कौरव शोक के योग्य नहीं हैं, जिनके तुम शासन करने वाले हो, और शास्त्र में निपुण बुद्धिमान् विदुर मन्त्री है ॥ २० ॥ हे अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो, खाण्डवप्रस्थ को जाओ, भाइयों के साथ तुम्हारा सौभ्रात्र हो, और तुम्हारा मन धर्म में स्थिर रहे ॥ २१ ॥ ऐसे कहा धर्मराज युधिष्ठिर आर्य समय (आर्यों वाला वचन) करके भाइयों समेत चल पड़ा ॥ २२ ॥ कृष्णा सहित वह मेघ सदृश रथोंपर चढ़ कर प्रसन्न मन हुए इन्द्रप्रस्थ को गए२३

अ० २५ (व० ७४) अनुद्यूत

मूल—अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः । मिथः संगम्य सहिताः पाण्डवान् प्रति मानिनः ॥ १ ॥ वैचित्रवीर्य

राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् । अभिगम्य त्वरायुक्ताः श्लक्ष्णं वचन मब्रुवन् ॥ २ ॥ न त्वयेदं श्रुतं राजन् यज्जगाद बृहस्पतिः । शक्रस्य नीतिं प्रवदन् विद्वान् देवपुरोहितः ॥ ३ ॥ सर्वोपायैर्निहन्तव्याः शत्रवः शत्रुसूदन । पुरा युद्धाद्बलाद्वापि प्रकुर्वन्ति तवाहितम् ॥ ४ ॥ ते वयं पाण्डव धनैः सर्वान् संपूज्य पार्थिवान् । यदि तान् योधयिष्यामः किं वै नः परिहास्यति ॥ ५ ॥ आत्त शस्त्रा रथगता कुपितास्तात पाण्डवाः । निःशेषं वः करिष्यन्ति क्रुद्धा ह्याशीविषा इव ॥ ६ ॥ सन्नद्धो ह्यर्जुनो याति विधृत्य परमेषुधी । गांडीवं मुहुरादत्ते निःश्वसंश्च निरीक्षते ॥ ७ ॥ गदां गुर्वीं समुद्यम्य त्वरितश्च वृकोदरः । स्वरथं योजयित्वाशु निर्यात इति नःश्रुतम् ॥ ८ ॥ ते त्वास्थाय रथान् सर्वे बहुशस्त्रपरिच्छदान् । अभिघ्नन्तो रथव्रातान् सेनायोगाय निर्ययुः ॥ ९ ॥ नक्षंस्यन्ते तथास्माभिर्जातु विप्रकृता हि ते । द्रौपद्याश्च परिक्लेशं कस्तेषां सन्तुमर्हति ॥ १० ॥ पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः । एवमेतान् वशे कर्तुं शक्ष्यामः पुरुषर्षभ ॥ ११ ॥ ते वा द्वादश वर्षाणि वयं वा द्यूतनिर्जिताः । प्रविशेम महारण्य माजिनैः प्रतिवासिताः ॥ १२ ॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् । ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ १३ ॥ निवसेम वयं ते वा तथा द्यूतं प्रवर्तताम् ॥ १४ ॥

अर्थ—तब मानी दुर्योधन, कर्ण, और सुबलपुत्र शकुनि, पाण्डवों का प्रतिकार करने के लिये अलग विचार करके, राजा धृतराष्ट्र के पास शीघ्र जाकर स्पष्ट वचन बोले ॥ १–२ ॥ क्या हे राजन् ! आपने यह वचन नहीं सुना, जो देवपुरोहित विद्वान् बृहस्पति ने इन्द्र को नीति बतलाते हुए कहा था ॥ ३ ॥ हे शत्रुओं

के मारने वाले! शत्रु जो विना युद्ध वा युद्ध से तेरा अहित करते हैं, ऐसे शत्रु सारे उपायों से मारने योग्य हैं ॥ ४ ॥ सो हम यदि पाण्डवों के धनों से सब राजाओं की पूजा करके पाण्डवों से लड़ेंगे, तो हमारी क्या हानि होगी (कुछ नहीं) ॥ ५ ॥ हे तात! कुपित हुए पाण्डव शस्त्र पकड़ कर रथों पर सवार हुए क्रुद्ध हुए सांपों की भांति हमारा नाश कर देंगे ॥ ६ ॥ अर्जुन कवच पहने हुए दोनों भत्थे लटकाए गांडीव को उठा कर लंबे सांस भरता हुआ देखता गया है ॥ ७ ॥ और भीमसेन भारी गदा को उठाए जल्दी करता हुआ अपने रथ को जोड़ कर तेजी से गया है, यह हमने सुना है ॥ ८ ॥ वह सब बहुत शस्त्र सामग्री वाले रथों पर चढ़ कर और रथ समूहों को पीछे लगा, सेना को इकट्ठा करने के लिये गए हैं ॥ ९ ॥ वह कभी क्षमा न करेंगे, वह हम से बहुत अपमानित हुए हैं, भला द्रौपदी के उस क्लेश को उनमें से कौन क्षमा करसकता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ आप का कल्याण हो, हम पाण्डवों के साथ वनवास के लिये फिर जुआ खेलें, इस प्रकार हम उनको वश में कर सकेंगे ॥ ११ ॥ जुए में हारे हुए वह वा हम मृगछाला पहने बारह वर्ष महावन में प्रवेश करें ॥ १२ ॥ और तेरहवें वर्ष सजन स्थान में रहें, पर कोई जान न सके. जाने जाएं, तो फिर और बारह वर्ष रहें ॥ १३ ॥ हम वा वह रहें, इस प्रकार का जुआ प्रवृत्त करने दीजिये ॥ १४ ॥

मूल—दृढमूला वयं राज्ये मित्राणि परिगृह्य च । सारवद् विपुलं सैन्यं सत्कृत्य च दुरासदम् ॥ १५ ॥ ते च त्रयोदशं वर्षं पारयिष्यन्ति चेद्व्रतम् । जेष्यामस्तान् वयं राजन् रोचतां ते परंतप ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच—तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान् कामं व्यध्व

गतानपि । आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः॥१७॥ अकामानां च सर्वेषां सुहृदामर्थदर्शिनाम् । अकरोत् पाण्डवाह्वानं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ॥ १८ ॥

अर्थ—यदि वह तेरह वर्ष का व्रत पूरा कर भी पाएंगे, तो भी इतने काल में राज्य में हमारी जड़ पक्की होजाएगी, तब हम मित्रों को वश में कर, और बलवती दुर्धर्ष सेना का सत्कार करके उन को जीतलेंगे, सो हे शत्रुतापी आप इस बात को स्वीकार करें ॥ १५—१६ ॥ धृतराष्ट्र बोला—अभी इनको लौटा लाओ चाहे वह दूर भी निकल गए हों, पाण्डव आवें, और फिर जुआ खेलें ॥ १७ ॥ भलाई चाहने वाले सारे सुहृदों के रोकने पर भी पुत्र को प्यार करने वाले धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुला ही लिया ॥ १८ ॥

अ० २६ (वृ० ७६) पाण्डवों का फिर सभा में आना

मूल—ततो व्यध्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्ठिरम् । उवाच वचनाद्राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १ ॥ उपास्तीर्णा सभा राजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्ठिर । एहि पाण्डव दीव्येति पिता त्वाहेति भारत ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच—धातुर्नियोगाद् भूतानि प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम् । न निवृत्तिस्तयोरस्ति देवितव्यं पुनर्यदि ॥ ३ ॥ अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात् स्थविरस्य च । जानन्नपि क्षयकरं नाहं क्रमितु मुत्सहे ॥ ४ ॥ इति ब्रुवन्निववृते भ्रातृभिः सह पाण्डवः । जानंश्च शकुनेर्मायां पार्थो द्यूत मियात् पुनः ॥ ५ ॥ विविशुस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः । व्यथयन्तिस्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभाः ॥ ६ ॥

अर्थ—तब बहुत दूर गए युधिष्ठिर को प्रातिकामी ने राजा धृतराष्ट्र के वचन से यह कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! पिता ने तुझे कहा है, कि सभा उपस्थित है, आओ हे युधिष्ठिर पांसे फैंक कर जुआ खेलो ॥ २ ॥ युधिष्ठिर बोला—प्रारब्ध के वश से प्राणी शुभ अशुभ फल को अवश्य पाते हैं, यदि फिर हम को जुआ खेलना है, तो यह निश्चय है, कि शुभ अशुभ की निवृत्ति हो ही नहीं सकती ॥ ३ ॥ पासों के जुए में बुलावा, वह भी वृद्ध पिता की आज्ञा से, इसे क्षयकारी जानता हुआ भी उलांघ नहीं सकताहूं ॥ ४ ॥ ऐसे कहता हुआ युधिष्ठिर भाइयों समेत लौट पड़ा, शकुनि की माया को जानता हुआ भी युधिष्ठिर फिर जुए में गया ॥ ५ ॥ वह भरतवर महारथ अपने मित्रों के हृदयों को कंपाते हुए फिर उस सभा में प्रविष्ट हुए ॥ ६ ॥

मूल—शकुनिरुवाच—अमुञ्चत् स्थविरो यद्वो धनं पूजितमेव तत् । महाग्लहं धनं त्वेकं शृणु भो भरतर्षभ ॥ ७ ॥ वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिर्द्यूतनिर्जिताः । प्रविशेम महारण्यं रौरवाजिन वाससः ॥ ८ ॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् । ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ ९ ॥ अस्माभिर्निर्जिता यूयं वने द्वादश वत्सरान् । वसध्वं कृष्णया सार्धं माजिनैः प्रतिवासिताः ॥ १० ॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् । ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ ११ ॥ त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम् । स्वराज्यं प्रतिपत्तव्य मितरै रथवेतरैः॥१२॥

अर्थ—शकुनि बोला—वृद्ध राजा ने जो धन आप को देदिया वह हम मानते हैं, अब हे भरतवर एक और धन जो बड़ा भारी दाव है, वह सुनिये ॥ ७ ॥ यदि आप से हम हार जाएं, तो मृग

चर्म ओढ़ कर हम बारह वर्ष वन में रहें ॥ ८ ॥ और तेरहवें वर्ष सजन स्थान में अज्ञात हुए रहें, जाने जाएं, तो पुनः वन में बारह वर्ष वास करें ॥ ९ ॥ और यदि हमने आप को हरा दिया, तो तुम कृष्णा समेत मृगचर्म ओढ़ कर बारह वर्ष वन में वास करो ॥ १० ॥ और तेरहवां वर्ष सजन स्थान में अज्ञात वास करो, यदि जान लिये जाओ, तो पुनः वन में और बारह वर्ष वास करो ॥ ११ ॥ तेरह वर्ष बीत जाएं, तब फिर आप वा हम यथायोग्य अपने राज्य को पाएं ॥ १२ ॥

मूल—सभ्याऊचुः—अहो धिग् बान्धवा नैनं बोधयन्ति महद्-भयम् । बुद्ध्या बुद्ध्येन्नवा बुद्ध्येदयं वै भरतर्षभ ॥ १३ ॥ जन प्रवादान् सुबहून् शृण्वन्नपि नराधिपः । ह्रिया च धर्म संयोगात् पार्थो द्यूत मियात् पुनः ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर उवाच—कथं वै मद्विधो राजा स्वधर्म मनुपालयन् । आहूतो विनिवर्तेत दीव्यामि शाकुने त्वया ॥ १५ ॥ प्रतिजग्राह तं पार्थो ग्लहं जग्राह सौबलः । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिर मभाषत ॥ १६ ॥

अर्थ—सभासद् बोले—अहो धिक् अपनी बुद्धि से चाहे यह समझे वा न समझे, पर बान्धव भी इस को सामने आता हुआ बड़ा भय नहीं बतलाते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार बहुत बड़े निन्दा-वाद सुनता हुआ भी युधिष्ठिर (हटने में) लज्जा से, और धर्म के सम्बन्ध से फिर जुए में प्रवृत्त हुआ ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर बोला—हे शकुने ! मेरे जैसा अपने धर्म को पालन करता हुआ राजा ललकारने पर हट नहीं सकता है, इस लिये तेरे साथ खेलता हूं ॥ १५ ॥ सो युधिष्ठिर ने सब स्वीकार किया, शकुनि ने पासा

उठाया, और फैंक कर युधिष्ठिर से बोला-यह मैं जीत गया ।१६।

अ० २७ (व० ७७-७८) वनवास की तय्यारी

मूल-ततः पराजिता पार्था वनवासाय दीक्षिताः । अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम् ॥ १ ॥ अजिनैः संवृतान् दृष्ट्वा हृतराज्यानरिंदमान् । प्रस्थितान् वनवासाय ततो दुःशासनोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रवृत्तं धार्तराष्ट्रस्य चक्रं राज्ञो महात्मनः । पराजिताः पाण्डवेया विपत्ति परमां गताः ॥ ३ ॥ नरकं पातिताः पार्था दीर्घकाल मनन्तकम् । सुखाच्च हीना राज्याच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥ ४ ॥ भीमसेन उवाच—यथा तुदसि मर्माणि वाक्शरैरिह नो भृशम् । तथा स्मारयिताते ऽहं कृन्तन्मर्माणि संयुगे ॥ ५ ॥ एवं ब्रुवाणमजिनैर्विवासितं दुःशासनस्तं परिनृत्यतिस्म ॥ ६ ॥ भीमसेन उवाच—नृशंस परुषं वक्तुं शक्यं दुःशासन त्वया। निकृत्या हि धनं लब्ध्वा को विकत्थितुमर्हति ॥ ७ ॥ मैवस्म सुकृतां लोकान् गच्छेत् पार्थो वृकोदरः । यदि वक्षो हि ते भित्त्वा न पिबेच्छोणितं रणे ॥ ८ ॥

अर्थ—तब हारे हुए पाण्डव वनवास के लिये दीक्षित वन यथाक्रम मृग चर्म ओढ़ते भए ॥ १ ॥ राज्य से हीन हुए मृग चर्म धारे वनवास के लिये प्रस्थित हुए शत्रु तापियों को देख कर दुःशासन बोला ॥ २ ॥ महात्मा राजा दुर्योधन का चक्र प्रवृत्त हुआ (चक्रवर्ती हुआ) पाण्डव हार कर भारी विपदा में फंसे हैं ॥ ३ ॥ पाण्डव दीर्घकाल तक नरक में डाल दिये गए, सुख से और राज्य से हीन हुए सदा के लिये नष्ट होगए ॥ ४ ॥ भीमसेन बोला—जैसे वाणी के बाणों से तू हमारे मर्म चुभोता है,

वैसे मैं युद्ध में तेरे मर्मों को छेदता हुआ तुझे स्मरण कराऊंगा ॥ ५ ॥ ऐसे कहते हुए मृग चर्म से ढके हुए भीम के दुःशासन चारों ओर नाचने लगा ॥ ६ ॥ तब भीम बोला—हे क्रूर दुःशासन क्या तू कठोर वचन कह सकता है, छल से धन पाकर कौन आत्म-श्लाघा कर सकता है ॥ ७ ॥ भीम मत पुण्यात्माओं के लोक को प्राप्त हो, यदि रण में तेरी छाती को फोड़ कर लहू न पिये ॥ ८ ॥

मूल—तस्य राजा सिंहगतेः सखेलं दुर्योधनो भीमसेनस्य हर्षात् । गतिं स्वगत्यानु चकार मन्दो निर्गच्छतां पाण्डवानां सभायाः ॥ ९ ॥ नैतावता कृत मित्यब्रवीद् वृकोदरः सन्निवृत्तार्धकायः । शीघ्रं हि त्वां निहितं सानुबन्धं संस्मार्याहं प्रतिवक्ष्यामि मूढ ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच—नैव वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सताम् । इतश्चतुर्दशे वर्षे द्रष्टारो यद्भविष्यति ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच—आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम् । सर्वानाम-न्त्र्य गच्छामि द्रष्टास्मि पुनरेत्यवः ॥ १२ ॥ न च किञ्चिदथोचुस्ते ह्रिया सन्ना युधिष्ठिरम् । मनोभिरेव कल्याणं दध्युस्ते तस्य धीमतः ॥ १३ ॥

अर्थ—फिर पाण्डव जब सभा से निकलने लगे, तब मूर्ख राजा दुर्योधन ने शेर की सी बांकी चाल वाले भीम की चाल की अपनी चाल से नकल करके दिखलाई ॥ ९ ॥ तब भीमसेन गर्दन मोड़ कर उस से बोला, इतने से बस नहीं, जल्दी हे मूढ साथियों समेत तुझे मार कर स्मरण कराता हुआ उत्तर दूंगा ॥ १० ॥ अर्जुन बोला—हे भीम ! सत्पुरुषों का मनशा बातों से नहीं जाना जाता, अब से चौदहवें वर्ष देखोगे, जो होगा ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर बोला-मैं आज्ञा मांगता हूं भरतों से और वृद्ध पितामह (भीष्म) से,

सब से अनुज्ञा लेकर अब जाऊंगा, फिर आकर आप के दर्शन करूंगा ॥ १२ ॥ लज्जा से नीचे मुख किये वह इस के उत्तर में युधिष्ठिर से कुछ न बोले, किन्तु मनों से ही उस बुद्धिमान् का मंगल चाहते भए ॥ १३ ॥

मूल—विदुर उवाच–आर्या पृथा राजपुत्री नारण्यं गन्तु मर्हति । सुकुमारी च वृद्धा च नित्यं चैव सुखोचिता ॥ १४ ॥ इह वत्स्यति कल्याणी सत्कृता मम वेश्मनि । इति पार्था विजानीध्व मगदंवोऽस्तु सर्वशः ॥ १५ ॥ तथेत्युक्त्वाऽब्रुवन् सर्वे यथानो वदसेऽनघ । त्वं पितृव्यः पितृसमः वयं च त्वत्परायणाः ॥ १६ ॥ यच्चान्यदपि कर्तव्यं तद् विधत्स्व महामते ॥ १७ ॥

अर्थ—विदुर बोले–राजपुत्री आर्या कुन्ती वन जाने योग्य नहीं, सुकुमारी है, वृद्धा है, और सदा सुखों में रही है ॥ १७ ॥ यह कल्याणी यहीं सत्कार पूर्वक मेरे घर में रहेगी, यह बात हे कुन्ती पुत्रो स्वीकार करो, तुम्हारा सर्वथा कल्याण हो ॥ १५ ॥ ऐसा कहने पर वह सब बोले, हे निष्पाप आप हमारे चचा हैं, पितृ तुल्य हैं, हमारा भरोसा आप पर है जैसे आप आज्ञा देते हैं ॥ १६ ॥ और भी जो कर्तव्य है, उसकी आज्ञा दीजिये ॥ १७ ॥

मूल–विदुर उवाच–युधिष्ठिर विजानीहि ममेदं भरतर्षभ । नाधर्मेण जितः कश्चिद् व्यथते वै पराजये ॥ १८ ॥ त्वं वै धर्मं विजानीषे युद्धे जेता धनञ्जयः । हन्ताऽरीणां भीमसेनो नकुलस्त्वर्थ संग्रही ॥ १९ ॥ संयन्ता सहदेवस्तु धौम्यो ब्रह्म विदुत्तमः। धर्मार्थकुशला चैव द्रौपदी धर्मचारिणी ॥ २० ॥ अन्योऽन्यस्य प्रियाः सर्वे तथैव प्रिय दर्शनाः। परैरभेद्याः संतुष्टाः को वो नस्पृहयेदिह ॥ २१॥ अगदं वोऽस्तु भद्रं वो द्रक्ष्यास्मि पुनरागतान्॥२२॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पाण्डवः सत्य विक्रमः। भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

अर्थ—विदुर बोले-हे भरतवर युधिष्ठिर ! मेरा यह वचन स्मरण रखना, अधर्म से जीते हुए किसी पुरुष को अपनी हार में दुःखी नहीं होना चाहिये ॥ १८ ॥ तुम धर्म को जानते हो, अर्जुन युद्ध में जय पाने वाला है, भीमसेन शत्रुओं का नाश करने वाला है, नकुल कोषाध्यक्ष है ॥ १९ ॥ सहदेव दण्ड का नेता है, धर्मचारिणी द्रौपदी धर्म अर्थ में कुशला है ॥२०॥ तुम सब एक दूसरे से प्रेम रखते हुए, और देखकर प्रसन्न होते हुए, शत्रुओं से न फोड़ने योग्य बन कर संतुष्ट रहोगे, तो कौन इस जगत में तुम्हारी स्पृहा नहीं करेगा ॥ २१ ॥ तुम नीरोग रहो, तुम्हारा कल्याण हो, फिर आर्यों को देखूं ॥ २२ ॥ ऐसे कहा हुआ तथास्तु कहकर सच्चे पराक्रम वाला युधिष्ठिर भीष्म और द्रोण को नमस्कार करके चल पड़ा ॥ २३ ॥

अ० २८ (व०७९) कुन्ती का विलाप

मूल—तस्मिन् संप्रस्थिते कृष्णा पृथां प्राप्य यशस्विनीम्। अपृच्छद् भृश दुःखार्ता याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥ १ ॥ यथार्ह वन्दना श्लेषान् कृत्वा गन्तुमियेष सा । ततो निनादः सुमहान् पाण्डवान्तः पुरेऽभवत् ॥ २ ॥ कुन्ती च भृशसंतप्ता द्रौपदीं प्रेक्ष्य गच्छतीम्। शोक विह्वलया वाचा कृच्छ्राद् वचन मब्रवीत् ॥ ३ ॥ वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत् ॥ ४ ॥ साध्वी गुण सम्पन्ना भूषितं ते कुलद्वयम । अरिष्टं व्रज पन्थानं मदनुध्यानबृंहिता ॥ ५ ॥ भाविन्यर्थे हि सत्स्त्रीणां वैकृतं नोपजायते । गुरुधर्माभिगुप्ता च श्रेयः क्षिप्र मवाप्स्यसि ॥ ६ ॥ तथेत्युक्त्वा तु

सा देवी स्रवन्नेत्रजलाविला । शोणिताक्तैकवसना मुक्तकेशी विनिर्ययौ ॥ ७ ॥

अर्थ—उसके चलते समय अतीव दुःखित हुई कृष्णा ने यशस्विनी कुन्ती के पास आ आज्ञा मांगी, और जो वहां और स्त्रियें थीं उन सब को ॥ १ ॥ यथायोग्य वन्दना कर और गले मिल कर चलने को तय्यार हुई, उस समय पाण्डवों के अन्तःपुर में बड़ा शोर हुआ ॥ २ ॥ द्रौपदी को जाती देख अत्यन्त तपी हुई कुन्ती शोक से फिसली वाणी से बड़े कष्ट से यह बोली॥३॥ बेटी इस बड़ी विपत्ति में पड़ कर तुझे शोक नहीं करना चाहिये, तू स्त्री धर्मों के जानने वाली है शील और आचार वाली है॥४॥ पतिव्रता है, गुणों से युक्त है, मेरे शुभचिन्तन से सदा फूलती हुई निर्विघ्न मार्ग को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ अवश्य होनेवाली बात में भली स्त्रियों का मन नहीं डोलता, गुरु धर्म से रक्षा की हुई तू जल्दी कल्याण को प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ 'तथास्तु' कह कर द्रौपदी रोती हुई(रजस्वला होने के हेतु) रुधिर से लिप्त एक वस्त्र धारे हुए खुले बालों से बाहर निकली ॥ ७ ॥

मूल—तां क्रोशन्तीं पृथा दुःखादनुवव्राज गच्छतीम् । अथापश्यत् सुतान् सर्वान् हृताभरणवाससः ॥ ८ ॥ रुरुचर्मावृततनून् ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखान् । परैःपरीतान् संहृष्टैः सुहृद्भिश्चानुशोचितान् ॥ ९ ॥ तदवस्थान् सुतान् सर्वानुपसृत्याति वत्सला । स्वजमानाऽवदच्छोकात् तत्तद्विलपती बहु ॥ १० ॥ कथं सद्धर्मचारित्रान् वृत्तस्थितिविभूषितान् । अक्षुद्रान् दृढभक्तांश्च दैवतेज्यापरान्सदा ॥ ११ ॥ व्यसनं वः समभ्यगात् कोऽयं विधिविपर्ययः । कस्यापध्यानजं चेदमागः पश्यामि वो धिया॥ १२ ॥

स्यात्तु मद्भाग्यदोषोऽयं याहं युष्मान जीजनम् । दुःखा यास भुजोऽस्यर्थं युक्तानप्युत्तमैर्गुणैः ॥ १३ ॥ यद्येतदेव मज्ञास्यं वने-वासो हि वो ध्रुवम् । शत शृंगान्मृते पाण्डो नागमिष्यं गजाह्वयम् ॥ १४ ॥ धन्यं वः पितरं मन्ये तपोमेधान्वितं तथा । यः पुत्राधि ममंप्राप्य स्वर्गेच्छ मकरोत् प्रियाम् ॥ १५ ॥ पुत्रका न विहास्ये वः कृच्छ्रलब्धान् प्रियान् मतः । सा हं यास्यामि हि वनं हा कृष्णे किं जहासि माम् ॥ १६ ॥ एवं विलपतीं कुन्ती मभिवाद्य प्रणम्य च । पाण्डवा विगतानन्दा वनायैव प्रवव्रजुः ॥ १७ ॥ विदुरश्चापि तामार्तां कुन्ती माश्वास्य हेतुभिः । प्रावेशयद् गृहंक्षत्ता स्वयमार्ततरः शनैः ॥ १८ ॥

अर्थ--द्रौपदी जब रोती हुई बाहर निकली, तो दुःख से उस के पीछे २ कुन्ती निकली, और आकर अपने पुत्रों को देखा; कि उनके भूषण और वस्त्र उतारे गए हैं ॥ ८ ॥ शरीर मृगचर्म मे ढके हैं, और लज्जा से मुख कुछ नीचे किये हैं, उनके शत्रु चारों ओर प्रसन्न खड़े हैं और सुहृद् शोक में डूबे हुए है ॥ ९ ॥ इस अवस्था में पुत्रों के निकट हो, वह बड़ा स्नेह करने वाली उन को गले लगा शोक से विलाप करती हुई बोली ॥ १० ॥ शुद्ध धर्म और चरित्र वाले, आचार की मर्यादा के पालने वाले, उदार हृदय, दृढ भक्ति वाले, देव पूजा में सदा तत्पर तुम को कैसे विपत्ति प्राप्त हुई, यह क्या भाग्य का फेर होगया, किसने तुम्हारा अनिष्ट सोचा, जिसका फल यह दुःख तुम्हारे लिये देख-तीहूं ॥ ११—१२ ॥ यह मेरे ही भाग्य का दोष होसकता है, जिसने तुम्हें जन्म दे कर अत्यन्त दुःख और कलेश भोगने वाले बनाया, यद्यपि तुम उत्तम गुणों से युक्त हो ॥ १३ ॥ यदि मैं

यह जानती, कि वनवास तुम्हारा अटल है, तो पाण्डु के मरने पर शतशृंग से हस्तिनापुर न आती ॥ १४ ॥ तपस्वी और मेधावी तुम्हारे पिता को मैं धन्य मानती हूं, जिसने पुत्र दुःख को न पाकर स्वर्ग की इच्छा प्यारी की ॥ १५ ॥ हे बेटो ! मैंने तुम्हें दुःख से पाया है, मेरे प्यारे हो, मैं तुम्हें नहीं छोडूंगी, सो मैं वन को जाउंगी, हा कृष्णे मुझे क्यों छोड़ती है ॥ १६ ॥ ऐसे विलपती कुन्ती को अभिवादन कर, और पाओं पर हाथ लगा कर पाण्डव दुःखित हुए वन के लिये चल पड़े ॥ १७ ॥ तब दुःखिया विदुर दुःखिया कुन्ती को हेतुओं से धैर्य देकर धीरे २ घर ले गया* ॥ १८ ॥

---

* 'अक्षैर्मादीव्यः' (ऋग् १० । ३४ । १३) अर्थ—जुआ मत खेल । यह वेद में स्पष्ट निषेध है । इस लिये यह कर्म युधिष्ठिर से वेद-विरुद्ध हुआ है । युधिष्ठिर के यह हेतु, कि मैं चचा की आज्ञा नहीं टाल सक्ता, और कि हारजीत के बुलावे में मैं पीछे नहीं हट सक्ता, सद्धेतु नहीं, जब कि कर्म वेद-विरुद्ध है । इनको सद्धेतु समझने में ही युधिष्ठिर से भूल हुई है ।

* सभापर्व समाप्त हुआ *